

नरेश मेहता के उपन्यासों की चरित्रसूक्ष्म

सौराष्ट्र विश्वविद्यालय की पीएच.डी. (हिन्दी) की उपाधि हेतु
प्रस्तुत शोधप्रबन्ध

अनुसंधित्सु

प्रा. कैलास बी. उपाध्याय

हिन्दी विभागाध्यक्ष,

श्रीमती आर.पी.भालोडिया महिला आर्ट्स, कॉमर्स एण्ड होमसायन्स कॉलेज,

उपलेटा-३६०४९०

शोध निर्देशक

डॉ. गिरीश जे. त्रिवेदी

रीडर,

हिन्दी भवन, सौराष्ट्र विश्वविद्यालय,

राजकोट-३६०००५

वर्ष २००५



Saurashtra University

Re – Accredited Grade 'B' by NAAC
(CGPA 2.93)

Upadhyay, Kailash B., 2005, “*नरेश महेता के उपन्यासों की चरित्रसृष्टि*”, thesis
PhD, Saurashtra University

<http://etheses.saurashtrauniversity.edu/id/eprint/704>

Copyright and moral rights for this thesis are retained by the author

A copy can be downloaded for personal non-commercial research or study,
without prior permission or charge.

This thesis cannot be reproduced or quoted extensively from without first
obtaining permission in writing from the Author.

The content must not be changed in any way or sold commercially in any
format or medium without the formal permission of the Author

When referring to this work, full bibliographic details including the author, title,
awarding institution and date of the thesis must be given.

Saurashtra University Theses Service
<http://etheses.saurashtrauniversity.edu>
repository@sauuni.ernet.in

प्रमाणपत्र

प्रमाणित किया जाता है कि कैलास बी. उपाध्याय ने मेरे निर्देशन में यह “नरेश मेहता के उपन्यासों की चरित्रसृष्टि” शीर्षक शोध प्रबंध पीएच.डी. हिन्दी की पदवी के लिए तैयार किया है। इन्होंने उक्त विषय पर यथाशक्ति अध्ययन एवं विश्लेषण-विवेचन करके वैज्ञानिक ढंग से मौलिक निरूपण किया है। इस शोध प्रबंध का कोई अंश अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है।

निर्देशक

डॉ. गिरीश जे. त्रिवेदी

हिन्दी भवन,

सौराष्ट्र विश्वविद्यालय,

राजकोट।

दिनांक : / /2005

अनुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ क्रमांक
० भूमिका	I to VI
<u>प्रथम अध्याय</u> नरेश मेहता : एक परिचय	1 to 37
<u>द्वितीय अध्याय</u> हिन्दी उपन्यास साहित्य में चरित्र-चित्रण : प्रवृत्तिगत विश्लेषण	38 to 65
<u>तृतीय अध्याय</u> नरेश मेहता के उपन्यासों का कथ्यपक्ष	66 to 104
<u>चतुर्थ अध्याय</u> नरेश मेहता के उपन्यासों के प्रमुख चरित्र : स्त्री-पुरुष	105 to 168
<u>पंचम अध्याय</u> नरेश मेहता के गौण तथा गौणातिगौण चरित्र	169 to 256
० उपसंहार ० परिशिष्ट : संदर्भ सामग्री 1. आधारभूत ग्रंथ 2. सहायक ग्रंथ 3. पत्र-पत्रिकाएँ 4. कोश	257 to 285

भूमिका

पूर्वसूत्र :

भारतवर्ष में कथा साहित्य की धारा अनादिकाल से बहती आ रही है। 'उपनिषदों', 'पुराणों', 'जैनगाथाओं', 'जातक कथाओं', 'रामायण', 'महाभारत', 'हितोपदेश', 'पंचतंत्र', 'वैताल पंचविशती' और 'सिंहासन द्वात्रिंशिका' आदि में कथाओं का अनंत भँडार पड़ा है। कुछ विद्वान इन्हीं कथाओं को उपन्यासों का मूल-स्त्रोत मानते हैं। अतः उपन्यास की लोकप्रियता के मूल हमारी प्राचीन कथा परंपरा में पड़े हैं।

कथन की यह शैली काफी पुरानी है, जो दादीमाँ या माताजी के द्वारा कही जानेवाली परिकथा से लेकर आख्यान परंपरा तक फैली हुई है। दादीमाँ की कथा धीरे-धीरे चौराहे तक पहुँची और बाद में यह कथा शब्दरूप धारण करके साहित्य में अवतरित हुई। इस कथा परंपरा का विकसित रूप उपन्यास है।

गद्य की विविध विधाओं में उपन्यास का विशेष स्थान है। उपन्यास हिन्दी साहित्य की प्रबुद्ध विधा है। मानव-जीवन की अधिकाधिक पूर्ण अभिव्यक्ति का सामर्थ्य जितना उपन्यास में है उतना अन्य विधाओं में नहीं। उपन्यास में युगविशेष का वर्तमान झलकता है। व्यक्ति अपने देश की संस्कृति तथा वर्तमान परिस्थितियों में व्याप्त विविध समस्याओं से परिचित होता है।

उपन्यास का स्वरूप सबसे शक्तिशाली स्वरूप है। उसमें साहित्य की सारी विधाओं की छवियों को सन्निहित कर लेने की शक्ति है। उपन्यास में कथात्मकता के साथ-साथ काव्य की-सी भावुकता और संवेदना तथा निबंध की-सी चिंतनमूलकता भी है। उत्तम कथा, विशिष्ट चरित्र, कल्पना की अपार शक्ति, वर्णनात्मकता के साथ विचार में गहनता, महान उद्देश्य द्वारा समग्र मानव-जीवन का विवेचन इत्यादि विशेषताओं के कारण उपन्यास अन्य विधाओं की तुलना में श्रेष्ठ है। साहित्य की इस

रमणीय विधा के प्रति प्रत्येक साहित्यकार मुग्ध रहा हैं।

आधुनिक हिन्दी उपन्यास का श्रीगणेश उन्नीसवीं शताब्दी-से हुआ। बीसवीं शताब्दी का उत्तरार्ध उसके विकास का स्वर्णकाल है। हिन्दी साहित्य के उपन्यास का काल-विभाजन भारतीय जन-जीवन के यथार्थ चित्र देनेवाले उपन्यास सम्राट प्रेमचंद को आधार मानकर किया गया है। पूर्व प्रेमचंद युग में औपन्यासिक स्तर पर दो धाराएँ दृष्टिगत होती हैं - मौलिक उपन्यास तथा अनुदित उपन्यास। उस युग के उपन्यास घटनाप्रधान उपन्यास थे जिनमें निरूपित घटनाएँ सनसनी पैदा करनेवाली, कौतूहल बढ़ानेवाली या ज्यादा से ज्यादा उपदेश देनेवाली होती थी। उपन्यास की अद्भूत शक्ति को सबसे पहले प्रेमचंदजी ने पहचाना। उन्होंने अपने समय के भारत का राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, चित्र प्रस्तुत करके उस काल के समूचे यथार्थ को प्रस्तुत किया। प्रेमचंदोत्तर उपन्यास को हम स्वाधीनतापूर्व और स्वाधीनता परवर्ती ऐसे दो विभागों में विभाजित करके देखें तो, दोनों विभागों के उपन्यासों में सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक जीवन के यथार्थ का संश्लिष्ट चित्रण मिलता है।

स्वतंत्रता के बाद का जनमानस वैचारिक रूप में प्रबुद्ध एवं सजग था। व्यक्तिवाद, मार्क्सवाद, अस्तित्ववाद तथा मनोविश्लेषणवाद के सिद्धांतों का व्यक्ति-मन पर गहरा प्रभाव पड़ा था। स्वतंत्रता के बाद का साहित्यकार जिस माहोल में साँस ले रहा था, वहाँ सर्वत्र बेईमानी, अप्रामाणिकता, भ्रष्टाचार, सत्ता की खींचातानी, कथनी-करनी में अंतर, खोखले आदर्शों की बोलबाला, 'घर-भरों' की वृत्ति एवं गांधी मूल्यों का अवमूल्यन हो रहा था। ऐसी स्थिति में प्रेमचंदोत्तर युग के उपन्यासों ने नवीन संभावनाओं, नवीन मूल्यों एवं नवीन मानसिकता को जन्म दिया। इस युग के उपन्यास-स्वरूप में बदलाव आया और कथ्य में नये-नये प्रयोग हुए।

स्वातंत्र्योत्तर युग के उपन्यासकारों ने प्रेमचंदयुगीन समस्याओं का तो निरूपण किया ही था साथ में मनोवैज्ञानिक धरातल पर मानवमन के अंतर जगत को उजागर करने की कोशिश भी की। पहली बार उपन्यासकारों का ध्यान स्वच्छंद प्रेम तथा भूमिका

यौन-संबंधित समस्याओं की ओर गया। चरित्रों के सूक्ष्म संवेगों तथा क्रियाकलापों पर विशेष ध्यान दिया गया। बदलते मानवीय रिश्ते जिसमें विशेष रूप से स्त्री-पुरुष संबंधों को नये द्रष्टिकोण से देखा गया।

प्रेमचंदोत्तर युग के अन्तर्गत समकालीन युग के उपन्यासकारों में नरेश महेता की गिनती होती है। विद्वानों ने समकालीन युग का समय ई. १९५० से लेकर आज तक का निर्धारित किया है। नरेश महेता का जब उपन्यास साहित्य में प्रवेश हुआ उस वक्त देश संक्रमणकाल से गुजर रहा था। नये और पुराने मूल्यों के बीच का संघर्ष चल रहा था। प्रेमचंदयुगीन सादगीपूर्ण, सेवामय, आधत्मिक जीवन से व्यक्ति दूर जा रहा था। त्याग, प्रेम, निःस्वार्थ-भावना, मानवता नष्ट हो रही थी। लोग निजी स्वार्थ, राग-द्वेष, ईर्ष्या-स्पर्धा तथा विलासिता में निमग्न थे। संयुक्त परिवार टूट रहे थे। गाँव महानगरों की ओर जा रहे थे। राजा-महाराजाओं का सूर्यास्त होने को था। धर्म, राजनीति, शिक्षा, साहित्य और प्रायः सभी क्षेत्र समस्याओं से घिरे हुए थे।

नरेशजी ने अपने चरित्रों के माध्यम से युग जीवन की जटिलताएँ, व्यक्ति का अन्तर्बाह्य द्वन्द्व, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर घटित घटनाएँ, मानवतावादी चेतना, मानव जीवन की विविध जटिलताएँ, नगरीय तथा ग्राम्य जीवन में व्याप्त पारिवारिक राग-द्वेष, घुटन-टूटन, कुण्ठा, परंपरित रुढ़ियों का भंजन, नये मूल्यों को न स्वीकारने की छटपटाहट, युवा-आक्रोश, संघर्ष, परंपरित भारतीय नारी जीवन की करुणा के साथ आधुनिक स्वतंत्र नारी के व्यक्तिगत जीवन की स्थापना के लिए विद्रोह इत्यादि को सूक्ष्मातिसूक्ष्म ढंग से अभिव्यक्त किया हैं।

नरेशजी के कुछ चरित्रों को छोड़कर सभी चरित्रों में भारतीय विशेषताएँ तथा भारतीय संस्कृति के मूल बीज विद्यमान हैं। नरेशजी ने परिपक्व जीवन द्रष्टि, व्यापक जीवनानुभव, संवेदनशील हृदय और कलात्मक शैली द्वारा साधारण व्यक्ति को मानवीय संवेदना प्रदान कर उसे सजीव और विश्वसनीय बना दिया है। उनका प्रत्येक चरित्र विविध परिस्थितियों से जूझता हुआ और निश्चित कर्म पथ पर आगे बढ़ता हुआ नजर आता है।

आधुनिक युग के मानव को चारों ओर से गहन मानवीय संकट निगल रहा है जिसमें वह अपनी साधारण कोटि की ईमानदारी, प्रामाणिकता तथा सत्यनिष्ठा को लेकर जीवित नहीं रह सकता। ऐसी स्थिति में नरेशजी के कई चरित्र अपने मूल्यों की रक्षा के लिए संघर्ष करते हैं। मैंने नरेशजी के उपन्यासों में चित्रित हाड-मांस से बने मध्यमवर्गीय साधारण मनुष्य को उजागर करने का प्रयत्न किया है। आशा रखती हूँ विद्वत्जन इस प्रबंध को स्वीकारेंगे।

कृतज्ञता - ज्ञापन :

मैंने एक विधान पढ़ा था 'कोई भी पंछी कभी केवल अपने पंखों के बल पर नहीं उड़ सकता'। विधान सारगर्भित है। मनुष्य जो कुछ भी होता है, बनता है, उसके होने में, बनने में अज्ञातरूप से सैकड़ों छोटे-बड़े व्यक्तियों का योगदान होता है।

औरों के उपकार को कभी भूलना नहीं चाहिए। मेरी संशोधन-यात्रा के दौरान मुझे कई लोग मिले। मेरे प्रबंध के सर्जन के पीछे कई लोगों का हाथ हैं। उन लोगों का ऋण चुकाने का यह प्रथम अवसर है। मैं उन सबके प्रति कृतज्ञता प्रकट करती हूँ।

मैं प्रथम प्रणाम करती हूँ मेरे मार्गदर्शक डॉ. गिरीशभाई जे. त्रिवेदी (रीडर, हिन्दी भवन, सौराष्ट्र विश्व विद्यालय, राजकोट) को। मैं उनके चरणों में अपने श्रद्धासुमन अर्पित करती हूँ। उन्होंने मेरी तमाम परिस्थितियों में मौन रहकर, बिना किसी प्रकार की शंका किए, परम श्रद्धा से आत्मीयतापूर्वक न केवल धैर्य बंधाया, बल्कि मेरे अनगढ़त अध्यायों का सूक्ष्म अध्ययन करके इसे बार-बार परिमार्जित किया। उन्होंने मेरा हौसला नहीं बढ़ाया होता तो शायद यह प्रबंध तैयार नहीं होता। मैं उनकी धर्मपत्नी श्रीमति मंजुबहन त्रिवेदी को कैसे भूल सकती हूँ? उनका स्नेहभर व्यवहार, उनके घर मेरा प्रेमपूर्वक स्वागत। मैं मंजुबहन की ऋणी हूँ। मैं हिन्दी भवन

के अध्यक्ष डॉ. एस. पी. शर्माजी के प्रति श्रद्धा प्रकट करती हूँ।

दूसरे प्रणाम मैं अपने माता-पिता को करती हूँ जिन्होंने मुझे स्वतंत्र रूप से फलने-फूलने का मौका दिया। बरसों से अपनी संतान के विकास के लिए एकाकी जीवन जीनेवाले मेरे माता-पिता की मैं जन्म-जन्मांतरण ऋणी रहूँगी। उनके आशीर्वाद के कारण मेरा प्रबंध पूर्ण हुआ। मुझे साहित्य की विशाल दुनिया में प्रवेश करानेवाले मेरे बड़े भाई श्री नवनीत उपाध्याय (आचार्य विसावदर कॉलेज) का मैं स्मरण करती हूँ। अपनी विविध सांस्कारिक जिम्मेदारियों के बीच तन-मन-धन से मुझे सहाय करनेवाले मेरे छोटे भाई-भाभी, हर्षद, पूर्णा तथा भतीजे ऋत्तिक को याद किये बिना मेरा प्रबंध अधूरा रहेगा। मेरे लिए अविरत भागदौड़ करनेवाले मेरे छोटे भाई-भाभी को हृदय से शुभकामना के सिवा और क्या दे सकती हूँ ?

जिनके घर पर ठहरकर मैंने विविध शहरों के विविध ग्रंथालयों में काम किया उन सबको मैं याद करती हूँ। उनका आभार प्रकट करती हूँ। जिनके घर मैं ठहरती थी वे लोग हैं मेरे भाई-भाभी (राजकोट), मेरी बड़ी दीदी ज्योति पंड्या (अहमदाबाद), मेरे मित्र धवल, शिल्पा (गांधीनगर), मेरी सहेली भावना मजीठिया (भावनगर) उन सब की मैं आभारी हूँ।

मैं उन तमाम ग्रंथपालों का आभार मानती हूँ जिनकी सहायता से मैंने सामग्री प्राप्त की। 'गुजरात विश्व विद्यालय - अहमदाबाद, गुजरात कॉलेज - अहमदाबाद, एम. जी. कॉलेज - अहमदाबाद, गांधीनगर सेक्टर - १७ तथा २१, न. च. गांधी महिला कॉलेज भावनगर, गुजरात विद्यापीठ - अहमदाबाद, म्युनिसिपल कॉलेज - उपलेटा तथा मेरी अपनी कॉलेज के राजुभाई मेहता आदि ग्रंथपालों की मैं शुक्रगुजार हूँ।

संशोधन कार्य के लिए प्रेरित करनेवाले श्री रमेशभाई फूलेत्रा (आचार्य भालोडिया कॉलेज - राजकोट) तथा सभी विद्वान मनीषियों, सभी गुरुजनों, शुभचिंतकों, हिन्दी विभाग के मेरे सहकार्यकर मित्रों, मुझे प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप में इस ज्ञान-यज्ञ में सहायता प्रदान करनेवाले नामी-अनामी सब के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित

करती हूँ।

जब से प्रबंध-लेखन शुरू हुआ ईश्वर ने मेरी बहुत कसौटी ली। जितनी बार काम हाथ में लेती उतनी बार एक ऐसा हिला देनेवाला मोड़ आता था तब लगता था नाव पार नहीं उतरेगी। मझधार में डूबी नाव को परमात्मा किनारे पर ले आये। उन्होंने कसौटी तो ली साथ-साथ शक्ति भी प्रदान की। मैं निरंतर उनकी उपस्थिति का एहसास करती रही। मेरे संघर्ष के दिनों में आत्मबल प्रदान करनेवाली इस विराट शक्ति को मैं मन ही मन प्रणाम करती हूँ।

विनीता,

दिनांक:

स्थल : उपलेटा

(कैलाश उपाध्याय)

अध्याय - १

नरेश मेहता : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

प्रस्तावना :

(क) सामाजिक व्यक्तित्व

- (1) जन्म एवं नाम
- (2) माता-पिता एवं बचपन
- (3) पिता-पुत्र का संबंध
- (4) छात्रावस्था की भटकन तथा संघर्ष
- (5) व्यवसाय और विवाह

(ख) बाह्य व्यक्तित्व

(ग) साहित्यिक व्यक्तित्व

- (1) प्रथम बार कविता लेखन
- (2) प्रथम काव्य-पाठ
- (3) अन्य व्यक्तियों का प्रभाव एवं प्रेरणा
- (4) साहित्यकार के रूप में नरेश जी का जन्म
- (5) समग्र साहित्य का उल्लेख

(घ) विचार संपदा - कवि के रूप में नरेश मेहता

(च) मृत्यु तिथि

(छ) पुरस्कार एवं सम्मान

प्रस्तावना :

किसी भी साहित्यकार की रचना सृष्टि का मूल्यांकन करने से पूर्व उसकी जीवन सृष्टि का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक ही नहीं, न्यायोचित बन जाता है। यह तो शाश्वत सत्य है कि साहित्यकार अपने बारे में प्रत्यक्ष रूप से कभी कुछ नहीं कहता। उनके परिचय का ज्ञान उनके परिजन या परिचितों से ही प्राप्त होता है। साथ ही, किसी भी साहित्यिक कृति का मूल्यांकन रचनाकार एवं उनके परिवेश के मूल्यांकन के बिना अपूर्ण है। न्यायोचित अध्ययन के लिए साहित्यकार के जीवन की बारीकियों और उतार-चढ़ाव को जान लेना आवश्यक बन जाता है। इसलिए यहाँ पर नरेश मेहता के व्यक्तित्व निर्माण के साथ-साथ उनकी सर्जक प्रतिभा का परिचय प्रस्तुत कर रही हूँ।

(क) सामाजिक व्यक्तित्व :

जीवन एक यात्रा है, जिसमें अनेक उतार-चढ़ाव एवं कठिनाइयाँ आती हैं। इन्सान धूपछाँव के बीच जीने में ही जीवन की सार्थकता मानता है। नरेश मेहता के जीवन की यात्रा कुछ ऐसी ही कँटिली रही है। उन्होंने आर्थिक अभावों को झेला है और अपने प्रिय पात्रों के वियोग को भोगा है। नरेश के लिए जीवन की तमाम आपाधापी परमकृपालु परमात्मा द्वारा दी गई भेंट थी। नरेश जी जीवनरूपी जहर को नीलकंठ बनकर पी गये। वे अपने बारे में लिखते हैं कि - “कैसे किंरिच-किंरिच टूकड़ों में टूटते हुए हम यहाँ तक पहुँचे हैं। काले घुँघराले बालों वाले तब के दैहिक कसेपन से लेकर आज के खल्वाटवाले सफेदबालों की महिमामंडित इस शुभ्रता तक काँख-कूखकर पहुँचे हैं - जिसकी आधारभूत बुनावट में रोज-रोज की छोटी-छोटी भूलें, साहित्यिक असफलताएँ, आर्थिक हाहाकार, परिवेशगत असंतोष आदि न जाने क्या-क्या।”¹

(1) जन्म एवं नाम :-

स्वातंत्र्योत्तर काल के अग्रज साहित्यकार, अज्ञेय द्वारा संपादित ‘दूसरे सप्तक’ के सम्माननीय कवि, लेखक, विचारक एवं चिंतक नरेश मेहता का जन्म 15 -

फरवरी, सन् 1924 को राजापुर स्थित मालवा में हुआ था । वे आर्ष परंपरा के गुजराती ब्राह्मण थे । उनके पिताजी राजपुर में तहसील-नायब रजिस्टर थे । नरेश जी का बचपन का नाम पूर्णाशंकर था । 'नरेश' नाम उन्हें नरसिंहगढ़ की राजमाता की तरफ से मिला था ।

(2) माता-पिता एवं बचपन :-

नरेश जी के पिता ने तीन शादियाँ की थी । पहली पत्नी निःसंतान ही चल बसी थी, दूसरी पत्नी ने एक मात्र पुत्री शांति को जन्म दे कर दुनिया से विदा ली और नरेश जी बिहारीलाल की तीसरी पत्नी की इकलौती संतान रहे । नरेश जी ढाई साल के थे तब माँ नरेश जी को छोड़कर स्वर्ग सिधार गई । नरेश जी बचपन से ही माँ की ममता से वंचित हो गये । दुःखभरी लोरियों से ही उनके जीवन की शुरुआत हुई ।

गाँव के बहुत बड़े मकान में पितामह, उनकी बहन तथा नरेश जी तीन व्यक्ति ही रहते थे । पिताजी नौकरी की तलाश में अक्सर घर से बाहर रहते थे और सौतेली बहन शांति ससुराल चली गई । अब नरेश जी का एकाकी मन हीरामन तोते की तरह इधर-उधर उड़ता रहता था । निराश बच्चे पर काका शंकरलाल को तरस आया और वे नरेश जी को नर्मदा तट पर बसे धरमपुरी गाँव में ले आये ।

काका धरमपुरी में तहसीलदार थे । गाँव में बहुत बड़ी कोठी तथा नौकर-चाकर थे । गाँव के बड़े मकान में वृद्ध दादा तथा बुआमाँ दो ही रहते थे । काका शंकरलाल विधुर थे । बालक नरेश का मन यही सोचता था कि सब के घर में रंगीन साड़ी सूखती है, हमारे घर क्यों नहीं ? इतने बड़े मकान में चबूतरे पर खड़े होकर चाचा ऊँचे स्वर में रुद्रपाठ करते तो शांत वातावरण में थोड़ी देर के लिए कोलाहल छा जाता फिर उत्पन्न सन्नाटा नरेश जी को खाने दौड़ता था । चाँदनी रात में रैतीले प्रांगण में से एक चीख सुनाई देती थी ... माँ... ।

दादा, बुआमाँ तथा पिताजी की याद में नरेश जी का मन रो उठता था परंतु यहाँ उसके आँसू पोंछने वाला कोई नहीं था । काका हमेशा फाइलों में उलझे रहते

थे । कालांतर माँ की जगह भरने वाली बहन शांति भी चल बसी । दीदी की मौत ने नरेश जी को जड़ बना दिया । नरेश जी ने जीवन में कभी सुख का राग सुना ही नहीं । वे अपनी वेदना प्रकट करते हुए लिखते हैं - “यदि उस दिन मुझ में रोना फूट पड़ता तो प्रसंग न जाने कब का विगत की घटना बन जाता लेकिन ऐसा लगता है कि मुझ में तब से शाश्वत इसी प्रसंग की वृत्ति चली आ रही है ।”²

धरमपुर से काका का तबादला ‘बदनवार’ होते ही नरेश जी की जीवन यात्रा का तीसरा पड़ाव शुरू हुआ था । ‘बदनवार’ गाँव से नरेश जी अपनी बुआ के घर नरसिंहगढ़ गये । वहाँ जाकर उसने महसूस किया कि वे इस परिवार के नहीं हैं । जो भी हो परंतु यहाँ का प्राकृतिक सौन्दर्य तथा गंगा का हरा-भरा तट उसे शकुन दे रहा था । नरसिंहगढ़ की पर्वतीय वनराजी ने उनके अकेलेपन को सांत्वना प्रदान की । इस दौरान उसकी जीवन-यात्रा चलती रही । खानाबदोश की तरह इधर-उधर भटकते रहे । वे अनेक परिवार से मिले और अनेक चूल्हों की गंध से परिचित हुए । इस भ्रमण के दौरान अपनापन और परायेपन का अनुभव भी किया । इन उतार-चढ़ाव और संघर्षपूर्ण परिस्थितियों के बीच साहित्यकार नरेश मेहता का बचपन गुजरा ।

(3) पिता-पुत्र का संबंध :-

तीन-तीन पत्नी और एक मात्र पुत्री की मौत ने पिताजी को विरक्त बना दिया था । वे अपने सुख-दुःख को अकेले ही भोगते रहे । पिताजी ने अपने दुःख को नरेश के जीवन में बाधा बनने नहीं दिया । पिता-पुत्र के संबंध हमेशा औपचारिक रहें । नरेश छुट्टियों में घर आते तो अपने घर जाने की बजाय काका सिद्धनाथ भट्ट के यहाँ चले जाते । कभी पिता-पुत्र बीच बाजार मिल जाते तो दोनों में “कभी घर आइये” जैसे एक ही वाक्य का संवाद होता था । दोनों एक-दूसरे से मौन और दूर ही रहे । नरेश जी अब 23 वर्ष के हुए, पिताजी भी चल बसे । इतने सालों तक पिता होते हुए भी नरेश जी को अनाथ बच्चे की तरह ही जीना पड़ा ।

(4) छात्रावस्था की भटकन तथा संघर्ष :-

नरेश जी को स्कूली शिक्षा कभी अच्छी नहीं लगी, परंतु बचपन से ही साहित्य के प्रति लगाव था । रोबिन्स क्रुसो, टारजन, अलादीन का चिराग उसके मन के साथी थे । नरेश जी समुद्री लुटेरों, डाकुओं के साहसिक कारनामों तथा बालनगरी की रहस्यमय काल्पनिक कथाएँ बड़े चाव के साथ पढ़ते थे । उन्होंने इतिहास, भूगोल तथा यात्रा-वर्णन को भी नहीं छोड़ा है । अल्पायु में नरसिंहगढ़ के पुजारी के बेटे नारायण सिंगापुरी तथा मित्र शंकरसिंह के साथ नरेश जी ने एक पत्रिका निकाली थी । समय के साथ पत्रिका का नाम तथा स्वरूप याद नहीं रहा किन्तु उस वक्त के उत्साह, लगन और रुचि ने नरेश जी को आगे जाकर संपादक बनने में सहायता की ।

नरेश जी नरसिंहगढ़ में प्रारंभिक शिक्षा समाप्त करके अपने जीजाजी के घर इंदौर चले आये । यहाँ भाड़े की साईकिल को गुलमहोर के पेड़ से टिकाकर रजबाड़े के पुस्तकालय से किताबें लाकर घण्टों तक पढ़ते रहते थे । उज्जैन आकर उसने इंटर पास किया और एम.ए. करने काशी चले गये । काशी जाते समय नरेश जी के पास मात्र बत्तीस रुपये थे । वे काशी से परिचित नहीं थे । वे उलझन में थे कि क्या करें, कहाँ जाये ? तब उसकी मुलाकात प्लेटफॉर्म पर खड़े योगेन्द्रचंद्र और उसकी पत्नी से हुई । ये दोनों नरेश जी को अपने घर ले आये । पश्चात् योगेन्द्रचन्द्र ने नरेश जी को बिड़ला छात्रावास में एक कमरा तथा कॉलेज में दाखिला दिला दिया । नरेश जी के चाचा भोजन, कॉलेज तथा छात्रावास के लिए महिनेभर में बीस रुपये ही भेजते थे । छः पैसे के एक बड़े 'डोसे' में तीन दिन निकाल देते थे । चाचा ने और किफायत बर्तने को कहा तो नरेश जी ने चाचा के रुपये तथा विद्यार्थी को मिलने वाला कन्सेशन स्वीकारने से साफ इन्कार कर दिया । उनका मानना था कि -“किसी से कुछ कहना मेरे आत्मसम्मान को गँवारा नहीं था । किसी भी तरह का काम भले ही झाड़ु लगाने का ही हो । मुझे स्वीकार्य हो सकता है, पर छात्रवृत्ति की कृपा या दान पर पढ़ना स्वीकार नहीं था ।”³

नरेश जी ने इन्टर की पढ़ाई के दौरान राजनीतिक गतिविधियों में सक्रिय रूप से भाग लेना शुरू कर दिया था । वे उज्जैन में 'स्टुडेंट फेडरेशन ऑफ इंडिया' से प्रभावित हुए । 1942 में अपनी पढ़ाई छोड़कर भारत छोड़ो आंदोलन में कूद पड़े । नरेश ने बी.ए., एम.ए. अंग्रेजी माध्यम में करते हुए वेदों का अभ्यास भी कर लिया । नरेश जी ने यु.ओ.टी.सी. नामक सैनिक स्कूल से सैनिक ट्रेनिंग भी प्राप्त की थी । 'देहरादून केन्द्रीय प्रशिक्षण संस्थान' से बाकी ट्रेनिंग पूरी करके लैफ्टिनेन्ट के पद पर नियुक्त हो गये । दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान 'वोर कमिशन' ने उन्हें मध्यपूर्व के मोरचे पर भेजने का निर्णय किया था, परंतु मेजर साहब की जलन ने नरेश जी को साहित्यिक मोरचा सम्हालने के लिए विवश कर दिया । नरेश जी के जीवन में यह बहुत बड़ा हादसा था । वे लिखते हैं कि -

“एक रात मैं शस्त्रागार की 'गार्ड ड्यूटी' पर था । दिसम्बर की कड़ाके की सर्दिया थीं । चारों ओर कुहरा था । उस कुहरे में मुझे किसी के आने की आहट सुनाई पड़ी । मैंने सावधान किया, उत्तर नहीं मिला । नियमानुसार तीन बार सावधान किया । तब भी व्यक्ति ने कोई उत्तर नहीं दिया । सामान्यतया लोग फ्रेंड्स कहते हैं । यदि अफसर होता है तो वह गार्ड पर टोर्च की रोशनी फेंकता है । चूँकि ये दोनों ही नहीं हुए तो मैंने अपनी रायफल में बेनेट फिक्स की । उसने मुझ पर रोशनी डाली । मैंने रायफल 'सोरी, सर' कहते हुए हटा ली ।”⁴

इस घटना के बाद बात का बतंगड़ बना लिया गया । युनिवर्सिटी के वाईस चान्सेलर ने मोर्चे पर जाने की इजाजत नहीं दी । उन दिनों नरेश ने मिलिट्री के जीवन को लूक-छिपकर देखा था, जिन घटनाओं को लेकर नरेश ने एक उपन्यास लिखा 'टेचेस के पीछे' । उपन्यास की भनक मेजर साहब के कानों पर पड़ी तो उन्होंने उपन्यास को जब्त कर लिया । इस घटना के साथ नरेश जी के जीवन का मिलिट्री अध्याय भी समाप्त हो गया ।

(5) व्यवसाय और विवाह :-

नरेश जी पारिवारिक मृत्यु के हाहाकार से व्यथित थे । वह अकेलेपन से

पीड़ित थे । यौवन की दहलीज पर खड़ा मन सप्तरंगी सपनों में खोया हुआ था। तनहाइयों को भरने वाला कोई हो ऐसी भावना बलवती बनती जा रही थी। अपने जीवन में पहली बार किसी मधुर आवाज ने किशोर नरेश को पुकारा, वह आवाज़ अपने घर काम करने वाली महाराजिन की लड़की की थी । नरेश जी यह यौवन सहज आकर्षक को इस प्रकार व्यक्त करते हुए लिखते हैं -“इस लड़की के कारण मेरा मन जितना गड़बड़ाया आज तक कोई भी स्त्री या संबंध को लेकर मैं कभी इतना गड़बड़ाया हूँगा । इस तरह नहीं अकुलाया हूँगा । जैसा कि इसको लेकर ।”⁵

महाराजिन की लड़की के बाद एक और युवति के प्रति नरेश आकर्षित हुए। जीवन के जटिल अनुत्तरित प्रश्नों की वजह से प्रेयसी ने आत्महत्या कर ली, तो नरेश जी की प्रेम विषयक धारणा बदल गई। उनका मानना था कि “प्रेम विवाह का प्रेम, विवाह के बाद नर्क पैदा करता है, जबकि विवाह के बाद किया गया प्रेम स्वर्ग।”

पारिवारिक दबाव तथा दूर के भाई के आग्रह ने नरेश जी को शादी करने के लिए मजबूर कर दिया । नरेश जी ने 1957 में महिमा के साथ शादी कर ली। महिमा जी विवाह पूर्व कानपुर में अध्यापिका थीं । विवाहोपरान्त उसने अच्छी खासी नौकरी से त्यागपत्र दे दिया और पति के साथ दिल्ली चली आई।

नरेश जी को अब पारिवारिक जिम्मेदारी भी निभानी थी, किन्तु आर्थिक विडम्बना उसका पीछा नहीं छोड़ रही थी । इनके पास साक्षात्कार स्थल पर पहुँचने के लिए भी पैसे नहीं होते थे । एक समय तो माँ की दी हुई एक मात्र अँगुठी गिरवी रखनी पड़ी थी । काफी मशकत के बाद नरेश जी को लखनऊ आकाशवाणी अधिकारी के रूप में नियुक्ति मिल गई ।

(ख) बाह्य व्यक्तित्व :

नरेश जी की शांतिपुरी धोती-कुर्ता, पतली फ्रेम के चश्मे, घुँघराले बाल, गौरवर्ण से पूरा-पूरा बंगाली आभिजात्य नज़र आते थे । वे आंतरिक सौन्दर्य के साथ-साथ बाह्य रूप को भी महत्त्वपूर्ण मानते थे । उनका कहना था कि सर्जक के लिए

बाह्य सुन्दरता, रंग-ढंग, पहनावा दर्शनीय होना चाहिए । उनका मानना था कि - “मनुष्य-मनुष्य की तरह, सर्जक सर्जक की तरह व्यवहार करे । सर्जक मात्र सहनशील है, यह जरूरी नहीं । आचरण और भाव-भंगिमा से भी सर्जक - सर्जक लगना चाहिए । नरेश जी ऐसे घटियापन से घृणा करते थे, जहाँ सृजनशील व्यक्ति आचरण से घटिया थे ।”⁶

पूजा, अर्चना और योगासन नरेश का नित्यक्रम था । भोजन में खट्टी-मीठी दाल तथा बासमती चावल और खीर अधिक प्रिय थी । ‘एक सो बीस बाबा जर्दा’ भी खाने की आदत रखते थे । पहनने में वैविध्य पसंद था । रोमान्टिक मिजाजवाले, काव्यलेखन में गहन, गंभीर चिंतनवाले, तबियत से मस्तमौला थे । बोझिल वातावरण को हँसी-मज़ाक से हलका बना देने की क्षमता रखते थे । सौम्य, नम्र, शांत और संतोष उसके जीवन की विशेषता थी । अपने विरोधियों को भी स्नेह करना उनका आदर्श था । जीवन के सुख-दुःख, मान-अपमान, राग-विराग, तृष्णा-वितृष्णा सबको प्रभु का प्रसाद मानकर स्वीकारते गये । नरेश जी अपने अभाव-ग्रस्त जीवन के बारे में बताते हैं - “अँधेरी कोठरी में केवल पानी पीकर रात बितानेवाले नरेश । गंगा की बालू में खुले पाँव चलते मित्रों के बीच ठहाका मारकर हँसते थे । जीवन के सब अभाव अकेलेपन उन ठहाकों में तिरोहित हो जाता था । बिना किसी आजीविका । बीमार पत्नी । छोटे बच्चे । धुँधला भविष्य । विरोधियों की आलोचना । घर पर आये मेहमान की आवभगत के लिए सारे शहर में पाँच रुपये उधार लेने के लिए या मित्रों से माँगने के लिए साईकिल लेकर शहर छानने वाला खाली हाथ ठहाका मार सकता है ।”⁷

अभावों, संघर्षों और दुःखों के बीच हँसते रहना और गीत गुनगुनाना उसकी विशेषता थी । चारों ओर लू बरसती हो, फर्श गर्म हो, घर में पंखा भी न हो और ऐसे दर्दनाक क्षणों में ‘धीरे से आना बगियन में भौंरा धीरे से आना’, ‘पिया मिलन को जाना’ जैसे गीत गुनगुनाते थे ।

वे बड़े भुलक्कड़ प्रकृति के व्यक्ति थे । चक्की पर गेहूँ पिसवाने गये हों और

गेहूँ वहीं छोड़कर मित्र मंडली के साथ कवि सम्मेलन में भाग लेने जाते रहते थे । पानी का गिलास देर से देने जैसी सामान्य बातों पर भी नरेश जी काफी क्रोधित हो जाते थे ।

वे हमेशा कल्पना सुख भोगते रहते थे । घर में एक भी रुपया न हो, पत्नी का क्रोध उफन रहा हो तब वे अपने बनाये जानेवाले घर का नक्शा बनाते नज़र आते। अतिथियों को भोजन पर बुलाने में उन्हें आनंद आता था और स्वयं उसकी तैयारी करते । वे स्वयं झाड़ू-पोछा लगाते, पानी में केवड़ा डालते और भोजन के बाद अतिथियों को पान खिलाकर विदा करते ।

“हर गर्व पथ के पगतल की दुर्गा बने रहने की प्रार्थना ही नरेश के व्यक्तित्व की एक गंध है । इस गंध की माधवी महिमा की विशिष्टता के फलस्वरूप ही साहित्य जगत उन्हें ‘मंत्र पुरुष’, ‘समय देवता’, ‘उत्सव पुरुष’, और ‘वैष्णवी व्यक्तित्व’ से संबोधित करता है ।”⁸

नकलीपन उन्हें पसंद नहीं था और न उन्होंने नकली लोगों से समझौता किया। मन में आये उसी प्रकार फौजी बने, कम्युनिस्ट बने और अंत में स्वतंत्र लेखन को स्वीकारा । पिताजी, चाचा और सौतेली बहन शांति उनके जीवन के प्रेरणा पथ रहे। नरेश जी को स्वभाव एवं संस्कार पिताजी तथा चाचा से अधिकार में मिले थे।

नरेश जी अपनी लेखकीय कमजोरी के बारे में लिखते हैं - “मुझे लगता है कि एक लेखक के नाते मेरी जितनी और जैसी तैयारी होनी चाहिए थी उतनी नहीं रही। उदाहरण के लिए संस्कृत भाषा तथा साहित्य की अनभिज्ञता मुझे अपनी सबसे बड़ी कमी लगती है । ऐसा लगता है कि यदि भाषा और साहित्य के इन मूल उद्गमों से मेरी परिचित पकड़ होती तो सृजन और सर्जक के संबंध में मेरी जो अवधारणा रही है उसके आसपास मैं शायद होता ।”⁹

अतः नरेश व्यक्तित्व से सौम्य, दर्शन में भव्य, स्वभाव से बांसुरी की सी मीठासवाले थे । बचपन से ही नरसिंहगढ़ तथा धरमपुरी की प्रकृति ने अनगिनत प्रेरणा जगाई । उनका मन चाहता रहा इन बैलों की तरह गले घंटी बांधकर चलते

ही जाये या किसी तंबू में पड़े हुए कोहरे को देखते रहे । वे बुद्धि से कुशाग्र तथा स्वभाव से संकोची, संकल्पी एवं स्वाभिमानी थे ।

कई लोगों ने उनके साथ संबंध जोड़े और तोड़े । वैदिक ज्ञान तथा अनुभव ने उन्हें कर्म मार्ग का पथिक बना दिया । वे एकदम किसी के निकट कभी भी जा नहीं सके । समारोह में भी दूर ही बैठते थे । उनकी मृदुता तथा मौन अमुक लोगों के लिए बोझ बन जाती । सामने वाले व्यक्ति को धैर्य से सुनते और खुद तोल-मोल के बोलते थे । दूसरे को प्रभावित करने का प्रयत्न उन्होंने कभी नहीं किया । वे हमेशा खतरों का सामना करते हुए निज पथ पर चलते रहे । ईश्वर से उनकी यही प्रार्थना रही कि -

- “ओ वरेण्य पिता लिख सकूँ प्रत्येक की हाहाकार, कोलहल कथा यह एकान्त दो ।”

वे औरों का सम्मान करने के आग्रही थे और स्वयं भी चाहते थे कि साहित्यकार का उचित सम्मान हो । अपने को अपमानित महसूस होते ही वे क्रोधित हो उठते । उज्जैन में ‘प्रेमचंद सृजनपीठ’ में असुविधा देखकर नरेश उलझ पड़े ।

“मैं शमशेर नहीं नरेश मेहता हूँ । वह रह लिए होंगे, मैं नहीं रह सकता । मैं रहूँगा तो अपनी शर्तों पर और अपने तरीके से, वर्ना जिस दिन मुझे लगा कि ये मुझे अपनी ही शर्तों पर रखेंगे उसी दिन मैं वापस इलाहाबाद लौट जाऊँगा । यहाँ मेरे लिए क्या आकर्षण है ।”¹⁰

नरेश के क्रोधित होने के पीछे सुविधा - असुविधा का प्रश्न गौण था । वे तमाम परिस्थिति में रहने के आदी थे । उनका दुःख केवल इसीलिए था कि जितना सम्मान औरों को मिलता है साहित्यकार को क्यों नहीं ? किसी के दबाव में आकर विवश बनकर समझौता करना उन्हें मान्य नहीं था ।

दृढ़ संकल्प उनके जीवन का मंत्र था । नरेश जी गांधीजी की अहिंसा, ईसु की मानवता तथा बुद्ध की करुणा के प्रखर हिमायती थे । वे सदा निजानंदी, संवेदनशील, ऋजु हृदय के, सत्य के साधक तथा मूल्यनिष्ठ साहित्यकार थे ।

नरेश जी अभिजात्य चारुता से मंडित संपन्न व्यक्तित्व के धनी थे । व्यक्तित्व की भाँति उनका कृतित्व भी आकर्षक एवं वैविध्यपूर्ण रहा । हिन्दी कवितायात्रा में वे छायावादोत्तर कविता के प्रतिनिधि कवि थे । अपनी शैल्यिक सतर्कता, मिथकीय चेतना और मौलिकता के कारण नरेश जी समकालीन हिन्दी कविता में विशिष्ट स्थान के अधिकारी हुए । उनकी लेखनी का स्पर्श पाकर जैसे कविता रोमांचित हुई वैसे ही उपन्यास नाटक आदि विधाएँ भी उनकी प्रयोगशील प्रतिभा से अनुप्राणित हुई।¹¹

(ग) साहित्यिक व्यक्तित्व :

(1) प्रथमबार कविता - लेखन :-

नरेश जी साँझ के समय नरसिंहगढ़ में हनुमानगढ़ी पर्वत की ऊँची चोटी पर खड़े रहकर सूर्योदय देख रहे थे । मन में शब्द अभिव्यक्ति पा रहे थे, क्या कविता ऐसे ही बनती है ? उन्होंने घर आकर एक कविता लिखी । कविता लिखने के बाद कागज को चिंदी बनाकर खिड़की के बाहर फेंक दिया । कविता का जन्म तो हुआ परंतु जन्मते ही कमरे की खिड़की से बाहर उड़ गई । रात के वक्त अचेतन मन से एक आवाज आई मुझे लिखो । नरेश जी ने उठकर लालटेन जलाया और रात के अंधेरे में पहली बार कविता लिखने बैठ गये ।

(2) प्रथम काव्य पाठ :-

नरेश जी कविता लिखते थे किन्तु उन्हें काव्य पाठ का मौका नहीं मिला था । नरसिंहगढ़ की राजमाता ने सरकार के जन्म-दिन पर काव्यपाठ का आयोजन किया था । बड़े-बड़े सिद्धहस्त कवि आमंत्रित किए गये थे । उन दिग्गजों के बीच नरेश जी ने पहलीबार काव्य-पठन किया । खुश होकर राजमाता ने 'पूर्णशंकर' नाम की जगह 'नरेश' नाम दिया । उन्हीं की बदौलत वे कॉलेज, होस्टेल तक पहुँचे थे । अब जब भी काव्य-पठन होता नरेश जी उत्साह से कविता पर कविता सुनाते थे ।

(3) नरेश जी के व्यक्तित्व पर अन्य व्यक्तियों का प्रभाव एवं प्रेरणा :-

नरेश जी 'प्रेमचंद जी' तथा 'गुप्तजी' से काफी प्रभावित रहें । 'नरेन्द्र शर्मा' का 'प्रवासी का गीत' तथा 'हरिवंशराय बच्चन' का 'निशा निमंत्रण' उनके प्रिय काव्य रहे । 'अमरिका भ्रमण' 'चार्ल्स डिकन्स के उपन्यास' तथा 'हिटलर की मीन केम्फ' 'द वर्ल्ड एराउन्ड इन एड्टी डेइस' उनकी प्रिय किताबों में से एक थी ।

उज्जैन में सूर्यनारायण व्यास, पांडेय बेचेन शर्मा, प्रभाकर माचवे, दिनानाथ शेख, मुईनुद्दीन तथा नरेन्द्र धीर जैसे व्यक्ति मिले थे । वे सभी नरेश के साहित्य लेखन के आरंभिक स्रोत रहें । नरेश जी 1942 - भारत छोड़ो आंदोलन के वक्त लिखी गयी सोहनलाल द्विवेदी की कविता 'माँ आज सवेरे कौन बजाता रणभेरी' सुनकर रोमांचित हो उठे थे ।

काशी साहित्य का गढ़ माना जाता था । नरेश जी काशी आकर अपनी साहित्यिक रचनात्मकता को समृद्ध बनाना चाहते थे । नरेश जी जब काशी में आये तब प्रेमचंद, प्रसाद तथा रामचंद्र शुक्ल दिवंगत हो चुके थे । यहाँ नरेश जी को श्यामसुंदर दास, शांतिप्रिय द्विवेदी, हास्य कवि बेदब बनारसी, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र तथा भाषा शास्त्री केशवजी की निकटता प्राप्त हुई ।

नरेश जी ने समय के साथ विद्यार्थी कवियों का संकलन 'तथागत' शुरू किया । उनके अति प्रिय दो स्थल 'गोविंद लोज', तथा 'बिडला छात्रावास' थे । छात्रावास की छत पर से वे घंटों तक आकाश देखते रहते । उन दिनों कई वैदिक कविताओं का स्फुरण हुआ । काशी के संघर्षपूर्ण जीवन से छुटकारा पाने नरेश जी मालवा लौटना चाहते थे, परंतु वे लौट नहीं सके । उनका कहना था कि -“अहल्या घाट पर बंगला कीर्तन और कथाओं ने मुझे पुनर्जन्म दिया । गमछा लपेटे, तेल लगाते साहू डंड पिलते गुरु बांस की गोल छतरिया के नीचे संकल्प कराते पंडे, डूबकियाँ लगाते लोग, सीढ़ियाँ चढ़ते दण्डी स्वामी, चाट और चना मुरमुरा बेचते दुकानदार इन सबने मुझे उन दुर्दान्त परिस्थितियों में टूटने से बचा लिया ।”¹²

नरेश जी के पास मालवा जाने के पैसे नहीं होते तब वे साड़ियों की दुकान

पर कविता सुनाकर पैसे इकठ्ठे करते । भीषण दंगा-फसाद के कारण काशी छोड़कर नरेश जी लखनऊ चले आये । नरेश जी लखनऊ अपने चचेरे भाई के यहाँ ठहरे थे । दोनों के लिए होटल से मात्र एक थाली भोजन आता था। नरेश जी को भाई के अलावा कोई सहारा नहीं था । एक दिन दशहरी के उत्सव में भाई राजापुर गये, तो फिर कभी नहीं लौटे । नरेश जी के भूखे रहने के दिन शुरू हो गये । पूरा लखनऊ शहर साईकिल के बिना पैदल ही काटना पड़ता था । कभी-कभी रेडियो वार्तालाप के रूपये मिल जाते तो खुश होकर भर पेट भोजन कर लेते थे । इतने संघर्षमय जीवन जीते हुए भी नरेश जी ने आचार्य नंददुलारे बाजपेयी के निर्देशन में संशोधन कार्य शुरू किया । अंत में वे लखनऊ छोड़कर अन्यत्र चले गये और संशोधन अपूर्ण रह गया ।

(4) साहित्यकार के रूप में नरेश जी का जन्म :-

लखनऊ में यशपाल, भगवतीचरण वर्मा, उदयशंकर भट्ट, अमृतलाल नागर, गिरिजा कुमार माथुर, कुँवर नारायण, रुपनारायण पांडे आदि महानुभावों से नरेश जी की भेंट हुई । लखनऊ में यशपाल जी 'विप्लव' नामक कार्यालय चला रहे थे । इस कार्यालय पर प्रगतिशील लेखकों की बैठक हुआ करती थी । नरेश जी को उन सभी लेखकों का लाभ मिला था । आपकी प्रथम लम्बी कविता का जन्म लखनऊ में ही हुआ था । इस कविता का नाम नरेश जी ने 'समय देवता' रखा था । 'डूबते मस्तूल' उपन्यास लेखन की नींव भी लखनऊ में ही पड़ी । नरेश जी के विरोधियों ने कम्युनिस्ट के 'फैलो ट्रेवेलर' (अनुगामी) कहकर आकाशवाणी लखनऊ से इलाहाबाद तबादला करवा दिया । कालांतर इलाहाबाद में अज्ञेय जी द्वारा संपादित 'दूसरे सप्तक' के प्रतिष्ठित कवि के रूप में स्थापित हुए ।

उस समय लखनऊ को उर्दू का गढ़ माना जाता था और इलाहाबाद को साहित्यिक मक्का । नरेश जी इलाहाबाद में सरदार अमृतराय के घर रहते थे । यहाँ उनका परिचय इलाचन्द्र जोशी, नैमिचंद्र जैन, शमशेर बहादुर सिंह, नागार्जुन, दुष्यंत, मार्कण्डेय तथा कमलेश्वर से हुआ ।

अपने कुछ आदर्श और इलाहाबाद के साहित्यकारों की आपसी राजनीति की वजह से फिर एक बार नरेश जी को इलाहाबाद छोड़कर नागपुर जाना पड़ा। नागपुर आना उनके लिए सुखद हुआ, क्योंकि मुक्तिबोध के साथ चल रहा विरोध आत्मीयता में बदल गया ।

स्वतंत्र लेखन का स्वप्न लेकर नरेश जी नागपुर से दिल्ली चले आये । यहाँ आकर उन्होंने 'सोवियत मैत्री संघ' का कार्यभार संभाला । यहाँ उनकी भेंट रामकुमार वर्मा, निर्मलकुमार वर्मा तथा भीष्म साहनी के साथ हुई । इन लोगों के साथ मिलकर नरेश जी ने 'साहित्यकार' नामक पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया। कालान्तर नरेश जी दिल्ली में रहकर काफी दुःखी हो गये । व्यक्तिगत जीवन में घटित घटनाओं ने नरेश जी को मर्मन्त तक हिला दिया । इन हादसों को भुलाने नरेश जी 'गांधी प्रतिष्ठान' में जुड़ गये । 'गांधी प्रतिष्ठान' में काका साहब कालेलकर के वर्चस्व में काम करना ठीक नहीं लगा और नरेश जी ने उसे भी अलविदा कह दिया । नरेश जी निराश और हताश हो गये थे, ऐसे क्षणों में कृष्णा सोबती एक अच्छी दोस्त बनकर खड़ी रही । हताशा से उभरकर 'कृति' पत्रिका का संपादन कार्य हाथ में लिया । संगीत नाट्य प्रतियोगिता के उपलक्ष्य में 'खंडित यात्राएँ' नाट्य लेखन की शुरुआत हुई । मित्र जगदीश बाजपेयी तथा उनकी पत्नी के सहयोग से 'बन पाखी सुनो' नामक काव्य संग्रह भी प्रकाशित हुआ ।

नरेश जी को सृजनात्मक कार्य के लिए दिल्ली शहर ठीक नहीं लगा और वे स्वतंत्र लेखन के लिए इलाहाबाद चले अये । यहाँ आकर आर्थिक संकट बढ़ गया । यहाँ आने पर पछतावा होने लगा था । कई क्षण ऐसे आये कि - "धीरे-धीरे मुझे अपने पर से जैसे विश्वास उठता जा रहा था कि स्वतंत्र लेखन करने का मेरा निर्णय क्या सही था ? और यदि सही नहीं था तो अब क्या होगा । लौटने के लिए और कहीं कोई भूमि दूर-दूर तक नहीं थी । दिल्ली में लोगों ने इस आत्मघाती निर्णय के लिए कितना समझाया था । प्रत्येक दिन के बीतने के साथ जीवन की दुर्दान्त विभीषिका और निकट आ गयी । लगता अजीब दूर भी थी कि चाहते हुए भी लिखना नहीं हो

पा रहा था । कई बार मन में आया कि स्वतंत्र लेखन का निर्णय जिद्द थी ।¹³

नरेश जी अंधकार में डूब गये थे, तब उसके जीवन में 'आत्मीय वाचस्पती पाठक जी' ने दीपक जलाकर रोशनी फैलायी । उन्होंने सांत्वना, प्रेरणा, प्रोत्साहन तथा सहायता देकर बिखरे-टूटे नरेश जी को बचा लिया । उस समय नरेश जी ने आकाशवाणी से त्यागपत्र देकर अपनी आर्थिक परेशानियों को और भी बढ़ा दिया । नरेश जी की पत्नी महिमा आर्थिक संकट में पति को सहायता देने हेतु नौकरी करने का फैसला करती है । पत्नी की बुलंद आवाज़ से प्रेरित नरेश जी के भीतर साहित्य सृजन का स्रोत फूट पड़ा । एक साथ 'संशय की एक रात' सहित आठ किताबें तीन हजार की पेशगी पर 'हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर' को प्रकाशित करने के लिए तैयार किया, परंतु प्रकाशक ने चारसौ रुपये देकर नरेश जी के साथ धोखा किया । नरेश जी ने अदालत में जाने की बजाय रुपये को भूल जाने का निर्णय लिया ।

उन्हीं दिनों 'नेशनल पब्लिशिंग हाउस' ने 'धूमकेतु एक श्रुति' तथा 'नदी यशस्वी है' नामक कृति का प्रकाशन किया । 'प्रथम फाल्गुन' उपन्यास 'वोरा एण्ड कंपनी' ने खरीद लिया था । 'लोक भारती प्रकाशन' भी अन्य किताबें छापने की पैरवी में था । अब नरेश जी का लेखन कार्य जोरों पर था । लेखन में अपनी बेटी का जन्मदिन भी भूल जाते थे । नरेश जी तथा पत्नी महिमा स्वाभिमानी एवं आत्मसम्मानि थे । महिमा के माता-पिता इलाहाबाद में रहते थे फिर भी कभी महिमा ने उसके सामने हाथ नहीं फैलाये । दोनों ने मिलकर हर मुश्किलों का सामना किया था ।

उन दिनों आनंद मोहन रावल तथा मालती रावल, शैषचन्द्र शर्मा और राजकुमारी जैसे आत्मीय मित्रों ने नरेश जी के आत्मबल को बढ़ाया था । नरेश जी का साहित्य बंगला साहित्य से चुराया गया साहित्य है, ऐसे आरोप विरोधियों द्वारा लगाये गये । इन अवरोधों-आरोपों के बीच मध्यप्रदेश सरकार ने नरेश जी को 'सारस्वत सम्मान' से सम्मानित किया । 'संशय की एक रात' नागपुर विश्व विद्यालय के अभ्यासक्रम में रखी गई थी । लोकभारती प्रकाशन ने 'उत्सवा' काव्य-संग्रह

प्रकाशित किया । नरेश जी को नौकरी की जरूरत थी ऐसे समय में उज्जैन हिन्दी विश्वविद्यालय के विभागाध्यक्ष के लिए उसे आमंत्रण मिला, परंतु नरेश जी ने उसे सहर्ष ठुकरा दिया । 1983 में 'उत्तर कथा भाग एक' और 1984 में 'उत्तरकथा - भाग दो' संपन्न हुआ । कालान्तर नरेश जी 'प्रेमचन्द सृजनपीठ' के अध्यक्ष के रूप में दो साल के लिए उज्जैन चले आये । यहाँ वे दो साल के बजाय सात साल तक रहे। पश्चात् अशोक बाजपेयी की मृत्यु तथा सरकार परिवर्तन से नरेश जी का मन उज्जैन से उठ गया । उन्होंने उज्जैन छोड़कर इंदौर जाने का निर्णय किया । इंदौर में प्रभाकर माचवे की मृत्यु के कारण 'दैनिक चौथा संसार' का संपादन कार्य खाली पड़ा था, नरेश जी ने उस रिक्त स्थान को भर लिया ।

नरेश जी अब वैश्विक इन्सान बन गये थे । उन्होंने 'युगोस्लाविया विश्व काव्य समारोह' में भारत का प्रतिनिधित्व किया । यहाँ से बेटी वान्या और जामाता के घर दुबई जाने का अवसर मिला । बेटी के घर रहकर 'कितना अकेला आकाश' यात्रा-वर्णन लिखा, किन्तु आलस्य कहे या वैराग्य नरेश जी ने उसे प्रकाशित करने का प्रयास कभी भी नहीं किया ।

नरेश जी ने कई सालों तक 'दैनिक चौथा संसार' का संपादन करते हुए इंदौर में स्थायी निवास बना लिया ।

(घ) वैचारिक व्यक्तित्व के विभिन्न आयाम :

नरेश जी ने स्नातक कक्षा में राजनीतिशास्त्र, प्राचीन इतिहास तथा हिन्दी साहित्य का अध्ययन किया । नरेश जी ने कतिपय विधाओं को स्पर्श किया, परंतु हिन्दी साहित्य में एक कवि के रूप में चिरस्मरणीय हो गये । स्वाभिमान, संकल्प और फकीरी उनके प्रेरणा स्रोत थे । उनके काव्यों में प्राचीन भारतीय संस्कृति के गौरवगान तथा राजा और राज्यव्यवस्था संबंधी विचार पढ़कर लगता है कि राजनीति तथा इतिहास विषय को उन्होंने गहराई से पढ़ा था । किशोर अवस्था में वीर भगतसिंह की मृत्यु के बाद नरेश जी खादी टोपी तथा बागी गजलें खरीद लाये थे ।

नरेश जी सक्रिय राजनीतिज्ञ न बन पाये और न वह कम्युनिस्ट बन पाये। उनका कम्युनिस्ट होना कांग्रेस के विरोध तक सीमित था। नरेश जी ने अपने जीवन काल दौरान आर्थिक अभाव एवं शोषण का सामना किया, परंतु नये कवियों की भांति 'रोटी' पर कविता नहीं लिखी।

नरेश जी ने भारतीय चिंतनधारा को आत्मसात् कर लिया था। उन्होंने अपनी चिंतनधारा को प्रकट करने के लिए परंपरागत कथा-स्त्रोतों का न केवल सहारा लिया, बल्कि उनको वर्तमान समय की माँग के मुताबिक प्रस्तुत भी किया। रामायण तथा महाभारत के पौराणिक चरित्रों की मिथकीय चेतना में ढालकर नया रूप दिया। उन्होंने हमारे युगीन वर्तमान प्रश्नों को भारतीय चिंतनधारा के साथ जोड़ा। वेद के प्रति उसके मन में बड़ी आस्था थी और उपनिषद उनके लिए प्रेरणा स्त्रोत रहा।

नरेश जी कहते थे कि इस देश के पास अठारह पुरान, वेद, उपनिषद आदि सब कुछ है। यह देश प्राचीन भव्य दर्शनधारा का स्वामी है। इतना विशाल चिंतन स्त्रोत होते हुए भी देश हैरान क्यों है? हमारी संस्कृति निष्काम कर्म का संदेश देती है, फिर भी, देश आलसी, कामचोर और उदासीन क्यों है? सत्य, अहिंसा, दया, प्रेम, करुणा, मैत्री, मानवता, बंधुत्व जैसे गुणवाले इस देश में युद्ध का भय क्यों है? सर्वत्र हिंसा क्यों है? मनुष्य असुरक्षित - असलामत क्यों है?

नरेश जी का व्यक्तित्व अपने युगीन कवियों से हटकर था। नरेश दूसरे सप्तक के प्रतिष्ठित कवि थे। वे इस सप्तक के अन्य कवियों से बिल्कुल भिन्न विचारों वाले थे। नरेश जी की दृष्टि में सब मार्ग की अपनी दिशा, सूर्योदय तथा क्षितिज अलग होती है। उनकी कविता में रुमानियत है, प्रकृति है, देश में व्याप्त विविध वर्तमान प्रश्न भी है।

नरेश जी के समष्टिगत दृष्टिकोण के कवि थे। उन्होंने सांप्रत परिस्थिति में अनेकानेक समस्याओं से घिरे दुःखी और व्यथित मनुष्य की पीड़ा को भोगा था। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद खुशहाली के सपने देखनेवाले मनुष्य का मोहभंग, नैराश्य, घुटन आदि यंत्रणाओं का सटीक निरूपण नरेश जी की कविता में मिलता है।

‘बन पाखी सुनो’ प्रकृति के माध्यम से रागतत्व को चित्रित करनेवाला काव्य संग्रह है । ‘बोलने दो चीड़ को’ में प्राकृतिक सौन्दर्य और सामाजिक चेतना का स्वर है । ‘मेरा समर्पित एकांत’ रहस्यमयी भावसृष्टि के द्वारा आध्यात्मिक विचारों का काव्य है । ‘प्रार्थना पुरुष’ महात्मा गांधी की जीवनगाथा है । ‘शबरी’ में उपेक्षिता नारी के उद्धार की कथा है । ‘महा प्रस्थान’ राजा, राज्य व्यवस्था और राजकीय कुचक्र का काव्य है । ‘संशय की एक रात’ में युद्ध एवं शांति, व्यक्ति एवं समष्टि, लघु और विराट का प्रश्न, एकांतिक आत्ममंथन, खंडित व्यक्तित्व, मानवता की स्थापना, उत्तम लोकप्रणाली तथा उत्तम राज्य व्यवस्था आदि का निरूपण है । ‘प्रवाद पर्व’ में आम आदमी की अभिव्यक्ति, स्वातंत्र्य की महत्ता, राजा-प्रजा का संबंध, राष्ट्र का गौरव आदि विचार प्रकट किए हैं ।

नरेश आस्था के कवि रहें हैं । उनकी कविता ‘समय देवता’ में आस्था का प्रबल स्वर सुनाई पड़ता है -

“समय देवता आज विदा लो
किंतु तुम्हारे रेशम के इस चमक वस्त्र में
मिट्टी का विश्वास
बाँधकर भेज रहा हूँ
मेरी धरती पुष्पवती है
और मनुज की पैशानी के चारगाह पर दौड़ रही हैं
तूफानों की नई हवाएँ ।”¹⁴

नरेश जी की आस्था दृढ़ है । विद्रोह की भावना प्रबल है । संघर्ष से दूर हटना उन्हें पसंद नहीं । वे अपनी दृष्टि, वाणी सब कुछ छीन जाने पर अपने सत्य के बल पर लड़ना चाहते हैं ।

आज भी / अनागत भी / उस ओर वाले आगत भी
लडूँगा मैं / विवश नहीं होऊँगा मैं
और कृपापाशित भी नहीं

नहीं ॥ नहीं ॥ नहीं ॥

नरेश जी की समग्र प्रकृति मंगलमयी प्रार्थना की पुकार है । नरेश जी प्रकृति के माध्यम से परमात्मा का नैकट्य तथा प्रकृति के कण-कण में मानुषी गंध का अनुभव करते हैं । उनकी दृष्टि से सारी सृष्टि प्रभु की अनुकंपा है । सारी वनस्पति में एक पारिवारिक भाव होता है । उनकी प्रकृति-परक कविताएँ उत्सवमय, उल्लासमय, आनंदमय है । नरेश जी अपनी कविता के जरिए विराट से लघुता, प्रकाश से अंधकार तथा कोमलता से कठोरता का समदृष्टि भाव जगाते हैं ।

“अविश्वास मत करना

प्रत्येक पगदंडी से मनुष गंध आती है ।

किसी भी मंत्र को सूँघो

किसी भी स्त्रोत को छुओ

मानुष की गंध और जयकार दिखायी देगी ।”¹⁵

प्रकृति और प्रेम नरेश काव्य की आत्मा है। उनकी कविताओं में धूप-छाँव, पैड़-पौधे, फूल-पत्ते, प्रकाश-अंधकार, हवा, तितली इनकी कविता के प्राण हैं । उनका प्रेम दैहिक होते हुए भी आध्यात्मिक या कृष्ण की लीलाभाव की अनुभूति करावाता है।

“स्पर्श का

यह कैसा अलौकिक आह्लाद था प्रिय कि

आज जब भी

कोई पत्र अंकुरित होने को होता है

तो कीर्तन का महाभाव

पद का लालित्य

गुलाब की रंगमयता

प्रिया... ! पूरी देह

रास स्थली

संकेत मंडप लगने लगती है । (नामवृक्ष)''¹⁶

नरेश जी की कविता में नदी-झरने, पर्वत-सागर, संध्या-उषा, सूर्योदय-सूर्यास्त के सैंकड़ों रूप वर्णन मिलते हैं । उनकी प्रकृति में दान और कल्याण की भावना है । कवि धूप को भी वैष्णव की कंठी की तरह शरीर पर धारण करते हैं। कवि को देव वस्त्रों में आभूषित कोमल धूप साध्वी-सी प्रतीत होती है। नरेश जी प्रकृति में परमात्मा के दर्शन करवाकर पूरे ब्रह्मांड में एक ही ईश्वर व्याप्त है की श्रद्धा प्रकट करते हैं -

“इस कोमल गान्धार धूप को

कभी अपने अंगों पर धारा है

प्रतिदिन पीताम्बरा यह

वैष्णवी

किसके अनुग्रह सी

अक्लंक बनी रहती है ।.....

.....इस गोरा साधवी धूप को

कभी अपने पर कंठी-सा धारा है । (धूप-कृष्णा)''¹⁷

नरेश जी की कविता में हिमालय की धवलता, चीड़ और देवदार के वृक्षों की ऊँचाई तथा भोजपत्रों-सी पवित्रता है । नरेश जी की कविता का विस्तार पृथ्वी से आकाश तक फैला हुआ है । उनकी कविता पढ़कर पृथ्वी आकाशगंगा तथा पूरे ब्रह्मांड संबंधित सूक्ष्म ज्ञान का परिचय मिलता है ।

कवि ने अपने युग का चित्र देखकर न केवल चिंता प्रकट की है बल्कि लोगों को सावधान भी किया है । आज संपूर्ण धरती मानवीय पैशाचिक वृत्ति से आक्रांत है । सर्वत्र कुटिलता, क्रूरता, छल-प्रपंच, चालाकी, हत्या-आत्महत्या और बलात्कार तथा युद्ध नज़र आता है । इस अशांत परिस्थिति में प्रकृति ही हमें सांत्वना दे सकती है।

नरेश जी केवल मनीषी नहीं बल्कि अथक लीला विलासी वैष्णव भी थे । उनका 'उत्सवा' काव्य संग्रह धरती के लीलाभाव का काव्य है । 'उत्सवा' में कवि पृथ्वी को वेद-उपनिषद् संहिताएँ और स्त्रोत तथा स्तुति की उपाधि से विभूषित करता

है । नरेश जी लिखते हैं -

“गायत्री वर्णवाली उज्ज्वल दिशाओं के वेद
औषधियों के अगार, अरण्यां के उपनिषद
उर्ध्व रेतस वाले पर्वतों के शतपथ ब्राह्मण
सर्वग्राम्या । सर्वसुलभा नदियों की संहिताएँ
एकाग्र मनस ब्रह्मचारियों जैसे प्रपातों के स्त्रोत
सामायिक चरणों जैसी मेघों की स्तुतियाँ
श्वेत केशवाले सन्यासी समय के पुराण
हस्ताम कलवत निद्राजयी समुद्रों के भाष्य
और हरीद्र दुर्वाकरों जैसी आकुल मानवीय प्रार्थनाएँ ।”¹⁸

नरेश जी प्रकृति और पर्यावरण प्रेमी हैं । वे समग्र प्रकृति के प्रति कृतज्ञता का भाव रखते हैं । उनकी ऋषि दृष्टि भारतीय संस्कृति के प्रति सम्माननीय भावना प्रकट करती है । नरेश के लिए समस्त पृथ्वी एक छंद ही है । उन्हें पूरा ब्रह्मांड एक कविता लगता है । ‘उत्सवा’ और ‘अरण्या’ महाभाव-पराभाव तथा ब्रह्माण्डीय चेतना की कविता है । नरेश जी की कविता भक्तियुगीन कवियों की भाँति है, जिसमें रास कीर्तनमय परमलीला का भाव व्यक्त हुआ है । नरेश जी के काव्य संबंधी विचार ही उनके काव्य को स्पष्ट कर देते हैं ।

“जांगलिकता से सांस्कृतिकता की ओर, देह से मन की ओर, जड़त्व से चेतनतत्त्व की ओर मानवीय यात्रा संपन्न हुई, इसका एक मात्र प्रमाण काव्य है।”¹⁹

नरेश जी ने पृथ्वी और प्रकृति के साथ-साथ भूमंडल पर देवता से भी मनुष्य को महान बताया है । नरेश जी पृथ्वी तथा पृथ्वी पर रहनेवाले मनुष्य मात्र का अभिषेक करना चाहते हैं । उनकी दृष्टि में प्रत्येक नाम एक विशेष संदर्भ एवं मूल्य रखता है ।

“लोग होने का अर्थ
नामों को कुचलना नहीं होता

आओ

हम सब अपने-अपने नाम खोज निकाले
भीड़ों की असावधानियों से जो कुचल गये हैं
क्योंकि वे मूल्य हैं ।’²⁰

नरेश जी मनुष्य को सूर्य के समान तेजस्वी, देवत्व से पूर्ण देखना चाहते थे।
मनुष्य को पृथ्वी से ब्रह्मांड तक के प्रतिनिधि के रूप में स्थापित करते हुए वे कहते
हैं-

“एक दिन मनुष्य सूर्य बनेगा
क्योंकि वह आकाश में पृथिवी का
और पृथ्वी पर आकाश का प्रतिनिधि होगा
मनुष्य के इस देवत्व के माध्यम से ही
यह सम्पूर्ण सृष्टि ईश्वरत्व प्राप्त करेगी ।’²¹

‘समय देवता’ कविता में मनुष्य की अदम्य शक्ति का परिचय देते हुए कवि
लिखते हैं -

“कौन रोक सकता है मानव को
चलने से
जिसके संग-संग आदि काल से
इन्द्र चल रहा
मनुज चल सके इसीलिए वो
अंधकार में सूर्य जल रहा
जहाँ गया मनुपुत्र
नदी में जल पहुँचाया
रत्नभंरा धराने मानव को
शत शत हीरों से लादा
मनुज चला तो ।’²²

नरेश जी मानवता और विश्वशांति के समर्थक हैं । दो विश्व युद्धों ने उन्हें सोचने पर मजबूर कर दिया । उन्होंने 'महाप्रस्थान' एवं 'संशय की एक रात' में युधिष्ठिर तथा राम के माध्यम से युद्ध-विषयक विचारों को व्यक्त करते हुए दया, करुणा और विश्वबंधुता की भावना प्रकट की है । 'संशय की एक रात' में युद्ध टालने की राम की मनोवृत्ति में कायरता के दर्शन नहीं होते, बल्कि वे लक्ष्मण से कहते हैं -

“मैं नहीं हूँ कापुरुष
युद्ध नहीं है मेरी कुंठा
पर युद्ध प्रिय भी नहीं ।”²³

राम मनुष्य को प्रमुख मानते हैं । उनके लिए व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए युद्ध करना अनिवार्य नहीं है । उनका विचार था कि -

“मैं सत्य चाहता हूँ
युद्ध से नहीं
खड्ग से भी नहीं
मानव से मानव का सत्य चाहता हूँ ।”²⁴

“मैं केवल युद्ध को बचाना चाहता रहा हूँ बंधु
मानव में श्रेष्ठ जो विराजा है
उसको ही
हाँ उसको ही जगाना चाहता हूँ बंधु
क्या यह संभव है ?
क्या यह नहीं है ?”²⁵

नरेश जी की दृष्टि में युद्ध विनाशक एवं पीड़ाकारी है । युद्ध से व्यक्ति में पशुता जन्म लेती है । आवश्यक परिस्थितियों में ही युद्ध का निर्णय लेना चाहिए । युद्ध का हेतु स्वार्थ नहीं, बल्कि परमार्थ होना चाहिए । नरेश जी संधि के हिमायती

हैं। वे चाहते हैं कि संधि के दरवाजे बन्द होने पर ही युद्ध का दरवाजा खोलना चाहिए । नरेश जी युद्ध के पक्ष में भी हैं और विपक्ष में भी । 'संशय की एक रात' में हनुमान, जामवंत, लक्ष्मण, विभीषण, दशरथ और जटायु के समूह स्वर में एक ही बात स्पष्ट होती है कि -

“युद्ध मंत्रणा नहीं
एक दर्शन है राम
अंतिम मार्ग है
स्वत्व और अधिकार अर्जन का
किसी किसी युग में
युद्ध ही
अंतिम सत्य दर्शन हुआ करता मित्र
शेष
शोभा वंचना ।”²⁶

नरेश जी का मानना था कि युद्ध की अनिवार्यता तब होती है, जब हमारे मूल्य नष्ट हो जाते हैं । 'महा प्रस्थान' खंडकाव्य में निर्वेद अवस्था में युधिष्ठिर कहते हैं -

“मूल्य और मानवीय उदात्तताएँ
जब सार्वजनिक जीवन में
हो जाती है शेष
तभी हो जाता है युद्ध
युद्ध का घोष
युधिष्ठिर हो
या हो कृष्ण
युद्ध का एक मात्र है तर्क
विजय के सम्मुख
मूल्यवानता का क्या है अर्थ ।”²⁷

युद्ध केवल राज्य विस्तार के लिए ही नहीं बल्कि धर्म के लिए, शांति के लिए, न्याय के लिए एवं मूल्य के लिए भी लड़े गये हैं । सारे प्रश्नों का उत्तर मात्र युद्ध नहीं है । 'संशय की एक रात' में राम का संशय प्रत्येक प्रज्ञावान, करुणावान व्यक्ति का संशय है । 'राम' का संशय कवि नरेश का भी संशय है। राम का युद्ध के प्रति मुख मोड़ना मानवता को बचाये रखना ही है । वे लक्ष्मण को कहते हैं, "यह प्रश्न केवल मेरा प्रश्न नहीं प्रत्येक विश्वमानव का, प्रज्ञावान मनुष्य का चिंतायुक्त प्रश्न है।"

मानव संस्कृति की समस्त विकासयात्रा के बावजूद भी युद्ध की बर्बरता से हम बच नहीं पाये हैं । विज्ञान की खोज ने पृथ्वी को क्षण भर में नष्ट करने की क्षमता हासिल कर ली है । यह युग विनाश की शक्तिशाली क्षमता का युग कह सकते हैं । मनुष्य को संकट की इस घड़ी में अपने विवेक को विराट बनाना पड़ेगा । मानवता का प्रचार करना पड़ेगा ।

“करुणा मेरा धर्म है भीम
किसी भी संबंध
साम्राज्य या शक्ति के सामने
मैं इसे नहीं छोड़ सकता
विश्वास करो धर्म के मूल्य पर
मैं स्वर्ग भी अस्वीकार कर सकता हूँ भीम ।”²⁸

युद्ध के लिए नरेश जी राजा या राज्य व्यवस्था तथा शासक और शासन प्रणाली को ही केन्द्र में रखते हैं । कवि ने 'महा प्रस्थान' में युधिष्ठिर के माध्यम से आम आदमी का महत्त्व स्थापित किया है, जबकि 'प्रवादपर्व' में धोबी की उठी हुई अंगुलि को उत्तम लोकतंत्र की स्थापना में अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य के महत्त्व को प्रकट किया है ।

इंदिरा जी जब आपात्काल लगाकर स्वयं राष्ट्र का पर्याय बन गयी थी, तब मनुष्य की आकांक्षा तथा वाणी स्वातंत्र्य की हिमायत करनेवाला शासक कैसा होना चाहिए इस पर अपने विचार प्रकट करते हुए लिखते हैं कि - शासक प्रजा का आदर

करने वाला एवं प्रजा के अधिकारों को ध्यान रखने वाला होना चाहिए। प्रजा को वाणीहीन करने का अर्थ है इतिहास को वाणीहीन करना। शासक उदात्त होना चाहिए । राज्य कभी भय से नहीं चलता । वाणी तथा अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य के नरेश जी हिमायती थे । ‘प्रवाद पर्व’ में राम यदि चाहते तो धोबी की आवाज को दबा सकते थे, परंतु राम ने ऐसा नहीं किया ।

“स्वाधीनता या
अभिव्यक्ति स्वतंत्रता का दुरुपयोग
यदि अनुत्तर दायित्वपूर्ण वाचालता है
तो महानुभावों
कायरता पूर्ण सहमति
उसमें भी बड़ा दुरुपयोग है
असहमति का अर्थ
निरंकुशता
अराजकता या राजद्रोह नहीं होता ।”²⁹

“गूँगेपन से कहीं श्रेयस है
वाचालता
जिस दिन
मनुष्य अभिव्यक्ति हीन हो जाएगा
वह सबसे अधिक दुर्भाग्यपूर्ण दिन होगा ।”³⁰

महाभारत के युद्ध में युधिष्ठिर ने मानवीय मूल्यों की रक्षा हेतु ही शस्त्र उठाये थे । लोग जितनी राजनैतिक नृशंसता को महत्त्व देते हैं उतना मानवता को नहीं। जब तक मनुष्य मानवतावादी दृष्टिकोण नहीं अपनायेगा तब तक हमारा विकास संभव नहीं है । युधिष्ठिर राज्य व्यवस्था के बदले व्यक्ति महत्ता की बात करते हैं । राज्य से भी व्यक्ति बड़ा है ।

“किसी भी साम्राज्य से बड़ा है

एक बन्धु

एक अनाम मनुष्य

मुझे मनुष्य में विराजे देवता में

सदा विश्वास रहा है ।”³¹

युधिष्ठिर की चिंता मनुष्य के प्रति मानवीय दृष्टिकोण रखने की है । वे राज्य व्यवस्था की ओर अंगुलि निर्देश करते हुए मनुष्य को इस बारे में सोचने को कहते हैं-

“कभी उन

विचार हारा साधारण जन के बारे में सोचो

जो सदा अपमानित होते रहे हैं ।

जिनके स्वत्व का अपहरण ही

हमारे ये दीप्ति साम्राज्य हैं ।”³²

युधिष्ठिर के माध्यम से नरेश जी कहते हैं कि सारे मानवीय दुःखों और प्रश्नों के मूल में हमारी गलत अमानवीय राज्य व्यवस्था है । नरेश जी साधारण मनुष्य के प्रति ज्यादा संवेदनशील रहे हैं । उनका मानना था कि इतिहास खड़ग से नहीं मानवीय उदात्तताओं से लिखा जाना चाहिए । शासक सत्य प्रिय होना चाहिए ।

“व्यक्ति

चाहे वह राजपुरुष हो या

इतिहास पुरुष अथवा

पुराण पुरुष

मानवीय देशकाल से ऊपर नहीं होता राम

इतिहास से भी बड़ा मूल्य है

सत्य

परात्पर सत्य ऋत ।”³³

‘प्रवादपर्व’ में धोबी द्वारा उठाई गई अंगुलि सत्य की अभिव्यक्ति है । ऐसी

अंगुलि को काट देना मानवीय वाणी स्वातंत्र्य पर राजसत्ता का दमन है । प्रत्येक व्यक्ति को अभिव्यक्ति की आज़ादी होनी चाहिए । राजा का न्याय समदर्शी होना चाहिए । दबावों में आकर हम किसी बात का समर्थन करे इससे अच्छा है कि हम साहसपूर्ण अभिव्यक्ति करें । अभिव्यक्ति के कुचल जाने पर विद्रोह की संभावना बनी रहती है ।

“जब-जब हम लोगों को इतिहासहीन कर देने की

चेष्टा की गई है ।

तब-तब वे लोग अपनी पिपीलिकावत

साधारणता के साथ

इतिहास की आग पर चलकर

पुराण पुरुष बन जाते रहे हैं ।”³⁴

व्यक्ति की उपेक्षा से हमारे अंदर संज्ञाहीनता आ जाती है । द्रौपदी को इन्सान न मानकर चीज़ मानकर कौरवों ने उसके वस्त्र खींच लिए और परिणाम स्वरूप महाभारत के युद्ध में कौरव वंश समाप्त हो गया ।

“इतना अपमान

व्यक्ति को वस्तु बनाया

पण्य हो गयी प्रिया कृष्णा

इस भरी सभा में

नहीं नहीं अब कौरव वंश नहीं रह सकता ।”³⁵

व्यक्ति को कुचलना पशुत्व को जन्म देता है । ‘अश्वत्थामा का सर्प’ बनना व्यक्तित्व के बाद की पशुता ही है । राज्य व्यवस्था तेजस्वी लोगों को खरीद लेती है । इस प्रकार लोगों का मजबूर होकर राज्यवस्था में मिल जाना अर्थहीनता का बोध कराती है । ‘विदुर और द्रौण’ का कौरव पक्ष में रहना उनकी निर्धनता ही थी ।

नरेश जी धर्म को राजनीति से अलग मानते हैं । धर्म और राजनीति एक दूसरे में मिलकर कुंठित समाज की रचना करते हैं । समाज धर्म पर आधारित होता

है, धर्म की महत्ता कम नहीं होनी चाहिए ।

“राज्य के नहीं
धर्म के नियमों पर समाज आधारित हैं
धर्म और विचारों को
स्वतंत्र रहने दो पार्थ
अन्यथा यह समाज
रहने के योग्य नहीं रह जायेगा ।”³⁶

नरेश जी अपने काव्य में सामान्य लघु मानव के प्रति आदर व्यक्त करते हैं। ‘प्रवाद पर्व’ में राम धोबी की आवाज़ सुनते हैं । ‘संशय की एक रात’ में राम रावण राज्य में प्रताड़ित हनुमान को युद्धमंत्रणा के वक्त न केवल सुनते हैं, बल्कि उनके विचारों का समर्थन भी करते हैं । ‘युधिष्ठिर’ तथा ‘राम’ दोनों प्रजा के अधिकार के आग्रही हैं । राज्य के निर्णय व्यक्ति के लिए नहीं बल्कि प्रजा हित के लिए होने चाहिए ।

“राज्य को सामूहिक आकांक्षा का
प्रतीक बनने दो भरत !
प्रजा के भी अधिकार होते हैं ।”³⁷

“राज्य न्याय और राष्ट्र व्यक्तियों तथा
संबंधों से ऊपर होने ही चाहिए ।”³⁸

राम व्यक्ति और प्रजा के पक्षधर हैं । व्यक्ति या प्रजा के लिए वे राज्य और राज्य सत्ता तक त्यागने के लिए तैयार हो जाते हैं । ‘प्रवाद पर्व’ में सीता राम से कहती है कि -

“आर्य पुत्र
यदि सभासद
मंत्री और आपके बंधु उसके साथ अन्याय कर रहे हो तो

आपको
मुझे और
इस राज्य को भी त्याग कर
उस अकेले व्यक्ति के पक्ष का समर्थन
करना चाहिए ।³⁹

नरेश जी उत्तम लोकशाही के आग्रही रहे हैं । स्वस्थ लोकतंत्र स्वस्थ समाज को जन्म देता है । अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य, नारी सम्मान, सामान्य मानव के अधिकार, सत्य और न्यायप्रियता अच्छे लोकतंत्र के आवश्यक गुण हैं । देश के कल्याण के लिए व्यक्तिगत स्वार्थ बाधक नहीं होने चाहिए । राम इतिहास पुरुष है। वे प्रजा के विश्वास और श्रद्धा को बनाये रखने के लिए सीता को दुबारा वन में भेजने का निर्णय करते हैं -

“राज्य न्याय और राष्ट्र
व्यक्तियों तथा संबंधों से ऊपर होने चाहिए
उस अनाम प्रजा के विश्वास की
अभिव्यक्ति की रक्षा करनी चाहिए ।⁴⁰

सांप्रत युग में मानवता, करुणा तथा दया जैसे हमारे मूल्य समाप्त होते जा रहे हैं । ‘संशय की एक रात’ में राम का प्रयत्न तथा ‘महा प्रस्थान’ में युधिष्ठिर का कुत्ते के बिना स्वर्ग न जाने में करुणा तथा दया के दर्शन होते हैं।

“बन्धु
तुम्हें लौट जाने के लिए कहना
सृष्टि को लौट जाने के लिए कहना होगा
और बिना सृष्टि के तो
स्वयं ईश्वर भी नहीं है ।⁴¹

‘महा प्रस्थान’ में स्वर्गारोहण के लिए निकल पड़े पांडव सत्ता से निर्मोह हो चुके थे । राज्य व्यवस्था ने उन्हें दुःख के सिवा कुछ नहीं दिया था । दुर्ग, भवन,

प्रासाद, संपत्ति आदि ने उसे शांति नहीं दी थी । नरेश जी का मानना है कि सत्ताहीन व्यक्ति ही उर्ध्वता को प्राप्त कर सकते हैं ।

नरेश जी के विचार उत्तम लोकप्रणाली, अहिंसा, मानवता आदि के माध्यम से युद्धविहीन समाज की ओर इशारा करते हैं । राष्ट्र की संपत्ति प्रजा के लिए ही होनी चाहिए । शासक को स्व हित के लिए प्रजा की संपत्ति का उपयोग नहीं करना चाहिए । ‘प्रवाद पर्व’ में राम के द्वारा वन में जा रही सीता को कोई भी सुविधा या अधिकार न देना उत्तम शासक की निशानी है । राम लक्ष्मण को आदेश देते हैं कि -

“कल सूर्योदय के साथ ही

सीता

वनवास के लिए प्रस्थान करेगी

वनवास काल में

वह किसी भी राजकीय पद मर्यादा

सुविधा और सुरक्षा की

अधिकारिणी नहीं होगी

और सीमान्तक

लक्ष्मण उनके रथ का सारथ्य ग्रहण करेंगे ।”⁴²

नरेश जी मानते हैं कि राजा की तरह प्रजा को भी अपने अधिकारों के प्रति जागरूक रहना चाहिए । पंगु राज्य व्यवस्था के प्रति आवाज़ उठानी चाहिए ।

“प्रजा का ही

यह कर्तव्य भी है

अधिकार में डूबे राज्य और

राज्यपुरुषों से कहे

न हो आग्रह करे कि

क्या शुभ है और

क्या अशुभ ।”⁴³

नरेश जी ने 'संशय की एक रात' में गीता का 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचनम्' मंत्र द्वारा कर्म का संदेश दिया है । 'प्रार्थना पुरुष' में गांधीजी तथा 'संशय की एक रात' में लक्ष्मण कर्मपुरुष हैं । उनको अपने बाहुबल में विश्वास है । लक्ष्मण संशय करने की बजाय आत्मविश्वासपूर्ण आवाज़ में कर्म को चुनौती देता है ।

“किंतु
यह असम्भव है
कर्म और वर्चस्व को
छीन सके कोई भी
जब तक हम जीवित हैं ।”⁴⁴

“लंका यदि ध्रुव पर भी होती तो
भाग नहीं पाती बंधु,
लक्ष्मण के पौरुष से
कर्म की चुनौती
मुझे स्वीकार है ।”⁴⁵

‘महा प्रस्थान’ में युधिष्ठिर अनासक्त कर्म की ओर संकेत करते हैं और युद्ध को अनासक्त भाव से खोलते हैं -

“जब युद्ध कर्तव्य हो गया
तो अनासक्त होकर
वह भी किया इसीलिए
उन दिनों की वे स्मृतियाँ
मुझे भी स्मरण तो आती हैं,
पर सालती नहीं
आच्छादित नहीं करती ।”⁴⁶

नरेश जी ने युद्ध, विश्वशांति, लोकतंत्र, कर्मवाद आदि के साथ नारी स्वातंत्र्य

तथा नारी उत्थान पर अपने विचार प्रकट किए हैं । वे नारी-जागृति के समर्थक हैं ।
'शबरी' खण्डकाव्य में शबरी का गृहत्याग नारी चेतना का उदाहरण हैं । वे लिखते हैं-

“एक दिन साध्वी की भूषा में लिपटी उस नारी ने
उतार दिए आवरण
लौंघे तापसता के सारे चौखटे
और मुक्ति के लिए वरण कर किसी को
लौटा दी अपने को अपनी ही नारी ।”⁴⁷

हमारे समाज में स्त्री-पुरुष के संबंध को यौन दृष्टि से ही देखा गया है, परंतु नरेश जी स्त्री-पुरुष संबंध को पूजनीय, आत्मिक, पवित्र तथा नीरामय मानते हैं । मतंग ऋषि और शबरी के संबंध को लेकर उठाये संदेह को लेखक इस प्रकार निर्मूल करते हैं -

“करना ही होगा वर्णित
दासी शबरी जो शुद्रा
ऋषि का चरित्र यह कैसा
क्या मिल सकती है शिक्षा ।”⁴⁸

नरेश जी ने शबरी के माध्यम से 'अहिंसा परमो धर्म' की विचारधारा प्रकट की है । शबरी अपने घर में होती पशु हिंसा से घृणा करती है । वह तपोमय जीवन में प्रवेश करके प्रकृति के निकट जाती है, जहाँ राग, द्वेष, जाति-पाँति, ऊँच-नीच जैसे भेद मिट जाते हैं । नरेश जी ने शबरी के द्वारा हमारी वर्ण व्यवस्था का विरोध किया है । नरेश जी मानते थे कि सामूहिक जड़ता टूटने के बाद ही चैतन्य की प्राप्ति होती है । अतः नरेश जी आधुनिक युग के ऋषि माने जाते हैं । उनकी विचारधारा में हमारी भारतीय संस्कृति की अमर यशोगाथा के दर्शन होते हैं ।

(च) मृत्यु तिथि :

विश्व प्रवासी एवं साहित्य प्रवासी वैष्णवजन नरेश जी अपनी उर्ध्वयात्रा के

लिए 22-नवम्बर, सन् 2000 को 78 वर्ष की आयु में महा प्रस्थान कर गये । नरेश अंतिम दिनों में भोपाल में थे जहाँ पर उनकी मृत्यु हो गयी । प्रकृति के उत्सवी कवि प्रकृति में विलीन हो गये ।

(छ) पुरस्कार एवं सम्मान :

नरेश जी श्रेष्ठ कथाकार, कवि और चिंतक हैं । वे जीवनपर्यन्त साहित्य साधना में प्रवृत्त रहें । नरेश जी को अपने जीवन काल दौरान अनेक पुरस्कार एवं सम्मान प्राप्त हुए जिसमें 'ज्ञानपीठ पुरस्कार' शीर्षस्थ है । साहित्य जगत में दिया जाने वाला यह पुरस्कार नरेश जी को ई. 1992 में उनके पचास साल की उत्कृष्ट लेखन यात्रा के लिए दिया गया है । इस श्रेष्ठ पुरस्कार के रूप में 'दैनिक चौथा संसार' ने भव्य समारोह का आयोजन किया था ।

'लोकभारती प्रकाशन' नरेश जी के सम्मान में उनका पष्ठीपूर्ति समारोह बड़े गरिमापूर्ण वातावरण में मनाया था। मध्य प्रदेश सरकार ने नरेश जी को सम्मानित किया है। नरेश जी को सारस्वत सम्मान भी प्राप्त हुआ है । मध्यप्रदेश शासन संस्थान सम्मान तथा सन् 1985 में हिन्दी साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला है ।

नरेश जी सर्वोच्च 'भारत-भारती सम्मान' एवं मध्य प्रदेश नाट्य लोककला अकादमी द्वारा अलंकृत हुए हैं । मध्य प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मान, भवभूति अलंकार सम्मान आदि विविध पुरस्कार एवं सम्मान से नरेश जी की झोली को भर दिया गया है । (नरेश जी सच्चे अर्थ में हिन्दी साहित्य के गौरव पुरुष हैं । उनका योगदान हिन्दी साहित्य में चिरस्मरणीय रहेगा ।)

उपसंहार :

भारतीय ज्ञानपीठ के सर्वोच्च पुरस्कार से सम्मानित श्री नरेश मेहता हिन्दी ही नहीं बल्कि समस्त भारतीय साहित्य के प्रतीक और पर्याय बन चुके हैं। स्वाधीनता आंदोलन, कम्युनिस्ट पार्टी, राजकीय सेवा और पत्रकारिता के विभिन्न अनुभवों से सम्पन्न नरेश मेहता मुख्य रूप से स्वतंत्र लेखक ही रहें। उन्होंने हमेशा अपनी लेखकीय अस्मिता, गरिमा तथा स्वत्व की रक्षा की। स्वतंत्र लेखन के अनुभवों ने उन्हें

दृढ़ संकल्पशक्ति के साथ-साथ तपस्विता दी। वीरेन्द्र शर्मा के शब्दों में -

“नरेश जी की संस्कारिता में हिमालयी संकल्प और सागर की-सी पावक क्षमता रही है। वे भी तो जन्म के विषपायी रहे। क्या नहीं सहा अपने समग्र जीवन में बोल-कुबोल, ताड़ना, तिरस्कार, उपेक्षा, उलाहना के साथ पारिवारिक आत्मीय रिश्तों की घोर कृपणता। उन्होंने तमाम पार्थिव पीड़ा का अपने भीतर किसी भी प्रकार के प्रतिशोध भाव के बिना परम शांति से ग्रहण किया।”⁴⁹

नरेश बुद्ध की तरह क्षमाशील रहें। वे केवल मनीषी नहीं अथकलीला विलासी वैष्णव भी थे। मानवता और विश्वशांति के चाहक नरेश मनुष्य गौरव की प्रतिष्ठा करनेवाले सिद्ध साहित्यकार थे। प्रार्थना पुरुष, उत्सव पुरुष, वैष्णव व्यक्तित्व के धनी नरेश मेहता हिन्दी साहित्य के शीर्षस्थ पुरुष थे। गौरव पुरुष श्री नरेश मेहता का योगदान हिन्दी साहित्य में चिर स्मरणीय रहेगा।



: संदर्भ :

क्रम	कृति, लेखक	पृ.क्रमांक
1.	हम अनिकेतन भूमिका से, नरेश मेहता	
2.	हम अनिकेतन, नरेश मेहता	23
3.	नरेश मेहता : दृश्य और दृष्टि, सं. प्रमोद त्रिवेदी	228
4.	हम अनिकेतन, नरेश मेहता	26
5.	नरेश मेहता : दृश्य और दृष्टि, सं. प्रमोद त्रिवेदी	234
6.	एक एकान्त शिखर, सं. प्रमोद त्रिवेदी	11
7.	नरेश मेहता : दृश्य और दृष्टि, सं. प्रमोद त्रिवेदी	23
8.	नरेश मेहता : दृश्य और दृष्टि, सं. प्रमोद त्रिवेदी	193
9.	नरेश मेहता : दृश्य और दृष्टि, सं. प्रमोद त्रिवेदी	107
10.	एक एकान्त शिखर, सं. प्रमोद त्रिवेदी	83
11.	समय देवता आज विदा लो (भाषा सेतु) सं. अंबाशंकर नागर	
12.	हम अनिकेतन, नरेश मेहता	53
13.	हम अनिकेतन, नरेश मेहता	79
14.	दूसरा सप्तक, नरेश मेहता	125
15.	उत्सवा, नरेश मेहता	48
16.	तुम मेरा मौन हो, नरेश मेहता	75
17.	तुम मेरा मौन हो, (नामवृक्ष) नरेश मेहता	75
18.	उत्सवा (उत्सवा नक्षत्र), नरेश मेहता	75
19.	काव्य का वैष्णव व्यक्तित्व, नरेश मेहता	4
20.	बोलने दो चीड़ को, नरेश मेहता	58
21.	उत्सवा (अभिषेक पुरुष), नरेश मेहता	111
22.	समय देवता, नरेश मेहता	
23.	संशय की एक रात, नरेश मेहता	19
24.	संशय की एक रात, नरेश मेहता	31

क्रम कृति, लेखक	पृ.क्रमांक
25. संशय की एक रात, नरेश मेहता	19
26. संशय की एक रात, नरेश मेहता	71
27. महा प्रस्थान, नरेश मेहता	
28. महा प्रस्थान, नरेश मेहता	88
29. महा प्रस्थान, नरेश मेहता	108
30. प्रवाद पर्व, नरेश मेहता	101/102
31. महा प्रस्थान, नरेश मेहता	
32. महा प्रस्थान, नरेश मेहता	
33. प्रवाद पर्व, नरेश मेहता	35
34. महा प्रस्थान, नरेश मेहता	
35. महा प्रस्थान, नरेश मेहता	
36. महा प्रस्थान, नरेश मेहता	
37. प्रवाद पर्व, नरेश मेहता	42
38. प्रवाद पर्व, नरेश मेहता	80
39. प्रवाद पर्व, नरेश मेहता	80/81
40. प्रवाद पर्व, नरेश मेहता	87/88
41. महा प्रस्थान, नरेश मेहता	128
42. प्रवाद पर्व, नरेश मेहता	103से104
43. प्रवाद पर्व, नरेश मेहता	42
44. संशय की एक रात, नरेश मेहता	16
45. संशय की एक रात, नरेश मेहता	17
46. महा प्रस्थान, नरेश मेहता	
47. शबरी, नरेश मेहता	
48. शबरी, नरेश मेहता	

हिन्दी उपन्यास साहित्य में चरित्र-चित्रण : प्रवृत्तिगत विश्लेषण

1. उपन्यास की परिभाषा
 - 1.1 पाश्तात्य विद्वानों द्वारा दी गई उपन्यास की परिभाषा
 - 1.2 भारतीय विद्वानों द्वारा दी गई उपन्यास की परिभाषा
2. उपन्यास की विकास यात्रा : (पूर्व प्रेमचंद युग से स्वातंत्र्योत्तर युग तक)
3. उपन्यास का महत्त्व
 - 3.1 पूर्व प्रेमचंद युग
 - 3.2 प्रेमचंद युग
 - 3.3 प्रेमचंदोत्तर युग
4. नरेश मेहता के उपन्यासों की पृष्ठभूमि
5. नरेश मेहता के उपन्यासों का वर्ण्य-विषय
6. उपन्यास के तत्त्व
 - 6.1 पात्र या चरित्र की परिभाषा
7. पात्र और चरित्र-चित्रण का तात्त्विक भेद
 - 7.1 चरित्र के संदर्भ में उपन्यासकार का दायित्व
8. पात्र और चरित्र-चित्रण का महत्त्व
9. उपन्यासों में पात्रों का वर्गीकरण
 - 9.1 प्रमुख या प्रधान पात्र
 - 9.2 गौण या सामान्य पात्र
 - 9.3 अन्य पात्र या गौणातिगौण पात्र
10. पात्रों का वर्गीकरण
 - 10.1 प्रमुख पात्र

-
- 10.2 गौण पात्र
 - 10.3 सरल पात्र
 - 10.4 जटिल पात्र
 - 10.5 वर्गगत या व्यक्तिगत पात्र
 - 10.6 राजनीतिक तथा बैद्धिक चरित्र
 - 10.7 बहिर्मुखी, अन्तर्मुखी और उभयमुखी पात्र
 - 10.8 सामान्य और असामान्य पात्र
 - 11. चरित्र-चित्रण की विशेषता या गुण
 - 11.1 मौलिकता
 - 11.2 स्वाभाविकता
 - 11.3 अनुकूलता
 - 11.4 सजीवता
 - 12. नरेश मेहता के पूर्व उपन्यासों में चरित्र-चित्रण
 - 12.1 पूर्व प्रेमचंद युग में चरित्र-चित्रण
 - 12.2 प्रेमचंद युग में चरित्र-चित्रण
 - 12.3 प्रेमचंदोत्तर युग में चरित्र-चित्रण

1. उपन्यास की परिभाषा :

उपन्यास अर्थात् क्या ? उसकी पहचान या परिभाषा क्या है ? आदि मुद्दों को उपन्यासकारों ने विभिन्न प्रकार की परिभाषा देकर उपन्यास को पहचानने की कोशिश की है । हिन्दी उपन्यास साहित्य की गद्य विधा पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव स्वरूप हिन्दी में आयी है । इस कारण कुछ परिभाषा पाश्चात्य आलोचकों की रखना में जरूरी समझती हूँ ।

1.1 पाश्चात्य विद्वानों द्वारा दी गई उपन्यास की परिभाषा :

1. “जीवन के गुप्त रहस्यों को अभिव्यक्त करने की विशेषता जितनी उपन्यास में हैं उतनी अन्य किसी में नहीं ।” - **इ.एम. फॉस्टर**
2. “उपन्यास कला का प्रथम गद्य रूप है जो मानव को समग्रता से अभिव्यक्त करने की चेष्टा करता है ।” - **राल्फ फाक्स**
3. “उपन्यास में अपने समकालीन मानव जीवन और रीति रिवाजों का यथार्थ चित्रण होता है ।” - **क्लारारीव**

1.2 भारतीय विद्वानों द्वारा दी गई उपन्यास की परिभाषा :

1. “मैं उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ । मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उनके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्त्व है।” - **प्रेमचंद**
2. “उपन्यास आधुनिक युग का महाकाव्य है। उसमें मानव जीवन और मानव चरित्र का चित्रण उपस्थित किया जाता है । वह मनुष्य के जीवन और चरित्र की व्याख्या करता है और उनका उद्घाटन करता है।” - **हजारी प्रसाद द्विवेदी**
3. “उपन्यास मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा है।”-**डॉ.श्याम सुंदर दास**

2. उपन्यास की विकास यात्रा : (पूर्व प्रेमचंद युग से स्वातंत्र्योत्तर युग तक)

प्रस्तावना :

भारतवर्ष में कथा-साहित्य की धारा अनादिकाल से बहती हुई आ रही है ।

वेदों, उपनिषदों, पुराणों, जैन गाथाओं, जातक कथाओं, रामायण, महाभारत, हितोपदेश, पंचतंत्र, वैताल पंचविशति, सिंहासन बत्तीसी आदि में कथा का उन्नत और अनंत भंडार भरा हुआ है । कुछ आलोचक इन्हीं कथाओं को आधुनिक उपन्यासों का मूल स्रोत मानते हैं ।

उपन्यास की लोकप्रियता के मूल हमारी प्राचीन कथा परंपरा में पड़े हैं । कथन की इस शैली काफी पुरानी है, जो दादीमाँ की परीकथा से लेकर आख्यान परंपरा तक फैली हुई है । दादीमाँ की कथा धीरे-धीरे चौराहे तक पहुँची बाद में शब्द रूप धारण करके साहित्य में अवतरित हुई । यही कथा परंपरा का विकसित रूप उपन्यास है ।

3. उपन्यास का महत्व :

गद्य की विविध विधाओं में उपन्यास का विशेष स्थान है । उपन्यास हिन्दी साहित्य की प्रबुद्ध विधा है । मानव जीवन की अधिकाधिक पूर्ण अभिव्यक्ति का सामर्थ्य जितना उपन्यास में है उतना अन्य विधाओं में नहीं । उपन्यास के माध्यम से एक संपूर्ण राष्ट्र, संपूर्ण समाज, संपूर्ण जाति और एक पूरा का पूरा युग सामने आता है । उपन्यास में युग विशेष का वर्तमान झलकता है । व्यक्ति अपने देश की संस्कृति से परिचित होता है । उपन्यासकार अपनी रचना के माध्यम से वर्तमान समस्या का निरूपण करके समाज परिवर्तन का कार्य करता है । उपन्यास की कथा समाज के एक वर्ग विशेष की कथा होती है। परिणामस्वरूप उपन्यास के चरित्रों में व्यक्ति को अपना प्रतिबिंब नजर आता है। उसे यह कथा अपनी लगती है । यही कारण है कि समाज का एक बहुत बड़ा वर्ग उपन्यास के प्रति आकर्षित होता आया है ।

उपन्यास का स्वरूप इतना शक्तिशाली इसलिए है कि उसमें साहित्य की सारी विधाओं की छवियों को सन्निहित कर लेने की शक्ति है । उपन्यास में कथा तो है ही साथ ही साथ प्रसंग-प्रसंग पर वह काव्य-सी भावुकता और संवेदना जगाकर पाठकों को अपने में तल्लीन करता है, इसमें निबंध की सी चिंतन मूलकता भी है । उत्तम कथा, विशिष्ट चरित्र, कल्पना की अपार शक्ति, विचारों की गहनता तथा मानव

जीवन का विवेचन इत्यादि विशेषताएँ उपन्यास की श्रेष्ठता सिद्ध करती है । साहित्य की इस रमणीय विधा के प्रति प्रत्येक साहित्यकार मुग्ध है, इसी मुग्धता के कारण बड़े-बड़े महान कवि भी उपन्यास सृजन के लिए तत्पर रहे । इस प्रकार गद्य साहित्य की विविध विधाओं में उपन्यास साहित्य का विशिष्ट स्थान है ।

उपन्यास का आविर्भाव भले ही यूरोप के प्रभाव स्वरूप हुआ है, किन्तु प्रेमचंद युग से ही वास्तविक उपन्यास युग का आरंभ होता है । आधुनिक हिन्दी उपन्यास का विधिवत् प्रारंभ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समय से माना जाता है । यद्यपि इससे पूर्व हिन्दी उपन्यास के प्रेरणा रूप में इन्साअल्ला खाँ की 'रानी केतकी की कहानी' तथा राजा शिव प्रसाद सितारे हिन्द कृत 'राजा भोज का सपना' आदि की रचना हो चुकी थी ।

आधुनिक हिन्दी उपन्यास का श्रीगणेश उन्नीसवीं शताब्दी से हुआ और बीसवीं शताब्दी का उत्तरार्ध उसके विकास का स्वर्णकाल है । हिन्दी साहित्य के उपन्यास का काल विभाजन भारतीय जनजीवन के यथार्थ चित्र देनेवाले उपन्यास सम्राट प्रेमचंद को आधार मानकर किया गया है क्योंकि हिन्दी उपन्यास की स्थिरता, विकास और गुणवत्ता प्रदान करने में प्रेमचंद का बहुत बड़ा योगदान रहा है । हिन्दी उपन्यास साहित्य को हम निम्न रूप में विभाजित करते हैं -

(1) पूर्व प्रेमचंद युग (ई.स. 1882-1918)

(2) प्रेमचंद युग (ई.स. 1918-1937)

(3) प्रेमचंदोत्तर युग (ई.स. 1937-)

आधुनिक युग (दो विभाग)

1937 से 1950 के प्रेमचंदोत्तर युग को प्रयोगकाल कहा गया ।

1950 से आजतक स्वातंत्र्योत्तर युग अथवा समकालीन युग ।

3.1 पूर्व प्रेमचंद युग :

भारतेन्दुकाल हिन्दी साहित्य की विविध विधाओं के प्रस्फुटन का काल है और यही उपन्यास का भी उद्भवकाल है। उपन्यास साहित्य का आरंभ प्रेमचंद पूर्व हो

चुका था। इस काल में औपन्यासिक रचना के स्तर पर दो धाराएँ दृष्टिगत होती हैं -
(1)मौलिक उपन्यास (2)अनूदित उपन्यास ।

भारतेन्दु जी ने 'पूर्ण प्रकाश' तथा 'चन्द्रप्रभा' उपन्यास मराठी भाषा से अनुवाद किया । 1973 में भारतेन्दु ने 'मदालसोपाख्यान' नामक मौलिक उपन्यास का सृजन किया । इसके पश्चात् 1877 में श्रद्धाराम फल्लौरी का 'भाग्यवती' तथा लाला श्रीनिवासदास कृत 'परीक्षा गुरु' (1882) उपन्यास प्रकाशित हुए ।

इस युग के उपन्यासकारों ने (1) शुद्ध मनोरंजन प्रधान उपन्यास (2) उपदेश प्रधान उपन्यास (3) सामाजिक उपन्यास (4) ऐतिहासिक उपन्यास (5) नीतिपरक तथा तिलस्मी और ऐयारी उपन्यासों की रचना की ।

इस युग में प्रमुख उपन्यासों में लज्जाराम मेहता का 'आदर्श हिन्दू', 'आदर्श दम्पति', 'बिगड़े का सुधार', पंडित बालकृष्ण भट्ट का 'नूतन ब्रह्मचारी', 'सो अजान एक सुजान', राधा कृष्णदास का 'निःसहाय हिन्दू', हरिऔध जी का 'ठेठ हिन्दी का ठाठ', 'अधखिला फूल' आदि महत्त्वपूर्ण हैं ।

तिलस्मी और ऐयारी उपन्यासकारों में देवकीनंदन खत्री, गोपालराम गहमरी तथा किशोरीलाल गोस्वामी के नाम उल्लेखनीय हैं ।

पूर्व प्रेमचंद युग के उपन्यास घटना प्रधान है । घटना प्रधान उपन्यास में कथानक का स्वाभाविक प्रवाह नहीं रहता न पात्रों का सहज विकास हो सकता है । घटना प्रधान उपन्यासों की घटनाएँ या तो सनसनी पैदा करनेवाली होती थी अथवा कौतुहल बढ़ानेवाली । देवकीनंदन खत्री के उपन्यास घटना प्रधान तिलस्मी ऐयारी उपन्यास है । 'चन्द्रकांता' और 'चन्द्रकांता संतति' देवकीनंदन खत्री के महत्त्वपूर्ण उपन्यास हैं ।

अतः पूर्व प्रेमचंद युग के अधिकांश उपन्यासों में नारी को केन्द्रस्थ करके उससे संबंधित विभिन्न समस्याओं का चित्रण हुआ है । इस युग के उपन्यासों का मुख्य उद्देश्य मनोरंजन या उपदेशात्मक वृत्ति भी पाई जाती है ।

3.2 प्रेमचंद युग :

उपन्यास की अद्भुत शक्ति को सबसे पहले मुंशी प्रेमचंद ने पहचाना और उसे महत्त्वपूर्ण स्थान दिया । प्रेमचंद युग हिन्दी उपन्यास के विकास और उत्कर्ष का युग रहा । प्रेमचंद उर्दू से हिन्दी में आये । प्रेमचंद ने उपन्यास साहित्य को नयी दिशा दी। उपन्यास का वास्तविक स्वरूप पहले-पहले प्रेमचंद के उपन्यासों में दिखाई पड़ता है ।

प्रेमचंद युग राष्ट्रीय और सामाजिक उथल-पुथल का युग था । पराधीन भारत साम्राज्यवादी ब्रिटीश शासन से मुक्त होने के लिए तड़प रहा था । सामाजिक क्षेत्र में कई वर्गों की आपस में टकराहट हो रही थी । एक ओर सामन्तवादी समाज और महाजनी समाज था तो दूसरी ओर जमींदारों और किसानों, पूंजीपतियों, मिल-मालिकों और मजदूरों । अब तक जो संपत्ति राजा-महाराजा सामन्तों और जमींदारों के हाथों में केन्द्रीत थी वह धीरे-धीरे शहर के उद्योगपतियों के हाथों में आने लगीं । सबसे ज्यादा किसानों का शोषण हो रहा था । विदेशी पूंजीवादी और किसानों के बीच जमींदार मध्यस्थ था । वह किसानों से भूमि लेकर सरकार को देता था । वह किसानों से इतना लगान लेता था कि स्वयं मौज करते हुए सरकार को भी दे सके । किसान अपनी अज्ञानता तथा अशिक्षण के कारण खामोश रहकर जुल्म सहन करता था । किसान धर्मभीरु था और धर्म अंध विश्वासों से जकड़ा हुआ था । धर्म ने किसान को इतना सहिष्णु और कुण्ठित बना दिया था कि वह हर जुल्म को अपने पाप का फल मानता था। इसी वजह किसान, जमींदारों और पण्डितों के शोषण का भोग बनता था ।

प्रेमचंद जी ने अपने समय के भारत का राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक चित्र प्रस्तुत करके उस काल के समूचे यथार्थ को प्रस्तुत किया । प्रेमचंद विचारों और संस्कारों से मूल भारतीय आदर्शों के पोषक थे फिर भी समाज में व्याप्त पुराने-नये मूल्यों के संघर्ष को वे आँखों से ओझल नहीं कर सके। उन्होंने विघटित होते हुए तत्कालीन जर्जर भारतीय मूल्यों को ठोकर मारी और स्थापित होते हुए

भौतिकवादी मूल्यों के खोखलेपन को चीरकर सामने रख दिया । उन्होंने सेवा, त्याग, सहानुभूति, प्रेम और सत्याचरण आदि भारतीय मूल्यों को अपनी रचनाओं में ध्वनित किया । उन्होंने तत्कालीन वर्गों की सभी प्रकार की समस्याएँ उठायी ।

राजनीतिक खोखलापन, समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, जमींदारों और मिल-मालिकों का शोषण, बाल विवाह, बे-मेल विवाह, दाम्पत्य प्रेम की समस्या, विधवा तथा वेश्या समस्या, किसानों का शोषण इत्यादि समस्याओं के साथ भारतीय गाँवों का नग्न चित्रण प्रस्तुत किया । समाज की विविध विषमताओं को प्रकट करते हुए प्रेमचंद ने उपन्यास को यथार्थ की ओर मोड़ा ।

प्रेमचंद की महत्वपूर्ण रचनाएँ इस प्रकार हैं - सेवासदन, वरदान, प्रेमाश्रम, प्रतिज्ञा, कायाकल्प, रंगभूमि, गोदान, गबन, निर्मला । प्रेमचंद के समकालीन उपन्यासकारों में जयशंकर प्रसाद, वृंदावनलाल वर्मा, निराला, भगवती प्रसाद वाजपेयी, विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक', पांडेय बेचेन शर्मा 'उग्र', प्रताप नारायण, श्रीवास्तव, ऋषभ चरण जैन, राधिकारमण प्रसाद, उदयशंकर भट्ट, गोविंदवल्लभ पंत तथा ऊषा देवी मित्रा उल्लेखनीय हैं ।

इस युग के श्रेष्ठ उपन्यासों में प्रसाद का 'तीतली', 'इरावती', विश्वंभर नाथ का 'भिखारिणी', चतुरसेन शास्त्री का 'हृदय की परख', 'अमर अभिलाषा', 'वैशाली की नगरवधू', पांडेय बेचेन शर्मा कृत 'दिल्ली का दलाल', 'बधुआ की बेटी', वृंदावनलाल वर्मा का 'गढ़ कुण्डार', 'विराट की पद्मिनी', 'मृगनयनी' इत्यादि नाम गिनाये जाते हैं ।

प्रेमचंद युग में मौलिक उपन्यासों का निर्माण हुआ । सोद्देश्यता, मनोवैज्ञानिकता, राष्ट्रीयता तथा सामाजिकता इस युग के उपन्यास की विशेषता रही । इस प्रकार इस युग के उपन्यासकारों ने सिद्ध किया कि साहित्य की कोई भी विधा केवल मनोरंजन के लिए नहीं होती । वह मानव जीवन को शक्ति और सुंदरता प्रदान करनेवाली रचनाएँ हैं ।

3.3 प्रेमचंदोत्तर युग :

प्रेमचंदोत्तर युग के उपन्यासों को हम स्वाधीनता पूर्व और स्वाधीनता परवर्ती इन दोनों विभागों में विभाजित करके देखें तो दोनों भागों के उपन्यासों में स्वाधीनतापूर्व और परवर्ती भारतीय जीवन के सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक जीवन के यथार्थ का संश्लिष्ट चित्रण मिलता है । प्रेमचंदोत्तर युग भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के बाद का जनमानस वैचारिक रूप में प्रबुद्ध एवं सजग जनमानस था । व्यक्ति 'अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता', 'व्यक्ति स्वातंत्र्य', 'लोकतंत्र' तथा 'व्यक्ति के समान अधिकारों' के प्रति जागृत हुआ था ।

व्यक्तिवाद, मार्क्सवाद, अस्तित्ववाद और मनोविश्लेषणवाद के सिद्धांतों का व्यक्ति के मन पर गहरा प्रभाव पड़ा था । दोनों विश्वयुद्ध की भयावहता से लोग परिचित थे । स्वतंत्रता के बाद का साहित्यकार जिस माहौल में साँस ले रहा था, वहाँ सर्वत्र बेईमानी, अप्रमाणिकता, भ्रष्टाचार, धांधली, सत्ता की खींचातानी, कथनी-करनी में अंतर, नेताओं की घर भरो वृत्ति तथा गांधीजी के नाम पर खोखले आदर्श की बोलबाला थी । स्वतंत्रता बाद की इस पृष्ठभूमि ने उपन्यास को नई दिशा दी ।

इस युग में प्रेमचंद युगीन समस्याओं के साथ-साथ मनोवैज्ञानिक धरातल पर मानव मन के आंतर जगत को उजागर करने की कोशिश की गई । यों तो मनोविज्ञान का चित्रण प्रेमचंद के उपन्यासों से ही आरंभ हो गया था किंतु आलोचकों ने प्रेमचंद के मनोविज्ञान को उतना महत्त्व नहीं दिया जितना उनके सामाजिक यथार्थ को ।

इस युग में मनोवैज्ञानिक विश्लेषण सिद्धांत की खोज हुई । 'फ्राइड', 'एडलर', 'ह्युग' आदि ने मानव मन को समझने में बड़ी सहायता की ।

प्रेमचंदोत्तर युगीन उपन्यासों में नवीन संभावनाओं, नवीन मूल्यों एवं नवीन मानसिकता को जन्म दिया । उपन्यासकार का ध्यान स्वच्छंद प्रेम तथा यौन संबंधित समस्या की ओर गया । पात्रों के सूक्ष्म संवेगों तथा क्रिया-कलापों पर उपन्यासकार ने विशेष ध्यान दिया । उन लेखकों ने बदलते मानवीय रिश्ते को लेकर विशेष स्त्री-

पुरुष संबंधों को नये दृष्टिकोण से देखा ।

परंपरित मूल्यों पर प्रहार किया । स्त्री-पुरुष प्रणय-त्रिकोण तथा विवाह के बाद के संबंधों को महत्त्व दिया । प्रेमचंद युगीन परंपरित नारी के आदर्शरूप का चित्रण हुआ, लेकिन वही नारी आधुनिक नारी बनकर चुनौती के रूप में विद्रोहात्मक भूमिका लेकर प्रस्तुत हुई । वैवाहिक मूल्य में बिखराव आया । पति परमेश्वर वाली भावना कम हो गई । स्त्री पति के अतिरिक्त अन्य पुरुष मित्र में समर्पित होने में अपने जीवन की सार्थकता महसूस करने लगी । इस प्रकार प्रेमचंद युगीन लेखकों द्वारा सामाजिक दायरे तोड़ने का काम हुआ । इस युग में नारी के वैयक्तिक एवं आर्थिक स्वातंत्र्य को सबल समर्थन प्राप्त हुआ क्योंकि जब तक उस पर होने वाले अमानुषिक अत्याचारों में कमी नहीं होगी ।

इस युग के लेखकों ने मनोविज्ञान का गहन अध्ययन करके मनुष्य के मन की विविध ग्रंथियों का सूक्ष्म निरूपण किया । इससे पाप-पुण्य के प्रति नवीन दृष्टिकोण सामने आया । नैतिकता के मानदंड बदले, लोग परंपरागत मूल्यों को त्यागकर स्वतंत्र रूप में सोचने लगे ।

प्रेमचंदोत्तर सामाजिक और समाजवादी उपन्यास सामाजिक चेतना की दृष्टि से प्रेमचंद की ही परंपरा में आते हैं । इस युग के उपन्यासों में मार्क्सवाद का स्वर भले ही प्रमुख स्वर न रहा हो फिर भी उपन्यासकार मार्क्सवाद के प्रभाव से अछूते भी नहीं रहे । आंचलिक उपन्यास स्वरूप की दृष्टि से भिन्न रहे । आंचलिक उपन्यासकारों ने किसी पात्रों को या किसी विशेष मूल्यों को महत्त्व न देकर ग्रामीण जीवन के सही यथार्थ भोगनेवाले लोगों के माध्यम से पूरे एक भूभाग को उद्घाटित किया ।

स्वतंत्रता के बाद (1) ऐतिहासिक उपन्यास (2) सामाजिक उपन्यास (3) समाजवादी उपन्यास (4) व्यक्तिवादी या प्रयोगवादी उपन्यास (5) आंचलिक उपन्यास तथा मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास लिखे गये ।

इस युग के प्रमुख उपन्यासकार भगवतीचरण वर्मा, यशपाल, जैनेन्द्र, अज्ञेय, इलाचन्द जोशी, उपेन्द्रनाथ अशक, नागार्जुन, अमृतलाल नागर, रांगेय राघव, रेणुजी, अमृतराय, धर्मवीर भारती, यज्ञदत्त, शंभुदयाल सक्सेना आदि ।

समकालीन उपन्यासकारों में नरेश मेहता, राजेन्द्र यादव, राजेन्द्र अवस्थी, मोहन राकेश, निर्मल वर्मा, मन्नू भंडारी, उषा प्रियंवदा, शैलेश मट्टियानी, शिवानी, कृष्णा अग्निहोत्री, मुक्तिबोध कृष्णा सोबती, मृदुला गर्ग इत्यादि ।

उपेन्द्रनाथ अशक ने अपने परिवेशगत समाज के संघर्षशील जीवन के चित्र दिए । डॉ. देवराज ने आत्मकेन्द्रीत और अन्तर्मुखी व्यक्ति के अस्तित्वबोध और क्षणवादी दर्शन का चित्रण किया । मनोवैज्ञानिक उपन्यास की पूरी की पूरी श्रृंखला लेकर जैनेन्द्र जी आएँ जिन्होंने 'सुखदा', 'विवर्त', 'व्यति', 'अनाम स्वामी', 'कल्याणी', 'सुनिता' और 'त्यागपत्र' जैसे श्रेष्ठ उपन्यास लिखे । व्यक्तिवादी चिंतनधारा में भगवती चरण वर्मा ने 'पतन', 'चित्रलेखा', 'टेढ़े मेढ़े रास्ते', 'आखिरी दाँव', 'भूले-बिसरे चित्र', 'थके पाँव' आदि रचनाओं का सृजन किया । राजनैतिक चेतना से प्रेरित 'यशपाल' का 'झूठा सच', 'दादा कॉमरेड', 'पार्टी कॉमरेड', 'तेरी मेरी उसकी बात' आदि उत्तम उपन्यास हैं । इसके अतिरिक्त विशुद्ध ऐतिहासिक आधार पर लिखा गया हजारी प्रसाद द्विवेदी का 'बाणभट्ट की आत्मकथा', आंचलिक उपन्यास के अंतर्गत रेणु का 'मैला आँचल', 'परति परकथा' इस युग के श्रेष्ठ उपन्यास हैं । अन्य महत्त्वपूर्ण उपन्यासों में धर्मवीर भारती का 'गुनाहों का देवता', 'सूरज का सातवाँ घोड़ा', नागार्जुन का 'रतिनाथ की चाची', 'बलचनमा', 'बाबू बटेसरनाथ' नरेश मेहता का 'यह पथ बन्धु का', उत्तरकथा खंड - I और II, राजेन्द्र यादव का 'सारा आकाश', राजेन्द्र यादव और मन्नू भंडारी का 'आपका बंटी' आदि उच्च कोटि के उपन्यास हैं ।

स्वातंत्र्योत्तर उपन्यास बाहर से भीतर की यात्रा के उपन्यास होने के कारण उसके स्वरूप में भी बदलाव आया । शिल्प के नये-नये प्रयोग हुए । इस युग के उपन्यासकारों ने व्यापक धरातल पर मानव जीवन की अनुभूतियों एवं अंतःसत्त्यों को

उजागर किया । इस युग के उपन्यासकारों ने वैचारिकता को ज्यादा महत्त्व दिया । उपन्यास में चिंतन की प्रधानता के कारण उन लोगों पर आरोप लगाया गया कि स्वातंत्र्योत्तर उपन्यास बौद्धिकों तक सीमित हैं । यह उपन्यास केवल प्रबुद्ध तथा जागरूक लोगों को पढ़ने की वस्तु है । आलोचकों के आरोपों को नज़रअंदाज करके देखें तो इस युग के उपन्यासकारों का उपन्यास के विकास में बेहतरीन योगदान रहा है।

4. नरेश मेहता के उपन्यासों की पृष्ठभूमि :

स्वातंत्र्योत्तर युग के सिद्धहस्त लेखक के रूप में नरेश मेहता की गिनती होती है। 1950 में नरेश मेहता ने उपन्यास साहित्य में प्रवेश किया तब देश संक्रमणकाल से गुज़र रहा था । उस समय नये-पुराने मूल्यों का संघर्ष चल रहा था और प्रेमचंदयुगीन सादगी एवं आध्यात्मिक जीवन से व्यक्ति दूर जा रहा था, तो दूसरी ओर भौतिकवादी मूल्यों की बढ़ोत्तरी हो रही थी । त्याग, समर्पण, प्रेम तथा मानवता नष्ट हो रहे थे । लोग भोग-विलास में डूब रहे थे ।

संयुक्त परिवार की भावना मिट चुकी थी । गाँव टूटकर महानगर की ओर जा रहे थे । शिक्षा पद्धति दिशाहीन थी । स्त्री शिक्षा और आर्थिक स्वतंत्रता के कारण नयी समस्या उत्पन्न हुई । व्यवसायी स्त्रियों का जातीय शोषण हो रहा था। स्त्री की घर और बाहर की दुहरी स्थिति कई प्रश्न पैदा कर रही थी । समाज परंपरित मूल्यों को छोड़ने के लिए तैयार नहीं था और नये मूल्य पुराने मूल्य पर हावी हो रहे थे ।

राजनैतिक क्षेत्र में उथल-पुथल मची थी । परतंत्र भारत अंग्रेजों के हाथों से मुक्त होने के लिए तड़प रहा था । भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में कांग्रेस पक्ष सक्रिय था जिसका नेतृत्व गांधीजी के हाथों में था । गांधीजी भारत की मुक्ति चाहते थे जबकि उससे विपरीत अहिंसा में माननेवाले क्रांतिकारी युवानों का एक बहुत बड़ा संगठन कार्यरत था जो शस्त्रों में विश्वास करता था । आखिर महात्मा गांधी के नेतृत्व में सैंकड़ों क्रांतिकारी युवानों के बलिदान के बाद भारत आज़ाद हुआ ।

जब तक देश परतंत्र था, लोग स्वप्नावस्था में थे । देश के नेताओं पर विश्वास था वह स्वतंत्रता के बाद टूट गया । जिस दल पर देश की जनता को गौरव था उस दल के कुछ नेताओं की कथनी-करनी में अंतर था । आदर्श एवं गांधी के नाम पर सत्ता हासिल करने के लिए कटुनीतियों का सहारा लिया जाता था । नेताओं की स्वार्थपटुता, क्षुद्रता, भाई-भतीजावाद, भ्रष्टाचार तथा खोखले आदर्श को देखकर जनता परेशान थी । दंभी और ढोंगी लोगों की संख्या बढ़ रही थी । देश के लिए बलिदान देने वाले वीर जवानों को लोग भूलने लगे थे ।

धर्म, राजनीति, शिक्षण, साहित्य समाज के सभी क्षेत्र समस्याग्रस्त थे । व्यक्ति आदर्श परिस्थिति में जीना चाहता था लेकिन वातावरण न मिलने पर कई लोगों ने परिस्थितियों से समझौता कर जीना सिख लिया । बदलते समय के साथ व्यक्ति और साहित्यकार दोनों महसूस करने लगे कि हमारे आदर्श थोथे हैं। हमारी नीति-रीति एक छल के सिवा कुछ नहीं है। हमारी परंपरा हमारे लिए बोझ है। हमारी पुरानी संस्कारिता के मायने बदल गये। बदलते मूल्यों की चोट साहित्य में भी गूँजने लगी। इसका सीधा असर इस युग की रचनाओं पर पड़ा और साहित्य सृजन में परिवर्तन आया ।

5. नरेश मेहता के उपन्यासों का वर्ण्य-विषय :

नरेश मेहता के समय में आदर्श जीवन मूल्य, पुरानी समाज व्यवस्था तथा सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक तथा राजनीतिक परंपरा की जड़ें हिल गईं । परंपरा के रक्षक नरेश जी खुद परंपरा के सामने विद्रोह के लिए तत्पर हो उठे । 'यह पथ बंधु था', 'उत्तरकथा खंड-1 और II' उपन्यास के माध्यम से मूल्यों को बनाये रखने की कोशिश करनेवाले नरेश 'डूबते मस्तूल' और 'दो एकान्त' में परंपरा को तोड़ते नज़र आये । युग विशेष से मुँह मोड़कर कोई साहित्यकार सृजन नहीं कर सकता । नरेश मेहता के उपन्यासों में युग जीवन का गहरा असर मालूम पड़ता है ।

नरेश मेहता के समय में केवल वैचारिक परिवर्तन हो रहा था ऐसा नहीं है, व्यावसायिक क्षेत्र भी बदल रहे थे । पुराने व्यवसाय को छोड़कर नये व्यवसाय को

अपनाने की स्थिति उत्पन्न हुई थी । परंपरित खेती-बाड़ी, जमींदारी तथा यजमानवृत्ति की जगह नौकरी-धंधे ने ले ली थी । दुकानों की जगह होटल बन गये । शिक्षक और अध्यापक के अतिरिक्त लोग वकालत को महत्त्व दे रहे थे । वकील और जिलाधीश बनना गौरवपूर्ण माना जाता था । जमींदारों का वर्चस्व कम हो रहा था ।

पुरानी पीढ़ी अब भी परंपरित व्यवसाय से चिपकी हुई थी । इस पीढ़ी के पास खेती बाड़ी, जमींदारी, मंदिर तथा हवेली की पूजा एवं यजमानवृत्ति थी जो नयी पीढ़ी को शर्मजनक मालूम पड़ती थी । बुजुर्ग भारतीय संस्कारों की दुहाई दे रहे थे और युवावर्ग पश्चिमी विचारों के रंग में रंग गया था । दोनों पीढ़ी के वैचारिक अंतर के कारण आये दिन पारिवारिक कलह बढ़ रहे थे । नरेश मेहता ने इस द्वन्द्व को अपने उपन्यासों में चित्रित किया है ।

नरेश जी के उपन्यासों का घटना क्षेत्र मुख्यतः मालवा है । मालवा पश्चिम की ओर भारत के लगभग मध्यभाग में विंध्याचल पर्वत के उत्तर की ओर एक ढलान के रूप में फैला है । संपूर्ण मालवा, पूर्व मालवा तथा पश्चिमी मालवा में विभाजित है । पश्चिमी मालवा में 'खलाम', 'मन्दसोरम्', 'राजगढ़', 'राजापुर', 'उज्जैन', 'धार', 'इंदौर' आदि जिले हैं । नरेश के उपन्यासों की पृष्ठभूमि पश्चिमी मालवा है । उनके उपन्यासों में मालवीय ब्राह्मणों के रीति-रिवाज, परंपरागत संस्कार तथा रूढ़िगत जीवन शैली का विशद वर्णन मिलता है । नरेश के पचास प्रतिशत चरित्र ब्राह्मण परिवार के हैं ।

नरेश जी के ज्यादातर उपन्यास सामाजिक धरातल पर लिखे गये हैं । ब्राह्मणों के एक विशेष समुदाय की पारिवारिकता अपनी पूरी स्थानीयता के साथ प्रस्तुत हुई है । 'यह पथ बंधु था', 'उत्तरकथा खंड-1, II', 'धूमकेतु एक श्रुति', 'नदी यशस्वी है' इत्यादि उपन्यासों में मालवा अपनी समग्रता के साथ जीवंत हो उठा है ।

जहाँ तक ब्राह्मण संस्कृति से संबंधित घटनाक्रम है, वहाँ हवेली, कीर्तन, मंगला, आरती, राजभोग, शयन आरती के दर्शन करते, हेमांद्री स्नान करते विविध घाटों पर स्नान करते पुण्य कमाते ब्रह्मभोज के समय बिना मुंह लगाये कलसी से

पानी पीकर, “ॐ नमो पार्वती पति हर हर महादेव हर” का सामुहिक घोष करता यज्ञवेदी में स्वाहा करते, रेलवे स्टेशन पर जाकर अपने-अपने यजमान ढूँढ़ते ब्राह्मण नज़र आते हैं । ब्राह्मण परिवार के मुंडन, यज्ञोपवित, विवाह, श्राद्ध, कर्म आदि प्रसंग के समय-समय की वेशभूषा, आभूषण आदि का सूक्ष्म वर्णन आज से पचास साल पूर्व की मालवीय संस्कृति का परिचय करवाते हैं । नरेश जी ने विगत मालवा की अपना वर्ण्य-विषय बनाया है, इसका एक मात्र कारण विगत मालवा में अविरत संघर्ष के बाद भी न झुकनेवाले, न टूटनेवाले संघर्षशील चरित्र हैं, जो आज के मालवा में खोजने पर भी नहीं मिलते ।

एक ओर मालवा की सामाजिक पृष्ठभूमि है तो दूसरी ओर राजनैतिक हलचल। भारत स्वतंत्रता आंदोलन के अंतिम दिनों की झलक ‘यह पथ बंधु था’, ‘उत्तरकथा खंड-। और।।’ में विस्तृत रूप में वर्णित की गई है । ‘प्रजामंडल की स्थापना’, सार्वजनिक सभाएँ, सत्याग्रह, जेलयात्रा, कार्यकर्ताओं की गिरफ्तारी, गांधीजी का अनसन, उनकी सभाएँ और लोग, प्रभात फेरियाँ तथा चरखा चला के लेंगे राज का नारा, खादी टोपी का महत्त्व, विदेशी चीजों का बहिष्कार इत्यादि घटनाओं के साथ क्रांतिकारी युवकों का समांतर आंदोलन, वेश परिवर्तन, गुप्त वेश में बम बनाना, अलग-अलग अंग्रेजी संस्थानों तथा अंग्रेज अफसरों पर बम गिराना, मातृभूमि के लिए हँसते-हँसते फांसी पर चढ़ना इत्यादि प्रसंगों के माध्यम से नरेश युगीन राष्ट्रीय राजनैतिक माहौल उजागर हुआ है ।

वर्ण्य-विषय की दृष्टि से नरेश पर आलोचकों ने आरोप लगाया है कि वे राग मालवा आलापते हैं चूंकि ऐसा नहीं है । नरेश को मालवा अधिक प्रिय है फिर भी उनके ‘डूबते मस्तूल’ का घटना क्षेत्र अफघानिस्तान की सीमा से शुरू होता हुआ महु, फिर हौलेंड से बम्बई और बाद में लखनऊ जाकर समाप्त होता है । ‘प्रथम फाल्गुन’ का घटना स्थल भी लखनऊ है । ‘दो एकान्त’ में जगन्नाथपुरी से डिब्रुगढ़ (असम) फिर इलाहाबाद और अंत में जाकर कथा पुरी में समाप्त होती है । अन्य घटना स्थल का

वर्णन ऊपरी वर्णन लगता है जबकि मालवा के वर्णन में नरेश आद्यांत डूबे नज़र आते हैं। नरेश के उपन्यास केवल पारिवारिक कथा तक सीमित नहीं है । उनके युग की महत्वपूर्ण समस्याओं का भी वे उल्लेख करते हैं । उनके उपन्यास में पद गुनगुनाती बाल विधवा, धार्मिक अनुष्ठान द्वारा जबरन संयमित जीवन जीने की कोशिश करती त्यक्ता, मंदिर के जिर्णोद्धार में क्रांतिकारी आंदोलन में सहयोग देकर अपने पापों का प्रायश्चित्त करती वेश्या, दहेज के कारण जलकर मरनेवाली, दहेज के अभाव में दुहाजु से शादी करती अथवा कम दहेज के कारण ससुरालवालों की मारपीट सह-सहकर अपाहिज बनकर पिता के घर लौट आती, पति के वेश्या के साथ के संबंध से उपेक्षित, ससुराल में सास का असहनीय त्रास सहन करती स्त्रियों की व्यथा प्रकट हुई है । उनके उपन्यास में गांधीयुगीन मूल्यों की रक्षा तथा एकनिष्ठ प्रेम की कथा है, साथ में परंपरित वैवाहिक मूल्यों का चुनौति देनेवाली स्त्रियाँ भी हैं । इस प्रकार नरेश के उपन्यासों में पूरा युग जीवन झलकता है ।

6. उपन्यास के तत्त्व :

आलोचकों ने उपन्यास के मूल्यांकन हेतु छः तत्त्व निर्धारित किए हैं । कृति में किसी एक तत्त्व की प्रधानता होती है और बाकी गौण रूप में आते हैं । तत्त्व के बिना कृति का निर्माण संभव नहीं है । जिस प्रकार हमारे देह लालित्य के लिए विविध अंग-उपांगों की आवश्यकता पड़ती है, ठीक उसी प्रकार उपन्यास के लालित्य के लिए उसके अंग रूप में तत्त्वों की जरूरत पड़ती है ।

उपन्यास के छः तत्त्वों को हम निम्नवत् रूप से वर्णित कर सकते हैं :-

- | | |
|-----------------------|---------------------------|
| 1) कथा वस्तु या कथानक | 2) पात्र या चरित्र चित्रण |
| 3) संवाद या कथोपकथन | 4) देशकाल या वातावरण |
| 5) भाषा शैली | 6) उद्देश्य |

उपरोक्त छः तत्त्वों की चर्चा एक साथ करना ठीक नहीं होगा इस कारण आलोच्य विषय को ध्यान में रखते हुए केवल एक ही तत्त्व पात्र या चरित्र-चित्रण पर संक्षिप्त विचार प्रकट करूँगी ।

6.1 पात्र या चरित्र की परिभाषा

साहित्य और कला मानव की अनुभूतियों पर पड़े प्रभावों का प्रतिफलन है। उपन्यास में जिन पात्रों की अवधारणा की जाती है उनकी प्रेरणा का स्रोत यह जगत ही होता है। इस प्रकार औपन्यासिक पात्र या चरित्र इस जगत के मनुष्यों से प्रेरित उपन्यासकार की कल्पना के रंग में रंगी कल्पना मूर्तियाँ हैं जो उपन्यास के कथानक को विकसित करती हैं एवं उनसे विकास पाती हैं।

पाश्चात्य विद्वान फास्टर अपना मत रखते हुए लिखते हैं - “आत्माभिव्यक्ति करता हुआ उपन्यासकार कुछेक शब्दभूतियाँ गढ़ डालता है, फिर उनके साथ नाम और लिंग जोड़ता है उन्हें अनुभव प्रदान करता है। उनसे उद्धरण चिह्नों में बातचीत करवाता है और कदाचित्त उनसे ऐसा व्यवहार भी करवाता है-ये शब्द मूर्तियाँ ही उपन्यास के पात्र हैं।”¹

7. पात्र और चरित्र का तात्त्विक भेद :

कुछ विद्वान पात्र और चरित्र को एक मानते हैं। उपन्यास के तात्त्विक विवेचन के समय पात्र को ही चरित्र मानकर विवेचित करते हैं। वास्तव में पात्र और चरित्र प्रथम दृष्टि से समान लगते हुए भी एक दूसरे से भिन्न हैं। समाज में विचरण करनेवाले व्यक्ति उपन्यासकार की कलम से अवतार धारण करके किसी पात्र विशेष की उपाधि प्राप्त करता है। उपन्यास में नामधारी स्त्री, पुरुष एवं बच्चे सभी पात्र हैं। पृथ्वी पर विचरण करनेवाले प्रत्येक प्राणी की अपनी कुछ अलग विशेषता होती है, यही विशेषता एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति से अलग करती है। पात्रों की भिन्नता को चरित्र द्वारा जान सकते हैं। चरित्र पात्रों के गुण-दोषों का लेखा-जोखा है। पात्रों के गुण-दोष, उसके आचार, विचार एवं व्यवहार, बाह्य देखाव, आंतरिक उथल-पुथल का वर्णन उपन्यासकार शब्दों के माध्यम से करता है। संक्षेप में कहें तो उपन्यासकार द्वारा पात्र को रूप देने की प्रणाली चरित्र-चित्रण कहलाती है।

चरित्र के संदर्भ में उपन्यासकार का दायित्व :

उपन्यासकार की महानता इसी में है कि वह निम्न से निम्न चरित्र को

मानवीय संवेदना और सहानुभूति के स्पर्श से उसकी नीचता एवं दुष्टता को परिमार्जित कर दे ।

जिसे हम सुंदर चरित्र मानते हैं वस्तुतः वह निरंतर संघर्षशीलता के बल पर हमारी संवेदना पा लेता है । उपन्यासकार हमेशा ऐसे चरित्रों के निर्माण के लिए उत्सुक रहता है जो अनवरत संघर्ष में तपकर प्रदिप्त हो उठा हो । संघर्षरत इन्सान ही पाठक की संवेदना एवं चेतना को जगाते हैं ।

उपन्यासकार की सफलता ऐसे चरित्रों की सृष्टि में नहीं जो लेखक के निजी अहम या बंधी-बंधाई विचारधारा को प्रतिपादित करती हो । उपन्यासकार की ऐसे चरित्रों की सृष्टि करनी है जिनके नाक-नक्शे तथा भाव मुद्राएँ हमारी जानी-पहचानी हो । वे पात्र हमारे अपने स्वाभाविक होने चाहिए जिनके साथ सहज ही हमारा तादात्म्य स्थापित हो ।

8. पात्र या चरित्र-चित्रण का महत्त्व :

उपन्यास में पात्र सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और अनिवार्य तत्त्व है । बिना पात्र के उपन्यास की कल्पना करना जैसा कि बिना व्यक्ति के समाज की कल्पना करना है । पात्र विहीन उपन्यास की कल्पना निरर्थक है । पात्र या चरित्र की धुरी पर ही उपन्यास का निर्माण होता है । पात्र ही उपन्यास की कथा को गति देते हैं । जो उपन्यासकार अपनी कृति में सशक्त और प्रभावशाली चरित्रों की सृष्टि नहीं कर पाता वह कदापि सफल नहीं हो सकता । महान उपन्यास में महान चरित्र का रहना अनिवार्य है, बिना महान चरित्र कोई उपन्यास महान नहीं हो सकता ।

9. उपन्यास में पात्रों का वर्गीकरण :

उपन्यास के तत्त्वों में चरित्र-चित्रण का सर्वाधिक महत्त्व है । यदि कथानक उपन्यास का मेरुदंड है तो चरित्र चित्रण प्राण है । लेखक पात्र का चयन जीवन एवं जगत से करता है । लेखक के कलम का स्पर्श पाकर पात्र एक उन्नत, आदर्श एवं अनुकरणीय चरित्र बनता है । कोई भी पात्र उमदा चरित्र के द्वारा ही पाठक के आदर का पात्र बनता है । पात्र सजीव, स्वाभाविक एवं यथार्थ होना चाहिए ।

पात्र के वर्गीकरण करते समय हमें पाश्चात्य विद्वान तथा भारतीय विद्वान इस प्रकार दोनों के मतों पर विचार करना होगा ।

पश्चिमी विद्वान उफैन और ई.एम. फॉर्स्टर ने औपन्यासिक पात्रों के दो वर्ग निर्धारित किए हैं -

उफैन के अनुसार :

1. सरल या स्पष्ट पात्र (सिम्पल)
2. मिश्रित या अस्पष्ट (काम्प्लैक्स)

ई.एम. फॉर्स्टर के अनुसार :

1. राउण्ड (गूढ़)
2. फ्लेट (सरल)

भारतीय विद्वान डॉ. प्रतापनारायण टंडन ने उपन्यास साहित्य पर कई आलोचनात्मक ग्रंथ लिखे हैं । 'हिन्दी उपन्यास - कला' नामक ग्रंथ में उन्होंने उपन्यास के विविध तत्त्वों का विशद विवेचन प्रस्तुत किया है । उन्होंने औपन्यासिक चरित्रों का वर्गीकरण निम्नवत् रूप से प्रस्तुत किया है -

- | | |
|--------------------------------|----------------------|
| 1. प्रमुख पात्र और सहायक पात्र | 7. प्रतीकात्मक पात्र |
| 2. पुरुष पात्र और स्त्री पात्र | 8. ऐतिहासिक पात्र |
| 3. खल पात्र | 9. राजनैतिक पात्र |
| 4. यथार्थवादी पात्र | 10. सामाजिक पात्र |
| 5. व्यक्तिवादी पात्र | 11. धार्मिक पात्र |
| 6. मनोवैज्ञानिक पात्र | 12. बुद्धिजीवी पात्र |

उपर्युक्त व्यक्तिगत वर्गीकरण को छोड़कर बहुसंख्यक आलोचकों द्वारा जो वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है या स्वीकारा गया है वह निम्नवत् हैं -

पात्र के महत्त्व की दृष्टि से तीन प्रकार हैं -

1. प्रमुख पात्र या प्रधान पात्र
2. गौण पात्र या सामान्य पात्र

3. अन्य पात्र या गौणातिगौण पात्र

9.1 प्रमुख या प्रधान पात्र :

जो उपन्यास की कथा का केन्द्रीय पात्र है । जिनके आसपास घटनाएँ घटती हैं या घूमती हैं उनको प्रमुख या प्रधान पात्र कहा जाता है ।

9.2 गौण या सामान्य पात्र :

गौण अर्थात् जो प्रधान नहीं है और जो प्रमुख पात्र के चारित्रिक विकास में सहायक होते हैं । गौण पात्र को सहायक पात्र भी कहते हैं ।

9.3 अन्य पात्र या गौणातिगौण पात्र :

उपन्यास में आवश्यकता के अनुसार ऐसे अन्य पात्रों का सृजन किया जाता है जिनका कथा विकास में अपना कुछ न कुछ योगदान होता है । ऐसे पात्र समय-समय पर आते हैं और फिर लुप्त हो जाते हैं ।

10. पात्रों का वर्गीकरण :

उपन्यासों के पात्रों को उनकी प्रवृत्ति और स्थिति के आधार पर अनेक भागों में बांटा है ।

10.1 प्रमुख पात्र :

जो कथा का केन्द्रीय पात्र होता है । इस प्रमुख पात्र के अंतर्गत नायक-नायिका को ले सकते हैं । इस युग में परंपरित नायक-नायिका संबंधी धारणा में परिवर्तन आया है । इस युग में उत्कृष्ट चारित्रिक गुणवाले पात्रों के स्थान पर अपनी ही भूल-भूलैया में उलझे, कुंठाग्रस्त, दुर्बल पात्रों का अवतरण हुआ । इलाचंद जोशी, अज्ञेय, मोहन राकेश, निर्मल वर्मा, लक्ष्मीनारायण लाल आदि के नायक-नायिका दुर्बल मन वाले ही हैं। उपन्यास में पहले जैसा वर्ग भेद अब नहीं रहा । अब सामान्य मध्यम वर्ग और निम्न वर्ग के स्त्री-पुरुष भी प्रधान पात्र के रूप में निरूपित होते हैं । नायक के रूप में बच्चों को भी स्थान दिया जैसे नरेश मेहता के उपन्यास में बालक उदयन को नायक स्थापित किया है ।

10.2 गौण पात्र :

ऐसे पात्र जो प्रमुख पात्र के चारित्रिक विकास के सहायक बनते हैं गौण पात्र कहे जाते हैं । यशपाल, भगवतीचरण वर्मा, उपेन्द्रनाथ अशक, शिवप्रसाद सिंह, हजारीप्रसाद, लक्ष्मीनारायण लाल, नरेश मेहता आदि के उपन्यासों में गौण पात्रों की संख्या काफी है । इसके विपरीत जैनेन्द्र जी के उपन्यास सुनीता, सुखता, विवर्त, त्यागपत्र, राजेन्द्र यादव के सारा आकाश, अनदेखे अनजान पुल, शह और मात अज्ञेय के नदी के द्वीप, इलाचंद जोशी के लज्जा, परदे की रानी, उषा प्रियंवदा का रुकोगी नहीं राधिका, नरेश मेहता के डूबते मस्तूल, दो एकान्त आदि में गौण पात्रों की संख्या कम है ।

10.3 सरल पात्र :

उपन्यास की कथा में आदि से अंत तक सहज गति से जो विकसित होता है, सरल पात्र माने जाते हैं । भगवतीप्रसाद बाजपेयी का चलते-चलते, यशपाल का मनुष्य के रूप, धर्मवीर भारती का गुनाहों का देवता, नरेश मेहता के यह पथ बन्धु का, धूमकेतु एक श्रुति आदि उपन्यासों के पात्र सरल हैं ।

10.4 जटिल पात्र :

इस तरह के पात्रों का व्यवहार सामान्य न होकर कुछ अटपटा और उलझनपूर्ण होता है । मोहन राकेश का 'अंधेरे बन्द कमरे' का नायक हरबंस, राजेन्द्र यादव के 'शह और मात' का उदयन, सुजाता, 'अनदेखे अनजान पुल' की निन्नि, नरेश मेहता का 'डूबते मस्तूल' की रंजना, अकलंक, वान निकोलस आदि जटिल पात्र के उदाहरण हैं ।

इसके अलावा मध्यमवर्गीय शिक्षित चरित्रों की उद्भावना अधिक हुई है। शिक्षित पात्रों में हीनता ग्रंथि, कुंठाएँ, असंतोष अधिक होता है ।

10.5 वर्गगत या व्यक्तिगत पात्र :

प्रेमचंद युग में वर्गगत पात्रों को प्रधानता मिली । वर्गगत चरित्रों की उद्भावना राजनीतिक, आँचलिक और सामाजिक उपन्यासों में अधिक मिलती है। वृंदावनलाल

वर्मा, चतुरसेन शास्त्री, राहुल सांकृत्यायन के ऐतिहासिक और कल्पना मिश्रित उपन्यासों में वर्गगत पात्रों का समावेश हुआ है ।

व्यक्तिगत पात्रों का प्रचलन प्रेमचंदोत्तरकाल में अधिक उभरकर सामने आया । इस काल में मनोविश्लेषणात्मक व्यक्तिवादी उपन्यासों का सृजन खूब हुआ । जैनेन्द्र, इलाचंद जोशी, अज्ञेय, नरेश मेहता आदि के उपन्यासों में व्यक्तिवादी चरित्रों का सूक्ष्म निरूपण हुआ है ।

10.6 राजनीतिक तथा बौद्धिक चरित्र :

सक्रिय रूप से राजनीति में भाग लेने वाले तमाम राजनीतिक पात्र माने जाएंगे। यशपाल के 'दादा कोमरेड', 'झूठा सच', भगवतीचरण वर्मा के 'टेढ़े मेढ़े रास्ते', 'सीधी सच्ची बात', नरेश मेहता के 'यह पथ बन्धु का', 'उत्तर कथा खंड - I, II', 'नदी यशस्वी है' आदि उपन्यासों में राजनीतिक प्रवृत्तियों में भाग लेने वाले पात्र हैं।

बौद्धिक चरित्र में ऐसे पात्र आते हैं जो चिंतनशील, बौद्धिक तथा सर्जनात्मक प्रतिभा के धनी हैं । राजेन्द्र यादव के 'शह और मात', धर्मवीर भारती का 'गुनाहों का देवता', नरेश मेहता के 'यह पथ बंधु था', 'प्रथम फाल्गुन', 'डूबते मस्तूल', 'दो एकान्त' आदि उपन्यास के पात्र बौद्धिक हैं ।

10.7 बहिर्मुखी, अन्तर्मुखी और उभयमुखी पात्र :

प्रेमचंदोत्तर युग में 'ह्युंग' द्वारा बताये गये तीनों प्रकार के पात्र जैनेन्द्र जोशी, अज्ञेय, भगवतीचरण वर्मा, राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, यशपाल, नरेश मेहता के उपन्यासों में पाये जाते हैं ।

10.8 सामान्य और असामान्य पात्र :

सामान्य और असामान्य पात्र सामाजिक यथार्थ अथवा आदर्श को लेकर तथा राजनीतिक और आंचलिक उपन्यास के कुछ पात्रों को छोड़कर सभी पात्र सामान्य हैं।

असामान्य पात्रों का निरूपण करनेवालों में जोशी, अज्ञेय, जैनेन्द्र, मोहन

राकेश, धर्मवीर भारती, राजेन्द्र यादव, उषा प्रियंवदा, नरेश मेहता आदि हैं । प्रेमचंदोत्तर युग में मनोविज्ञान के परिणामस्वरूप असामान्य चरित्रों का कुछ अलग वर्ग निश्चित करने पड़े जिसमें - (1) कुंठाग्रस्त चरित्र (2) अहम्ग्रस्त चरित्र (3) यौन अतृप्तिवाले चरित्र (4) मनोविकृत चरित्र (5) विकलांग असामान्य चरित्र (6) रुग्ण असामान्य चरित्र इत्यादि ।

इस तरह प्रेमचंदोत्तर कालीन औपन्यासिक चरित्रों की अनेक श्रेणियाँ निर्धारित की जा सकती है ।

11. चरित्र चित्रण की विशेषता या गुण :

उत्कृष्ट चरित्र निर्माण के लिए आलोचकों द्वारा कुछ गुण निर्धारित किए गए हैं । इसे ध्यान में रखकर अगर चरित्र निर्माण होता है तो पात्र प्रभावशाली, सजीव एवं अनुकरणीय बन सकता है । चरित्र-चित्रण की चार प्रमुख विशेषताएँ हैं - 1) मौलिकता 2) स्वाभाविकता 3) अनुकूलता 4) सजीवता ।

11.1 मौलिकता :

उपन्यास की कथा यथार्थ के निकट होती है । लेखक आवश्यकतानुसार कल्पना के रंग से कृति को सजाता है किन्तु वह वास्तविकता से मुंह नहीं मोड़ता । कथा जितनी वास्तविक होगी उतनी ही मौलिक मानी जायेगी । उपन्यासकार जितना प्रतिभासंपन्न और कौशल-निर्माण में परिपक्व होगा उतने ही पात्र और कथा मौलिक होगी ।

11.2 स्वाभाविकता :

पात्र हमारे आसपास के या हमारे बीच रहने वाला सामान्य व्यक्ति हो यही कामना पाठक की होती है । पात्र हमारे जगत के होने चाहिए जिसकी अंगुलि पकड़कर जीवन और जगत को देख सके, घूम सके । स्वाभाविकता लाने के लिए ऐसे पात्रों को चुने जो हमारी तरह हाड-मांस के पुतले हो, जो सुख में आनंदित और दुःख में दुःखी दीखे । अतः चरित्र चित्रण में जितनी स्वाभाविकता होगी उतनी ही पाठक पात्र के साथ एकात्मभाव अनुभव करेगा ।

11.3 अनुकूलता :

परिस्थिति और वातावरण के अनुकूल ही पात्रों का विकास होना चाहिए । चरित्र के विकास के कारण कथा प्रवाह में किसी भी प्रकार का व्यवधान नहीं आना चाहिए। पात्रों की संरचना, देशकाल और कथानक के अनुकूल और अनुरूप होनी चाहिए ।

11.4 सजीवता :

पात्रों का संबंध हमारे वर्तमान जीवन से होना चाहिए । पात्र हमारे जाने पहचाने हाने चाहिए । उपन्यासकार यदि पात्रों की सृष्टि मात्र कल्पना के आधार पर करेगा तो वे सर्वथा निर्जीव होंगे और पाठक पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा । उपन्यासकार की अनुभूति जितनी तीव्र और भाव जगत जितना विशाल होगा उनके पात्र अवश्य सजीव मालूम पड़ेंगे ।

उपसंहार

अंत में कहें तो जो उपन्यासकार सशक्त और प्रभावशाली चरित्रों की सृष्टि नहीं कर पाता वह कदापि सफल नहीं हो सकता । अपने सिद्धांतों के लिए पात्रों को तोड़ना-मरोड़ना ठीक नहीं होता। पात्र निरूपण स्वाभाविक, सोद्देश्य एवं युगानुरूप होना चाहिए। पाठकों को सही दिशा दिखाने की और समाज को बदलने की ताकत पात्र में होनी चाहिए । संक्षेप में कहे तो पात्र की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण है । इसलिए उपर्युक्त विशेषता को ध्यान में रखकर ऐसे पात्रों का निर्माण करना चाहिए कि जो युगों-युगों तक पाठक के दिलों-दिमाग पर राज करे । श्रेष्ठ पात्रों के द्वारा ही उत्तम और अमर कृति का निर्माण संभव है ।

12. नरेश मेहता के पूर्व उपन्यासों में चरित्र-चित्रण :

नरेश मेहता आधुनिक उपन्यासकार हैं । इसके पूर्व काल के उपन्यास को विवेचन हेतु तीन भाग में विभाजित किया जाता है -

(1) पूर्व प्रेमचंद युग (2) प्रेमचंद युग (3) प्रेमचंदोत्तर युग ।

12.1 पूर्व प्रेमचंद युग में चरित्र चित्रण :

उपन्यास के तत्त्वों में चरित्र की महत्ता निर्विवाद है । उपन्यास चाहे कैसा हो, किसी भी युग का हो उसमें यह तत्त्व अनिवार्य रूप से पाया जाता है । भारतीय साहित्यिक परंपरा में दो तरह के पात्र मिलते हैं, 1) सत् पात्र 2) असत् पात्र । सत् पात्र को चरित्रवान और असत् पात्र को चरित्रहीन पात्र भी कह सकते हैं । पूर्व प्रेमचंद काल के उपन्यास में सत् पात्र की असत् पात्र पर विजय दिखलाने की एक परंपरा चल पड़ी थी । इस युग के उपन्यासों में उपदेशात्मक प्रवृत्ति की अधिकता के कारण पात्र के चरित्र-विकास पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया गया । लेखकों ने अपनी बात को स्थापित करने के लिए पात्र को इतना तोड़ा-मरोड़ा है कि पात्र का अपना कोई महत्त्व ही नहीं रह गया । इस काल के ज्यादातर पात्र राजकुमार, राजकुमारी, ऐयार, दास-दासी, डकैत आदि रहे हैं । इस युग में उत्तम, अनुकरणीय और आदर्श पात्र का निर्माण इस कारण नहीं हो पाया क्योंकि उपन्यासकार का लक्ष्य पाठक को उपदेश देना तथा मनोरंजन करना ही मात्र था । इस युग के पात्र उपदेशात्मक, मनोरंजन एवं विस्मयोत्पादक घटनाओं के ताने-बाने में ही उलझकर रह गये हैं ।

इस युग के पात्रों की सबसे बड़ी कमजोरी यह रही है कि उसे स्वाभाविक मानवीय रूप में कभी प्रस्तुत नहीं किया गया । या तो उसे ज्यादा चरित्रवान प्रस्तुत किया गया या तो उसे सबसे नीच दुर्गुणों से युक्त । संक्षेप में कहें तो इस युग में चरित्रगत प्रौढ़ता का अभाव पाया जाता है । पात्र भी उपन्यासकार के भावनाओं की कठपुतली और अस्वाभाविक मालूम पड़ते हैं ।

12.2 प्रेमचंद युग में चरित्र-चित्रण :

पूर्व प्रेमचंद युग के उपन्यास मात्र लोकरंजन का साधन बनकर रह गये थे । इसके अतिरिक्त उसका कोई दायित्व नहीं था । प्रेमचंद युग आते-आते उपन्यास पढ़नेवालों की संख्या काफी बढ़ गई । पाठकों की संख्या वृद्धि के साथ उपन्यास का दायित्व बढ़ गया । विविध घटनाओं और कौतुहल के स्थान पर जीवन की समस्याओं का चित्रण होने लगा ।

प्रेमचंद युग सामाजिक, राजनैतिक एवं राष्ट्रीय चेतना का युग था । जो सामाजिक तौर पर शोषित और पीड़ित थे, जिन्हें धर्म की दुहाई देकर सताया जाता था ऐसे वर्ग का चित्रण इस काल की प्रधान विशेषता बन गई । इस काल में तमाम वर्ग के पात्रों का सफल और मनोवैज्ञानिक चित्रण हुआ । प्रेमचंद जी ने 'मैं उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ ।' कहकर उपन्यास में चरित्र की महत्ता को साबित कर दिया ।

इस युग के उपन्यासों में वर्गगत और व्यक्तिवादी चरित्रों पर ज्यादा बल दिया गया । इस प्रकार की पद्धति को अपनाकर समाज की समस्या और समाधान प्रस्तुत करना लेखक का उद्देश्य रहा । प्रेमचंद जैसे सिद्धहस्त कथाकार ने तो समाज के तीनों वर्ग शोषित वर्ग, शोषक वर्ग और सुधारक वर्ग को चित्रित किया है ।

अतः इस युग में चरित्रों का निरूपण मनोवैज्ञानिक ढंग से होने लगा था । अर्थात् पात्रों का केवल बाह्य वर्णन ही नहीं बल्कि मानसिक चित्रण भी प्रस्तुत किया गया । मानसिक प्रभाव और प्रतिक्रियाएँ प्रमुख रूप में चित्रित होने लगी । इस प्रकार इस काल में ऐसे चरित्रों का निर्माण हुआ जो अनादिकाल तक पाठक के दिलों-दिमाग पर छाए रहेंगे ।

12.3 प्रेमचंदोत्तर युग में चरित्र-चित्रण :

इस युग के उपन्यासकारों ने भीतरी संकीर्ण मनोवृत्तियों तथा अंधेरी रहस्यमय गहराइयों में प्रवेश कर व्यक्ति के विचारों को खोलकर रख दिया । व्यक्ति मन की मानसिक क्रिया-प्रतिक्रियाओं का विश्लेषण प्रधान रूप में होने लगा । संक्षेप में कहे तो इस युग में मनोविश्लेषणवाद का प्रभाव सबसे प्रबल रहा ।

'फ्रायड', 'एडलर' और 'ह्युंग' तीनों मनोवैज्ञानिकों की धारणानुसार मानव चरित्र का संचालन एवं व्यवहार करने वाला अवचेतन मन ही है । अनेकानेक दमित भावनाएँ तथा विविध कुंठाएँ मनुष्य के व्यवहार को प्रभावित करते हैं । इन तीनों मनोवैज्ञानिकों ने कहा कि काम (SEX) और अहं (EGO) व्यक्ति के मन की दो बड़ी प्रबल शक्तियाँ हैं । यदि दोनों की इच्छा पूर्ति नहीं होती तो मनुष्य में कुंठित एवं

विकृत ग्रंथियाँ पैदा होती हैं। ये ग्रंथियाँ कभी-कभी मानसिक रोग का रूप धारण कर लेती हैं। निषेधात्मक प्रतिक्रियाएँ मानव जीवन में असफलता उत्पन्न कर देती हैं तो कभी मनुष्य को पलायनवादी, उच्छृंखल या संकुचित बना देती हैं।

इस काल के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में कुंठाग्रस्त एवं असामान्य चरित्रों का निर्माण हुआ। जैनेन्द्र जी के 'सुनीता' उपन्यास के सुनीता, हरिप्रसन्न, जयंत, अज्ञेय जी के 'शेखर: एक जीवनी' उपन्यास के भुवन और रेखा ऐसे ही चरित्र के उदाहरण हैं। इस प्रकार हिन्दी उपन्यास साहित्य के तीनों युग में तीनों प्रकार के चरित्र अनायास चरित्र, सोद्देश्य चरित्र और मनोवैज्ञानिक चरित्र को स्वीकारा गया।

प्रेमचंदोत्तर युग में निरूपित चरित्रों का सामान्य वर्गीकरण :

हिन्दी के प्रारंभिक उपन्यासों में कथातत्त्व प्रधान और चरित्र तत्त्व गौण रूप में आता था। क्रमशः कथातत्त्व सूक्ष्म होता गया और चरित्र चित्रण का विस्तार। पूर्व प्रेमचंद युग के उपन्यासकार चरित्र को स्वतः विकसित होने का अवसर नहीं देते थे। पात्रों की इच्छाएँ, रंग, रूप आदि उपन्यासकार की कलम के अधीन था। प्रेमचंदकाल में कथा के साथ-साथ पात्रों का महत्त्व भी बढ़ गया। इस युग के उपन्यासों में पात्रों को आदर्शवादी रूप प्रदान किया गया। प्रेमचंद युग के अंत में यही आदर्शवादी पात्र यथार्थवादी बनकर हमारे सामने आये। इस काल के अंतिम चरण में जो पात्र हमारे सामने उपस्थित हुए वह आंतरिक जगत की उलझने, जटिलताएँ और आंतरिक अन्तर्द्वन्द्वों से आक्रान्त थे।

उपसंहार

प्रेमचन्दोत्तर युग के उपन्यास का बहुमुखी विकास हुआ। इस युग में प्रेमचंद परंपरा के उपन्यास भी लिखे गये और फ्रायड, एडलर और ह्युंग से प्रभावित मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास भी। इस काल में उपन्यास के विषय वैविध्य के कारण तथा प्रतीकवाद, अस्तित्ववाद, मार्क्सवाद, मनोविश्लेषणात्मकवाद के प्रभावों के कारण चरित्र संबंधी धारणाओं में परिवर्तन आया और चरित्रों में नये आयामों की स्थापना हुई।

: संदर्भ :

क्रम	कृति, लेखक	पृ.क्रमांक
1.	हिन्दी उपन्यासों के असामान्य चरित्र, डॉ. सुजाता	65

अध्याय - ३

नरेश मेहता के उपन्यासों का संक्षिप्त परिचय

प्रस्तावना :

- (१) डूबते मस्तूल : नारी आत्मा से नारी शरीर की कथा
- (२) यह पथ बंधु था : निपट साधारण मनुष्य की गाथा
- (३) धूमकेतु एक श्रुति : पतनोन्मुख ग्रामीण संस्कृति की पृष्ठभूमि में निरूपित पारिवारिक उपन्यास
- (४) दो एकान्त : प्रेम के तनाव पर आधारित बदलते वैवाहिक मूल्यों की व्यथा
- (५) नदी यशस्वी है - रूढ़ संस्कारों के सामने चुनौती - व्यक्तिपरक मनोवैज्ञानिक उपन्यास
- (६) प्रथम फाल्गुन : गांधीयुगीन मूल्यों की रक्षा तथा एकनिष्ठ प्रेम की कथा
- (७) उत्तर कथा खंड प्रथम - पीड़ित मानवता के नाम नारी अस्मिता की व्यथा
- (८) उत्तर कथा खंड द्वितीय - बदलते पारिवारिक, राजनैतिक मूल्यों का यथार्थ चित्रण

नरेश मेहता के उपन्यासों का संक्षिप्त परिचय

नरेश जी ने अपनी लेखन यात्रा के दौरान आठ उपन्यास लिखे हैं, जो क्रमशः इस प्रकार हैं - (१) डूबते मस्तूल (२) यह पथ बंधु था (३) धूमकेतु एक श्रुति (४) दो एकान्त (५) नदी यशस्वी है (६) प्रथम फाल्गुन (७) उत्तर कथा खंड-१ (८) उत्तर कथा खंड - ११ । अब हम क्रमशः इन उपन्यासों के कथानक संबंधी संक्षिप्त परिचय पाने का प्रयत्न करेंगे ।

(१) डूबते मस्तूल :

काव्य रचना के पश्चात् नरेश जी का यह प्रथम उपन्यास है । 'डूबते मस्तूल' का प्रकाशन सन् - १९५४ में लोकभारती प्रकाशन द्वारा हुआ । 'डूबते मस्तूल' आत्मकथनात्मक शैली में लिखा गया नरेश जी का विशिष्ट उपन्यास है । इस उपन्यास की कथा सामान्य है जिसमें असाधारण सुंदर युवती रंजना के रहस्यमय जीवन को चित्रित किया गया है । संपूर्ण कथा में नारी मन की चंचलता और नारी का सुडौल, सुंदर शरीर ही केन्द्र में है । यह उपन्यास शुद्ध प्रेम और विकृत वासना को चित्रित करता है ।

नरेश जी ने रंजना के चरित्र द्वारा न केवल नारी जीवन की विवशता या करुणा प्रकट की है बल्कि कुछ गर्भित प्रश्न भी उठाये हैं, "आखिर जगत जननी नारी का स्थान समाज में क्या है ? क्या नारी केवल चीज है ? नारी का मूल्य उसकी आत्मा तक सीमित है या देह तक ? नारी सम्माननीय है या भोग्या ? वेश्या, चरित्रहीन, स्वच्छंद और कामुक जैसे विशेषण पानेवाली रंजना को इस परिस्थिति में कौन झोंकता है ? रंजना नियति के हाथ की कठपुतली है या पुरुष के विकृत और धिनौने रूप की उपज ?"

नरेश जी का यह उपन्यास नायिका रंजना के कारण बहुचर्चित रहा । उस पर कई आक्षेप और आरोप लगाये गये हैं । डॉ. बेचैन जी ने उपन्यास को छोड़कर सीधा-सीधा नरेश जी पर आरोप लगाते हुए कहा कि - "रंजना के माध्यम से नरेश ने नारी को अनेक पुरुषों के अंक में देखने की विकृत भावना व्यक्त की है, जो लेखक

के मन की प्रच्छन्न किंतु रुग्ण वासना को प्रकट करती है।”^१

नरेश जी ने इस उपन्यास के सृजन संबंधित दुविधापूर्ण स्थिति को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि -“यह उपन्यास सबसे पहले १९४९ में लखनऊ में लिखा गया तब इसका स्वरूप एवं प्रारूप बिलकुल भिन्न था । यदि उसी रूप में छपता तो मेरा विश्वास है कि कहीं अधिक एवं सशक्त एवं व्यवस्थित होता । दुर्भाग्य न केवल व्यक्तियों का होता है, बल्कि कुछ कृतियों का भी होता है । सन् ४९ से लेकर ५३ तक लोगों के परामर्श के फलस्वरूप अनेक परिवर्तन इसमें किए गए। फलतः रंजना एक असंभाव्य चरित्र बन गयी ।”^२

रंजना केवल पाठक के लिए ही नहीं परंतु स्वयं लेखक के लिए भी एक पहेली बनकर आयी है । नरेश जी खुद इस पर टिप्पणी करते हुए लिखते हैं कि - “पर हाँ, यह उपन्यास मेरे लिए प्रथम संस्करण के बाद से ही पहेली एवं आश्चर्य का विषय रहा है चूँकि मैं इस विषय में अब कुछ नहीं कर सकता इसीलिए मौनभाव से उपन्यास की नायिका रंजना की लीला का साक्षी हूँ ।”^३

‘डूबते मस्तूल’ नायिका प्रधान उपन्यास है । इसमें नायिका रंजना का सौन्दर्य उसके लिए अभिशाप सिद्ध होता है । इसकी कथा देश-परदेश तक फैली हुई है ।

उपन्यास का प्रारंभ ही हास्य प्रधान घटना से होता है । नागपुर में होज़यरी-सेल्समेन का काम करनेवाले मिस्टर पुरी के मित्र स्वामीनाथन उर्फ अकलंक अपने मित्र के घर लखनऊ आते हैं । लखनऊ में पहली बार आये स्वामीनाथन मित्र के घर की बजाय भूल से रंजना के घर में घूँस जाते हैं । रंजना को अपरिचित युवक स्वामीनाथन में उसके पूर्व प्रेमी के चेहरे का आभास होता है । रंजना जानती है कि यह व्यक्ति उसका प्रेमी नहीं है, फिर भी वह मरने से पहले अपने हृदय का बोझ हलका करने हेतु इस युवक को अपने घर चाय-पानी के बहाने रोक लेती है । रंजना जीवन की प्रौढ़ावस्था पार कर चुकी है । इसके आसपास अपना कहे जाने वाला कोई नहीं था ऐसी स्थिति में रंजना स्वामीनाथन को पूरा एक दिन और एक रात ड्रोइंगरूम में बिठाकर अपनी आपबीती सुनाती है ।

रंजना तेरह साल की उम्र में कबीले लुटनेवाले चार पत्नी के पति सैयद के साथ शादी करके घर छोड़कर भाग जाती है । स्त्री शरीर का लालची सैयद उसके साथ एक रात गुजारकर उसे मात्र पाँचसौ रूप में काबुलियों के हाथ बेच देता है । रंजना को पता चला तो उसने धोखेबाज सैयद तथा काबुलियों की हत्या कर दी । रंजना निराश होकर घर आती है । यहाँ आकर सैयद के पिता का डर रंजना और उसके माँ-बाप को गाँव छोड़ने पर मजबूर कर देता है । रंजना अपने माँ-बाप के साथ लखनऊ चली आई ।

लखनऊ आकर रंजना अपनी पढ़ाई शुरू करती है । पढ़ाई के दौरान उसके जीवन में टेनीस खिलाड़ी नंदलाल का प्रवेश होता है । नंदलाल से आकर्षित होकर भी रंजना शादी से इन्कार कर देती है । एक दिन लखनऊ के बाज़ार में रंजना की मुलाकात क्रान्तिकारी युवक अकलंक से होती है । समयांतर दोनों एक-दूसरे को पसंद करने लगते हैं । रंजना को अकलंक की आँखों में सैयद की आँखें दिखाई देती हैं । ख्वाबों की दुनिया में राचनेवाली रंजना किताबों की नायिका की तरह जीना चाहती है । पिताजी के विरोध के बावजूद भी रंजना अकलंक को त्याग न सकी । अकलंक उसका स्वप्न पुरुष था । रंजना कहती है कि -“तुम्हें देखकर सच ऐसा लगता था कि अगर मिल जाओगे तो मेरे वे सपने जो मैंने चित्रों को देख-देखकर बनाये थे पूरे हो जायेंगे ।”^४

रंजना अपने सपने को अंजाम दे उससे पूर्व वायसरोय की ट्रेन पर बम्ब फेंकने के जुर्म में अकलंक को आजीवन कारावास मिलता है । अकलंक की स्मृतियाँ साथ लेकर रंजना एम.ए. की पढ़ाई पूरी करती है । पढ़ाई के बाद उसके पिताजी रंजना की शादी किसी रायबहादुर के सरफिरे लड़के जगदीश के साथ कर देते हैं । जगदीश और उसके पिताजी की नजर रंजन के पिता की संपत्ति पर थी । पिता-पुत्र लालची स्वभाव के थे । दौलत के लिए वे कुछ भी करने को तैयार हो जाते थे । परिणामस्वरूप दौलत के लिए उन्होंने रंजना के पिता की हत्या करवा दी । फिर दोनों सारी संपत्ति लेकर विदेश चले जाते हैं । दूसरी ओर रंजना निराधार और

अकेली हो जाती है । रंजना अस्थिर हालत में एक पागल लड़की को जन्म देती है, जो थोड़े ही दिनों में मर जाती है ।

दिशाहीन एवं अभावग्रस्त रंजना नर्स की ट्रेनिंग के लिए बम्बई जाती है । ट्रेनिंग के बाद १९३९ की लड़ाई में नर्स के रूप में रंजना की नियुक्ति मालव मिलिट्री अस्पताल में होती है, वहाँ उसकी मुलाकात कर्नल टोमस से होती है । कालान्तर दोनों एक-दूसरे को चाहने लगते हैं । रंजना उसके साथ विवाह करके गृहस्थ जीवन बसाना चाहती है परंतु शादी से पूर्व टोमस युद्ध में मारा जाता है। रंजना अकेली पड़ जाती है, जिसका गैरलाभ उठाते हुए अस्पताल में भर्ती अफसर रेनाल्ड रंजना पर बलात्कार करता है । रंजना इस घटना से व्यथित हो जाती है और त्यागपत्र देने का फैसला करती है । रंजना का त्यागपत्र स्वीकार नहीं किया जाता बल्कि उसका तबादला करके बैरागढ़ भेज दिया जाता है । वहाँ उसका परिचय डच जाति के सिविल सर्जन मेजर जोस्टीन के साथ होता है । तीन-तीन बार विधवा हुई रंजना जोस्टीन के साथ फिर से घर बसाना चाहती है। रंजना आखिर स्त्री थी । उसकी भी स्त्री सहज कामनाएँ थीं । वह चाहती थी कि उसका अपना घर, परिवार और बच्चे हों । रंजना का विचार था कि -“मैं घर बसाकर रहूँगी और व्यक्ति मेरे घावों पर मरहम पट्टी कर सकेगा । जबकि मैं इसके बमों से नष्ट घर की इंटों को फिर से जोड़कर-सँजोकर इसका रंग कक्ष सजा दूँगी और जहाँ मैं एक फूलपात्र की तरह रह सकूँ । यदि मैं एक बार भी ऐसा कर सकी तो मुझे संतोष होगा ।”^५

रंजना नौकरी से त्याग पत्र देकर जोस्टीन से शादी करके उसके वतन हौलैंड चली जाती है । हौलैंड में पहले से ही युद्ध के वक्त जोस्टीन का घर एवं परिवार नष्ट हो गया था । दोनों प्रारंभिक दिनों में अपने मित्र निकोलस के घर ठहरते हैं । वान निकोलस स्थानिक राजनीति में सक्रिय एवं प्रसिद्ध व्यक्ति थे । वान निकोलस महान संगीतकार और अच्छा चित्रकार था । वान सालस स्वभाव का सहृदय इन्सान था । उसका प्रतिभाशाली व्यक्तित्व रंजना को आकर्षित करता है । रंजना अपने पति जोस्टीन को धोखा देना नहीं चाहती थी, परंतु आखिर वह रह न पाई और न चाहते

हुए भी वान के प्रेम में डूब जाती है । रंजना को अपनी पत्नीत्व की मर्यादा का खयाल आते ही सोचती है कि - “..... पर उसी क्षण इस विचार ने कि जोस्टीन नीचे सो रहा है वह मेरा पति है और उसके विश्वास को मैं वान के चुंबनों द्वारा जुठा कर रही हूँ ।”^६

वक्त गुजरते रंजना की जिंदगी में बहुत बड़ा मोड़ आता है। जोस्टीन अपनी गर्भवती पत्नी रंजना को वान के हाथों में सौंपकर युद्ध मोरचे पर चला जाता है। कालान्तर रंजना एक पुत्र को जन्म देती है। वान उसे अपने पुत्र की तरह पालता है। वान का प्रेम दैहिक कम और आत्मिक ज्यादा था। रंजना वान की प्रेरणा मूर्ति थी। वान जैसे महान व्यक्ति की प्रेयसी बनकर रंजना अपने आपको धन्य समझती थी।

युद्ध के मोर्चे पर जोस्टीन शहीद हो जाता है । वान रंजना के समक्ष शादी का प्रस्ताव रखता है किन्तु रंजना अपने को अशुभ मानकर उसे दूर ही रखती है। रंजना के जीवन में आने वाले पुरुषों की अकाल मौत हो जाती थी । इस कारण अपने जीवन को एक मात्र आधार बेटे असीत को वान के पास छोड़कर रंजना भारत चली आती है । भारत में अन्तर्राष्ट्रीय चित्र प्रदर्शनी के समय उसका परिचय मिलिट्री अफसर कुलकर्णी से होता है । कुलकर्णी रंजना से शादी करना चाहता है । प्रारंभ में रंजना ने मना कर दिया फिर शादी कर ली। शराबी, देहभूखा कुलकर्णी रंजना के भूतकाल को जानने के बाद उसे मार-पीट करने लगता है जिससे रंजना का जीवन नर्कमय बन जाता है। दूसरी तरफ वोन रंजना को हौलैंड बुलाता है, परंतु रंजना वहाँ आने से साफ इन्कार कर देती है। कुछ सालों में वोन की मृत्यु हो जाती है। दूसरी ओर कुलकर्णी रंजना को घर से निकाल देता है। रंजना अकेली बम्बई छोड़कर लखनऊ चली आती है और अंत में एकाकी जिंदगी से निराश होकर आत्महत्या कर लेती है। रंजना की आत्महत्या के साथ उपन्यास का अंत हो जाता है।

समग्र दृष्टि से देखें तो लगता है कि रंजना समाज में सम्मान के साथ अपना घर बसाना चाहती थी परंतु उसके जीवन में आनेवाले पुरुष उसके शरीर को रौंदकर

चले जाते हैं । कोई उसकी भावना की कद्र नहीं करता । आखिर रंजना अकेली लड़ते, संघर्ष करते थक जाती है और आत्महत्या कर लेती है ।

शिल्प की दृष्टि से नरेश जी का यह नया और प्रथम प्रयोग है । पूरा उपन्यास आत्मकथनात्मक शैली में लिखा गया है । इसमें एक निश्चित कालावधि में समस्त कथा व्यापार संपन्न होता है । लेखक ने स्थान संकलन का सफल निर्वाह किया है । रंजना एक ही जगह पर बैठकर आगंतुक को अपनी कथा सुनाती है, फिर भी कथा की मौलिकता, सहजता, प्रभावोत्पादकता या स्वाभाविकता नष्ट नहीं होती । वर्णनात्मक शैली का प्रयोग नरेश जी की खास विशेषता है । सारे दृश्यों को शब्द-चित्र के रूप में प्रस्तुत किया है । पाठक कभी सैयद के घोड़े की टाप के साथ काबुल तक दौड़ता है, तो कभी मिलिट्री अस्पताल में सैनिकों के कटे हुए अंग देखकर काँप उठता है । वॉन की सहृदयता और स्नेह से भीग जाते हैं, तो कुलकर्णी की जंगलीयत देखकर घृणा से भर उठता है । सहृदयी स्वामीनाथन न केवल रंजना की आपबीती सुनता है बल्कि बीच-बीच में अपना व्यक्तित्व या चरित्र को भी प्रकट करता रहता है । रंजना की कथा स्वामीनाथन के हृदय में सहानुभूति जगाती है । साथ में उसके भीतर छिपी पुरुष वृत्ति को भी प्रकट करती है, कोई एक जगह जाकर वह भी रंजना के शरीर को प्राप्त करने के लिए उत्तेजित हो उठता है ।

डूबते मस्तूल पर महेन्द्र चतुर्वेदी ने आरोप लगाते हुए कहा है कि -“नारी जीवन के प्रति उनकी (लेखक की) रुग्ण मनोभावना और विकृत जिज्ञासा का परिचायक है, जिसमें नारी को अनेक पुरुषों की अंकशायिनी बनाने के उद्देश्य से ही मानो कथागत घटनाओं का संयोजन किया गया है । इसमें पुरुष की बहुविध कामुकता का विश्लेषण हुआ है । वहीं लेखक की निरंकुश कल्पना की पंगुता के भी दर्शन होते हैं । इसमें नारी को पुरुष के अंक में देखने की विकृत भावना समायी हुई है । सारा उपन्यास मिथ्या कल्पना के वितात में आवृत्त-सा प्रतीत होता है ।”⁹

चूँकि लेखक का आशय रंजना के माध्यम से नारी जीवन की विवशता का चित्रण करना है । रंजना के घृणित जीवन के लिए उसका प्रेमी सैयद है । रंजना को

चरित्रहीन कहने के पीछे पुरुष प्रधान समाज की मनोवृत्ति ही काम करती है। यदि रंजना चरित्रहीन है, कामुक है, वासनामयी है तो फिर सैयद, रेनाल्ड और कुलकर्णी क्या है ? रंजना को चरित्रहीन बनाने में इन तीनों का योगदान कम नहीं है।

डूबते मस्तूल पढ़कर हमारे मन में एक और प्रश्न उठता है कि आखिर नैतिकता क्या है ? डॉ. बैचेन ने इसका सुंदर उत्तर देते हुए लिखा है कि -“इस समस्या को समाज और नैतिकता की समस्या समझना भारी भूल होगी । क्योंकि समाज में नारी या नारी का शरीर कभी प्रश्न नहीं बनता । नारी कभी क्रय-विक्रय की वस्तु थी तब भी वह प्रश्न नहीं था । गुलाम थी, निर्जीव थी या अपने स्वामी के मनोभाव ही आप्त वाक्या था तब भी । मध्यकाल में नारी त्याग और वीरता की मूर्ति थी किंतु संस्कारों में आबद्ध होने के कारण हत संकल्प थी । उस समय लोग उसे पहेली कहते थे किंतु प्रश्न बनने के लिए कतरई तैयार नहीं है । नारी का शरीर पुरुष के लिए उतना ही बड़ा प्रश्न है जितना पुरुष का शरीर नारी के लिए हो । हाँ, पुरुष-नारी के यौन संबंध विषम हुए हैं । प्रश्न बने हैं उनके अंदर असंतुलन, असंयम आया है, इसको देखने की कोशिश नरेश जी ने की है ।”

निःसंदेह ‘डूबते मस्तूल’ परिवर्तित मूल्यों का उपन्यास है ।

(२) यह पथ बन्धु था :

नरेश जी का यह दूसरा उपन्यास है जो सन् १९६१ में प्रकाशित किया गया है । नरेश जी की यह अविस्मरणीय रचना है । इस उपन्यास की कथा एक ऐसे व्यक्ति की है, जो इतिहास में दर्ज महापुरुष से कम नहीं है परंतु फिर भी उसके योगदान या बलिदान की नोंध तक इतिहासकार नहीं लेते । ऐसे व्यक्ति केवल पथ बन्धु बनकर अपने अस्तित्व को समाप्त कर देते हैं ।

‘यह पथ बन्धु था’ ऐसे ही मानुष की कथा कहती है । एक आत्मसम्मानी, प्रामाणिक, कर्मनिष्ठ शिक्षक को आदर्शवादी एवं अव्यवहारु मानकर बहिष्कृत एवं निष्क्रिय कर दिया जाता है । नरेश जी स्वयं इस साधारण मनुष्य के बारे में लिखते हैं -“यह एक निपट साधारण जन की दूबगाथा है, जो धरती को वस्त्रित करने की

चेष्टा में न्यायक बनी रहती है । इसमें न उर्ध्व का दंभ है न अधः की आशंका ।^{१९}

इस उपन्यास में विघटित मूल्यों को स्पष्ट किया गया है । राजनीतिक, सामाजिक संस्थाओं तथा आर्थिक व्यवस्था में व्याप्त खोखलापन, नेता के कारनामों, दलबाजी, भ्रष्टाचार, अंग्रेजों की तानाशाही और गांधीजी प्रेरित आंदोलन आदि स्वतंत्रता युगीन वातावरण को वर्णित किया है । इसके साथ संयुक्त परिवार एवं विभक्त परिवार की सामाजिक समस्या को भी वाचा दी गई है । परिवार में व्याप्त ईर्ष्या, स्वार्थ, शोषण, राग-द्वेष आदि को सूक्ष्मता से उभारा गया है ।

‘यह पथ बन्धु था’ उपन्यास चार खंड में विभाजित हैं - (१) सूत्रपथ (२) पूर्व पथ (३) उत्तर पथ (४) शेष पथ ।

उपन्यास की कथा मालवा (उज्जैन) के एक छोटे से कसबे से शुरू होकर इंदौर, बनारस घुमती हुई उज्जैन के वही कसबे में एक नये विश्वास और आस्था के स्वर में समाप्त हो जाती है । संपूर्ण कथा दो प्रवाह में बहती है । मुख्य प्रवाह में गृहत्याग के बाद श्रीधर का व्यक्तिगत संघर्ष और दूसरे प्रवाह में श्रीधर की गैरहाजरी में उसके परिवार का संघर्ष चित्रित है ।

कथा की शुरुआत पूर्वदीप्त शैली से होती है । मालवे के छोटे कसबे में श्रीधर संपादित पत्रिका ‘शंखनाद’ के आगमन से एक तहलका मच जाता है । इस तुफानी काम से श्रीनाथ ठाकुर का भगौड़ा बेटा श्रीधर क्रांतिकारी युवक के रूप में प्रसिद्ध हो जाता है ।

श्रीधर के पिताजी श्रीनाथ ठाकुर वैष्णव मंदिर में कीर्तनियाजी थे । राजा-महाराजा के दरबार में नवदुर्गा, भागवत पढ़ना तथा व्रजभूमि तक लोगों की रास मंडली ले जाने का काम करते थे । श्रीनाथ ठाकुर के तीन बेटे श्रीमोहन, श्रीधर तथा श्रीवल्लभ थे, जिसमें श्रीधर ने बरसों पहले ही गृहत्याग कर दिया था ।

श्रीधर मिडिल क्लास में हिन्दी, इतिहास तथा भूगोल पढ़ाते-पढ़ाते ‘राज्य का गौरवमय इतिहास’ नामक पुस्तक का सृजन कर डालता है । श्रीमंत सरकार चाहती थी कि उनके पितामहों को राजकीय सम्मान से नवाजा जाये और उनके पितामहों के

नाम के आगे राजकीय पदवी लगायी जाये परंतु श्रीधर ने ऐसा करने से साफ इन्कार कर दिया । आदर्शवादी शिक्षक श्रीधर सरकार के सामने झुकने के बदले नौकरी से त्यागपत्र दे देता है । नौकरी के अभाव में आर्थिक संकट गहराने लगा । संयुक्त परिवार की कहासुनी, उपार्जन का संकट आदि श्रीधर को घर छोड़ने पर मजबूर कर देते हैं । घर-परिवार, पत्नी-बच्चों को छोड़कर श्रीधर अपना भाग्य आजमाने इंदौर चला आता है, वहाँ तक की घटना के साथ 'सूत्रपथ' की समाप्ति हो जाती है ।

'पूर्वपथ' में श्रीधर का बचपन, उसकी पढ़ाई, इन्दुदीदी के साथ बिताये रागात्मक क्षण, उसका विवाह, बच्चों और नौकरी, श्रीधर के मित्र की झाँकी, राजा साहब, बालासाहब, उसकी बेटी इन्दु की कथा, नौकरी से त्यागपत्र देने के बाद का मनोमंथन और अंत में किसी महान लक्ष्य के लिए भगवान बुद्ध की तरह महाभिनिष्क्रमण करने तक की घटनाएँ शामिल हैं ।

'उत्तरपथ' की शुरुआत श्रीधर के इंदौर आगमन से होती है । इंदौर आकर दिशाहीन श्रीधर स्वराज माँगनेवाले जुलूस में शामिल हो जाता है । यहाँ उसकी मुलाकात क्रांतिकारी दल के नेता बिसनबाबू से होती है । बिसन की सिफारिश से श्रीधर को दम्भी कांग्रेसी नेता श्री पुस्तके साहब के प्रजामंडल कार्यालय में काम मिल जाता है ।

राजनीति में सक्रिय होते ही श्रीधर की मुलाकात क्रांतिकारी दल के सदस्य कुमारी कमल, रत्ना तथा वेश्या मालिनी से हुई । नमक आंदोलन में भाग लेने के जुर्म में बिशन, श्रीधर तथा कमल के नाम वॉरन्ट जारी होते हैं । सरकार की आँख में धूल झाँककर बिशन और श्रीधर थोड़े दिनों के लिए दूसरे शहर भाग जाते हैं । परिस्थिति अनुकूल होते ही श्रीधर इंदौर आता है । यहाँ आने के बाद उसे पता चला कि उसकी नौकरी छूट गयी है । श्रीधर बेकार बनकर राजनीति में सक्रिय होता है । श्रीधर के नाम दुबारा वॉरन्ट जारी होता है, जिससे बचने के लिए श्रीधर बनारस भाग जाता है ।

दूसरी ओर श्रीधर के माँ-पिता, पत्नी एवं बच्चे श्रीधर के गृहत्याग से काफी व्यथित एवं चिंतित थे । श्रीधर के चले जाने के बाद पूरा परिवार बिखर जाता है ।

दोनों भाई आपसी स्वार्थ के कारण घर से अलग हो जाते हैं । पूरा हरा-भरा संयुक्त परिवार तीन भागों में बंट जाता है । श्रीनाथ ठाकुर पर दुःख के पहाड़ टूट पड़े । कालान्तर में श्रीधर की बड़ी बेटी को कम दहेज के कारण ससुरालवालों ने अपाहीज बनाकर हमेशा के लिए श्रीधर के घर लौटा दिया । उसका बेटा देवव्रत आवारा हो जाता है और पत्नी सरों हड्डियों की बुखार की शिकार हो जाती है । इस परिवार की अजब स्थिति का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि -“पूरे परिवार में एक अजीब-सी घुटन समा गयी थी । सब अपने-अपने ढंग से या तो बीमार थे या वृद्ध हो गये थे या रोगी हो गये थे या उपेक्षित ।”^{१०}

बनारस में उदर-पूर्ति के लिए श्रीधर दर-दर की ठोकें खाता है । अंत में प्रुफ रीडिंग तथा संपादकीय काम से थोड़े बहुत रुपये मिलने लगते हैं । बनारस में उसके मित्र बिसनबाबू की मालव हाऊस पर बंब गिराते समय मौत हो जाती है । श्रीधर को क्रांतिकारी दल की राजनीति में बहुत विश्वास नहीं था, फिर भी बिशन का बलिदान उसे प्रेरणा देता है । बहुत विधिवत् कांग्रेस का सदस्य बनकर राजनीति में सक्रिय हो जाता है । राजनीति में कांग्रेसियों का दंभ, अनीति, असत्य, धोखा-फरेब, सत्ता की खींचातानी देखकर श्रीधर की नैतिकता को आघात पहुँचता है । श्रीधर आदर्शवादी एवं प्रामाणिक कार्यकर्ता था । इस कारण कई अप्रामाणिक नेता की आँखों में खटकता था । परिणामस्वरूप प्रामाणिक एवं निष्ठावान श्रीधर को कांग्रेसी कार्यालय से हटा दिया जाता है ।

श्रीधर बनारस में अकेला, स्नेहविहीन भटकता है, तब रत्ना उसे सहारा देती है । दोनों के बीच रागात्मक संबंध स्थापित होते हैं । बिशन के बलिदान का बदला लेने क्रांतिकारी दल के सदस्य शवीन, सुधांशु तथा रत्ना भूगर्भ में रहकर बम बनाते हैं । पश्चात् यह बम एक निश्चित जगह पर पहुँचाना चाहते हैं परंतु किसी ने पुलिस को बताकर श्रीधर को पकड़वा दिया । बम बनाने के जुर्म में शवीन, सुधांशु तथा रत्ना को फांसी और श्रीधर को दस साल का कारावास मिलता है ।

श्रीधर जेल से छुटने के बाद रामखेलावन के साथ मिलकर राष्ट्रीय पत्रिका

‘शंखनाद’ निकालता है । ‘शंखनाद’ में अंग्रेजों के अत्याचार, नेताओं के कारनामों, हिन्दु-मुस्लिम तनाव आदि का यथार्थ वर्णन छपता था । नग्न सत्य तथा विश्वसनीयता के कारण पूरे बनारस में ‘शंखनाद’ पत्रिका प्रसिद्ध हो जाती है । अंग्रेज सरकार ‘शंखनाद’ एवं श्रीधर दोनों से खफा थी । सरकार से बचने श्रीधर को अपना मुकाम बदलना पड़ता था फिर भी उसे अपने कार्य से संतोष था । श्रीधर अपनी सफलता की खबर अपने कसबे तक पहुँचाने के लिए ‘शंखनाद’ की नकल कसबे तक भेजने लगता है ।

‘शंखनाद’ की प्रसिद्धि श्रीधर के लिए ईर्ष्या का कारण बनती है । मंत्री सकलदीप नारायण अपनी सत्ता के बल पर श्रीधर के प्रेस को ताला लगवा देते हैं । श्रीधर फिर बेरोजगार बन जाता है और अंतर्द्वियों के रोग का शिकार बनता है । अब उसके पास न रुपये थे न कोई आत्मीयजन । परिवारवालों के पास जा नहीं सकता था । श्रीधर चारों ओर से घिर चुका था । ऐसे वक्त में अपने बचपन की सखी इन्दुदीदी से मुलाकात होती है । इन्दुदीदी संसार त्यागकर काशीनिवास के लिए आयी थी । इन्दुदीदी ने बीमार श्रीधर का इलाज करवाया और अपने घर लौट जाने की सलाह दी ।

श्रीधर के जीवन के महत्वपूर्ण वर्ष संघर्ष में चले गये । उसका संघर्ष एवं पुरुषार्थ नपुंसक सिद्ध हुआ, क्योंकि सभी एक सीमा के बाद श्रीधर को निरर्थक समझकर फेंक दिया था । उसका मन ग्लानि एवं संकोच से भर जाता है । वह लघुताग्रंथि का शिकार हो जाता है । उत्तरपथ की समाप्ति पर श्रीधर की मनोदशा का वर्णन करते हुए लेखक लिखते हैं -“अपना संपूर्ण जीवन स्वास्थ्य, कर्मठता काशी को सौंप वृद्ध बीमार, असफल, निरावलंबित बने वे मालवा की ओर लौट रहे थे, उस घर की ओर जिसके बनने मिटने में उन्होंने यही सहयोग दिया था कि वे लोग मिट जाये ।”^{११}

‘शेषपथ’ के प्रारंभ में कसबे के लोग रेलवे स्टेशन पर क्रांतिकारी पुरुष के रूप में श्रीधर का स्वागत करते हैं । उज्जैन के लोगों के अनुरोध पर श्रीधर स्थानीय

काँग्रेस में प्रवेश करता है, परंतु शहर की तरह गाँव की राजनीति भी षडयंत्र, अनीति, असत्य आदि से प्रभावित थी । आखिर श्रीधर काँग्रेस पक्ष से त्यागपत्र दे देता है । श्रीधर अकेला और तनहाइयों में बैठा सोचता है कि -“उस दिन दरवाजे के उस पार एक कर्मठ संसार की आशा थी आँखों में, पैरों में, हाथों में, लेकिन आज दरवाजे के इस पार खड़े होकर टूटे हुए वृद्ध की भांति बाहर का बाहर ही छोड़कर घर में है जहाँ जाने क्या-क्या बदल चुका है ।”^{१२}

श्रीधर अंतिम अवस्था में विश्रांति के लिए घर लौटे थे कि कुछ दिनों में उसकी पत्नी चल बसी । प्रथम बेटी के पुत्र देवव्रत को सरो के माँ-बाप ले गये और दूसरी बेटी ससुराल में थी । परिवार स्नेह से वंचित श्रीधर फिर अकेला पड़ गया । श्रीधर के पास अब कोई न काम था न समाज में उसका महत्त्व था । आखिर इन्दुदीदी द्वारा दिए गए कागज में से ‘मानव इतिहास’ लिखने के लिए बैठ जाता है । इस तरह ‘शेषपथ’ के अंत के साथ उपन्यास का भी अंत हो जाता है ।

इस उपन्यास में नरेश जी ने स्वतंत्र-युगीन सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों की विराट झाँकी करवाई है । पारिवारिक मूल्यों में आये बदलाव की ओर इशारा करते हुए नरेश जी ने पारिवारिक संकुचितता पर व्यंग्य किया है । आज संयुक्त परिवार टूट रहे हैं । उसमें पहले जैसी सहृदयता, आत्मीयता, सुख-दुःख बांटने की भावना नहीं रही ।

श्रीधर के माध्यम से नरेश जी ने उन लोगों को याद किया है, जो उत्कृष्ट काम के बावजूद इतिहास में अपना नाम दर्ज नहीं करवा सके हैं । नरेश जी अपनी भूमिका में लिखा है -“इतिहास सफल क्रूरों तथा महापुरुषों का ही होता है । जबकि हमारी स्मृतियों में ऐसे अनेक साधारणजन होते हैं, जो व्यक्ति भी नहीं बन पाते केवल संख्या होते हैं, लेकिन हम जानते हैं कि ये सफल सामान्य जन इतिहास न हो महापुरुष न हो किन्तु मनुष्य होते हैं ।”^{१३}

नरेश जी ने श्रीधर के माध्यम में दीर्घकालीन समस्या की ओर संकेत दिया है । उनके विचार में आदर्श, मूल्य एवं संस्कार के लिए व्यक्ति को जूझना पड़े, मुश्किलों

का सामना करना पड़े तो आनेवाले वक्त में ये सब शब्द मूल्यहीन हो जायेंगे । उपन्यास के अंत में श्रीधर अपनी पत्नी सरों के सामने स्वीकार करता है कि -“किसी को पुस्तकों के आदर्श की कोई आवश्यकता नहीं होती सरो ! जीवन पढ़नेवाला यह मारवाड़ी है जिसने तुम्हारे बगल में कोठी बनवायी है । तुम्हारे जेठ ने कोई किताब नहीं पढ़ी । इसीलिए वे सब सफल हैं, सुना है तुमने हमने पुस्तक अपनी टपकती छतों को चुने से कैसे रोका जाए वह तक नहीं सीखा।”^{१४}

समग्र रूप से देखें तो ‘यह पथ बन्धु था’ उपन्यास एक मध्यवर्गीय, ईमानदार, आदर्शप्रिय एवं कर्मनिष्ठ व्यक्ति की यातनाओं का इतिहास है । श्रीधर की कथा प्रत्येक मूल्यनिष्ठ व्यक्ति की कथा है ।

(३) धूमकेतु एक श्रुति :

‘यह पथ बन्धु था’ उपन्यास के पश्चात् ‘धूमकेतु एक श्रुति’ नरेश जी का तीसरा उपन्यास सन्-१९६२ में प्रकाशित हुआ । इसे सशक्त सामाजिक एवं पारिवारिक उपन्यास कह सकते हैं । यह उपन्यास ‘नदी यशस्वी है’ उपन्यास का प्रथम खंड है । ‘धूमकेतु एक श्रुति’ में बालक उदयन की कथा वर्णित है, तो ‘नदी यशस्वी है’ में किशोर उदयन की । दोनों उपन्यास की कथा एक-दूसरे से संबंधित है । इस उपन्यास में पतनोन्मुख ग्रामीण संस्कृति का यथार्थ निरूपित हुआ है । पुराने और नये मूल्यों की टकराहट तथा संस्कृति, संस्कार और मूल्यों को बचाने का प्रयत्न आदि बातों को वाचा दी गई है । रोचकता, नाटकीयता, काव्यात्मक भाषा तथा आत्मकथात्मक शैली के कारण प्रस्तुत उपन्यास नरेश के अन्य उपन्यासों की तुलना में श्रेष्ठ उपन्यास है ।

उपन्यास का आरंभ पूर्वदीप्त प्रणाली से होता है । कथा के पूर्वार्ध को ‘श्रुति विस्तार’ नाम दिया है जो नायक उदयन की बालसहज स्मृतियों को अभिव्यक्त करता है । उदयन की माँ परलोक सीधार गई है । अब उसके परिवार में दादाजी वृद्ध बहन, पिताजी तथा सौतेली बहन शांति रह गये हैं ।

माँ की ममता से वंचित उदयन स्नेह के अभाव में दर-दर भटकता है ।

उदयन अनुशासन के बिना बिगड़ता चला गया । दोस्तों के साथ घर से पैसे चुराकर बाज़ार की चीजें खाना, आम चुराना, दोस्तों के साथ सीगरेट पीना, औरतों की नंगी तसवीरें देखना, गृहकार्य से जी चुराना, आवारा लड़के की तरह भटकना उदयन का जीवन बन गया था ।

इस उपन्यास की मुख्यकथा उदयन के बालसहज जिज्ञासा प्रेरित प्रश्नों और पराक्रमों की कथा है । मुख्यकथा के समांतर उदयन के वंशजों की कथा चित्रित हुई है । समांतर कथा मुख्यकथा के समान ही महत्त्वपूर्ण है । इस कथा को पढ़कर उदयन के असंस्कारी, आवारा चरित्र के प्रति सहानुभूति होती है, साथ में उसके पिताजी के जीवन चरित्र के कुछ जटिल पृष्ठों को समझने में भी सहायता होती है ।

सहायक कथा के रूप में उदयन के दादाजी और पिताजी की कथा वर्णित है । उसके साथ दादाजी के सादुभाई पुराजीबा और मनूमाँ की कथा तथा गाँव के हवेली के मुखियाजी की बेटी वल्लभा की कथा कही गई है । इस उपन्यास में वल्लभा महत्त्वपूर्ण पात्र है । वह आवारा, उदण्ड मातृस्नेह से वंचित उदयन की सबसे प्रीतिपात्र है । लेखक ने वल्लभा के माध्यम से विधवा समस्या को उद्घाटित किया है । मुख्य कथा उपन्यास के मध्यभाग तक अपना प्रभाव बनाये रखती है, लेकिन जैसे ही सहायक कथा का आरंभ होता है मुख्य कथा गौण बन जाती है और सहायक कथा उस पर हावी होती नज़र आती है । उदयन को भूलकर पाठक उसके दादाजी लज्जाशंकर तथा पिताजी इच्छाशंकर की संघर्षमयी करुण जीवनगाथा के रस प्रवाह में डूब जाते हैं ।

उदयन के दादाजी लज्जाशंकर के पिताजी भावनगर राज्य के राजपंडित थे । चार भाई और एक बहन के परिवार के परिवार में वे सबसे छोटे थे । पिताजी की मृत्यु के बाद सबसे बड़े भाई परंपरागत रूप में राजपंडित बने । दूसरे भाई सूरत में तम्बाकु के बहुत बड़े व्यापारी थे । तीसरे भाई फौज़ में भर्ती हुए थे । सब कुछ ठीक चल रहा था कि पिताजी की मौत हो गई । पिताजी की मौत के बाद सारी पैतृक संपत्ति बड़े भाई ने हथिया ली, सूरत स्थित व्यापारी भाई ने मुँह मोड़ लिया और

फौज में भर्ती भाई का कोई अतापता या खबर नहीं थी । सन् १९५६ के अकाल ने लज्जाशंकर का जीना दुभर कर दिया । उस पर अपनी बहन तथा पत्नी की जिम्मेदारी थी । आखिर जीवनयापन के लिए वे भावनगर छोड़कर राजस्थान में मालवा चले गये । मालवा में आकर कठोर परिश्रम के परिणामस्वरूप वे दस-बारह गाय-भैंस तथा बीस बीघा जमीन के मालिक बन गये । अपने तीनों बेटे इच्छाशंकर, सूर्यशंकर और रत्नशंकर को पढ़ा लिखाकर उच्च स्थान पर पहुँचाया । लज्जाशंकर के जीवन में सुख की शुरुआत ही हुई थी कि दुःख के पहाड़ टूट पड़े । पत्नी और युवा पुत्रवधू की एक साथ मौत हो गई । उदयन के पिताजी की दोनों पत्नी भगवान को प्यारी हो गई, मझले बेटे सूर्यशंकर की शादी में दरार पड़ गई, छोटे पुत्र रत्नशंकर दरिया में बह गया और उदयन के पिताजी वेश्यावृत्ति में फँस गये । आखिर मातृस्नेह से वंचित पौत्री शांति और पुत्र उदयन की विवशता को लज्जाशंकर झेल न सके और अंत में दिल का दौरा पड़ने से उनकी मौत हो गई । अतः उपन्यास का आरंभ उदयन के बचपन के साथ शुरू होता है और अंत दादाजी की मौत के साथ । दादाजी की मौत के बाद उदयन आगे की पढ़ाई के लिए चाचाजी के यहाँ 'महू' चला जाता है ।

‘धूमकेतु एक श्रुति’ उपन्यास के प्रमुख चरित्र जीवनयुद्ध लड़ते हुए अपने आपको होम, समर्पित करके आकाश में स्थित ‘धूमकेतु’ की तरह चमक छोड़ जाते हैं। इस दृष्टि से उपन्यास का शीर्षक सार्थक सिद्ध होता है । चरित्र का मानना था कि -“जीवन यज्ञ है, जिसमें होम होना ही पड़ता है । होम होकर ही हम दिव्य या देवता हो जाते हैं । स्वाहा होना ही देवत्व है ।”^{१५}

लज्जाशंकर का जीवन जितना संघर्षपूर्ण था उतना ही दूसरों के लिए अनुकरणीय था । वे अपने ही प्रियजनों एवं भाइयों के स्वार्थ के भोग बने फिर भी हँसते, परिश्रम एवं पुरुषार्थ से बहुत कुछ हासिल करते हैं । लज्जाशंकर दुःखों से लड़ते हुए कहते हैं - “दुःख जीवन की कसौटी है, दुःख ही सब को माँजता है । दुःख ईश्वर की प्रसादी है उसे मस्तक पर धारण करके चलते रहना ही जिंदगी है ।

यही मनुष्य का कर्तव्य है । जन्म और मृत्यु कुदरत का सहज क्रम है, उसे सहर्ष स्वीकारना है, जो नहीं स्वीकार पाते वह रघुबा की पत्नी मनुमाँ की तरह पागल हो जाते हैं ।” एक पुत्र की मौत मनुमाँ को पागल बना देती है, जबकि लज्जाशंकर अपने ही हाथों से पत्नी, पुत्रवधू तथा पुत्र को श्मशान पहुँचाते हैं । इस प्रकार लज्जाशंकर का जीवन ही संदेश बन गया है ।

नरेश जी के युग में नारी की स्थिति बड़ी दयनीय थी । उन्होंने अपने उपन्यासों में नारी जीवन की विवशता, लाचारी, मजबूरी, तिरस्कार, प्रताड़ना, उपेक्षा तथा घुटनभरे जीवन का चित्रण किया है । पुत्र मृत्यु के आघात में पागल मनुमाँ की गाँव वाले मज़ाक उड़ाते हैं । लोग उसे भूतनी या डाकिन कहकर अपमानित करते हैं । लेखक ने उदयन की माँ के द्वारा दुहाजवर की समस्या की ओर अंगुली निर्देश किया है । वल्लभाबुआ विधवा स्त्री की विवशता और पुनःविवाह न होने पर उत्पन्न समस्या को वाचा देती है । स्त्री का पुनःविवाह पाप माना जाता था, परिणामस्वरूप युवा विधवा कभी स्वच्छा से अनैतिक संबंध रखती थी या अपने ही स्वजनों की जातीय शोषण का भोग बनती थी । वल्लभा अपने पिता की जातीयवृत्तियों का शिकार बनती है और कुंवारी माँ बनने पर आत्महत्या कर लेती है ।

उदयन का अस्वाभाविक व्यवहार एवं अनुशासनहीनता के लिए नरेश जी उसके पारिवारिक वातावरण को जिम्मेदार मानते हैं । वातावरण बच्चों के अनुकूल तैयार करना चाहिए । उचित वातावरण एवं परिस्थितियों के अभाव में उदयन उम्र से पहले गंभीर एवं प्रौढ़ बन जाता है । उदयन का चरित्र मन्नू भंडारी के उपन्यास ‘आपका बंटी’ के बाल नायक बंटी की याद दिलाता है ।

‘धूमकेतु एक श्रुति’ उपन्यास की कथा मानो उदयन की कथा नहीं बल्कि नरेश जी की कथा प्रतीत होती है । कई प्रसंद नरेश के बचपन से सीधे लिए गये हैं। इस उपन्यास की खास विशेषता यह है कि इसके पात्र ब्राह्मण परिवार से ही लिए गए हैं ।

‘हिन्दी उपन्यास उत्तरशती की उपलब्धियाँ’ नामक पुस्तक में डॉ. विवेकीराय

इस उपन्यास पर अपने विचार प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं -“नरेश मेहता का यह उपन्यास बहुत विचारोत्तेजक और प्रभावशाली उपन्यास है । इसमें सिद्धांतवादिता और आदर्शवादिता की पराजय का अत्यंत तीखा, भयंकर और रोमांचक चित्रण किया गया है । उपन्यासकार ने आदर्शवादी नायक की पराजय, निराशा, अपमान, असफलता तथा जीवनव्यापी टूटन का जो आलेखन किया है वह निश्चय ही मर्मस्पर्शी है ।”^{१६}

(४) दो एकान्त :

‘दो एकान्त’ नरेश जी का चौथा उपन्यास है । यह उपन्यास सन् १९६४ में प्रकाशित हुआ । इसकी कथा लोगों को इतनी पसंद आयी कि १९८५ में इसका पाँचवा संस्करण प्रकाशित करना पड़ा था । ‘दो एकान्त’ एक सामाजिक उपन्यास है। इस उपन्यास में विखंडित दांपत्यजीवन से उत्पन्न तनाव को निरूपित किया गया है। विषय वस्तु की दृष्टि से कथा में कुछ नया नहीं है। वही घिसी-पीटी ‘पति, पत्नी और वो’ वाली कथा है, जो सस्ते साहित्य लिखनेवाले लेखकों से लेकर महान साहित्यकारों तक को आकर्षित करती आयी है ।

एक समय में भारतीय परिवार में लग्न संस्था बहुत महत्त्व रखती थी, परंतु समय के साथ परिवर्तित मूल्यों ने इस संस्था की नींव हिला दी । पति के चरणों में सब कुछ समर्पित करनेवाली स्त्री ने अपने व्यक्तिगत स्तर पर सोचना शुरू किया । अब वह चार दीवारी के बीच अपने जीवन को खोना नहीं चाहती । सांप्रत युग में नारी-विचारधारा में बहुत बदलाव आया है । नारी ने अपनी घुटन से छुटकारा पाने के लिए स्वयं कमर कसी है । इस उपन्यास की स्त्री पात्र तानीरा इसका उदाहरण है । पहले स्त्री को दया, मजबूरी एवं लाचारीवश पति के आश्रय में रहना पड़ता था, लेकिन आज अपने आत्मसम्मान के प्रति जागृत स्त्री किसी की दया पर जीना पसंद नहीं करती । वह पति से प्रेम प्राप्ति की अपेक्षा भी रख सकती है ।

नरेश जी ने प्रस्तुत उपन्यास में परिवर्तन मूल्यों को चित्रित करते हुए लग्न संस्था का महत्त्व साबित किया है । विवाह भारतीय संस्कृति का महत्त्वपूर्ण संस्कार

है, जो पति-पत्नी को आजीवन एक सूत्र में बांधता है । नरेश जी का निजी अनुभव भी है । अपनी प्रेमिका की आत्महत्या के बाद नरेश जी महिमा से शादी करके सच्चे प्रेम के अधिकारी बनते हैं, जो उसे स्वर्ग का सुख प्रदान करता है । यही कारण है कि संघर्ष के दिनों में कंधे से कंधा मिलाकर खड़ी रहनेवाली पत्नी महिमा को यह उपन्यास अर्पण किया गया है ।

इस उपन्यास की कथा का केन्द्रबिन्दु विवेक-वानीरा का असफल दाम्पत्य जीवन है । पूरी कथा विवेक, वानीरा, क्लाइड और मेजर आनंद के आसपास घूमती है । इस उपन्यास में एक ही कथा वर्णित है । इसमें घटनाओं की न भरमार है न चरित्रों का झमेला है । इसमें काव्यात्मक भाषा और मनोविश्लेषणात्मक शैली का प्रयोग किया गया है । कथा का आरंभ विवेक-वानीरा के वैवाहिक जीवन के सुखद दिनों से होता है और अंत वैवाहिक जीवन की निष्फलता से हुआ है । आरंभ और अंत में काफी विरोधाभास नज़र आता है ।

उपन्यास का प्रारंभ अन्य उपन्यासों की तरह पूर्वदीप्ति पद्धति से हुआ है । डॉ. विवेक की शादी बंगला भाषा के निवृत्त प्रोफेसर प्रमथ मुखर्जी की इकलौती बेटी वानीरा से होती है । वानीरा के पिताजी अपनी सारी संपत्ति बेटी को सौंपकर महाप्रभुजी की सेवा करने चैतन्यमठ चले जाते हैं । विवाह के प्रारंभिक दिन हँसी, मज़ाक, मस्ती और घूमने-फिरने में बित जाते हैं । कालान्तर जीवन में गंभीरता एवं स्थायित्व आने लगता है । वानीरा ने कुछ दिन भोजन के लिए पति विवेक की प्रतीक्षा की, परंतु बाद में पति का भोजन डिस्पेन्सरी ही भेजने लगी । एक दिन विवेक खाना खाये बिना भोजन घर भेज देता है । देर रात जब विवेक घर लौटता है तो वानीरा सोई पड़ी थी । अब दोनों में पहले जैसी उष्मा और प्रेम नहीं रहा । अब विवेक को काम से फुर्सत नहीं है और वानीरा घर पर अपना एकान्त भरने का प्रयत्न करती है । आखिर में वानीरा अपनी जीवन-पद्धति से उब जाती है ।

विवेक-वानीरा के विचारों में और कार्य में बहुत बड़ा फर्क था । वानीरा सामान्य स्त्री की तरह सुख-सुविधा वाली घर-गृहस्थी की चाह रखती है जबकि

विवेक पिछड़े इलाके में गरीब मरीज़ों की सेवा करना चाहता था । विवेक एक मानवतावादी डॉक्टर था । दूर-दराज, नदी पार गरीब मरीज़ों की सेवा करना विवेक के जीवन का हिस्सा था । इस कारण विवेक वानीरा के लिए ज्यादा समय नहीं निकाल सकता और दूसरी तरफ वानीरा की एकान्त-पीड़ा बढ़ती जा रही थी। विवेक की अत्यधिक व्यस्तता उसके दांपत्य जीवन में तनाव पैदा करती है और एक दिन वानीरा भी उससे काफी दूर चली जाती है ।

वानीरा आर्थिक अभाव तथा एकाकीपन को भरने विवेक के मरीज क्लाइड की ओर आकर्षित होती है । क्लाइड का आगमन वानीरा की नीरस जिंदगी में प्रसन्नता भर देता है । अब वानीरा विवेक को छोड़कर क्लाइड के साथ उन्मुक्त रूप से घुमने लगती है । विवेक की उदारता वानीरा को स्वच्छंद बना देती है । अब वानीरा न विवेक की रुचि का ध्यान रखती है, न किसी काम में उसकी राय मांगती है । अब वानीरा का केन्द्रबिन्दु क्लाइड था, जिसके साथ वह बाज़ार जाती है, रथयात्रा में शरीक होती है और समुद्र में स्नान भी करती है । क्लाइड के पीछे पागल वानीरा विवेक की जगन्नाथपुरी छोड़कर डिब्रुगढ़ क्लाइड के वतन में जाने के लिए मजबूर करती है । यहाँ आकर विवेक अपनी गृहस्थी को संभालने का प्रयत्न करता है, परंतु उसे सफलता नहीं मिलती । उन्मुक्त, स्वच्छंद जीवन की आदी वानीरा मेजर आनंद के प्रेम में पड़कर अपना सबकुछ लुटा देती है । अब मेजर आनंद का तबादला इलाहाबाद हो जाता है, तो वानीरा विवेक के साथ वहाँ पहुँच जाती है । विवेक वानीरा की नाजायज़ हरकतों से परिचित था । वानीरा का गैर-पुरुषों के साथ घुमना विवेक को अच्छा नहीं लगता था किन्तु अपने स्वभाव की दुर्बलतावश वह न वानीरा को गैरों के साथ विहार करने से रोक सका, न साहचर्य दे पाया । वक्त गुजरते जब वानीरा आनंद के बच्चे की माँ बनने वाली थी कि आनंद गर्भवती वानीरा को छोड़कर लदाख मोर्चे चला जाता है। उपन्यास के उत्तरार्द्ध में विवेक का दुर्बल व्यक्तित्व एक सशक्त पुरुषत्व धारण करता है । विवेक पहली बार अकेला निर्णय करके इलाहाबाद से जगन्नाथपुरी लौट आता है ।

पुरी आकर पति-पत्नी अपने-अपने एकान्त में कैद हो जाते हैं । उपन्यास का अंत पाठक की धारणा को तोड़ देता है । विवेक आनंद के बच्चे के साथ वानीरा का स्वीकार करता है । विवेक वानीरा को न कुलटा या चरित्रहीन कहकर घर से निकालता है और न खुद चला जाता है । पति-पत्नी के निजी संबंध की समाप्ति के बाद भी वह वानीरा का रक्षक बनकर खड़ा रहता है ।

नरेश जी भारतीय संस्कृति के अच्छे और सनातन मूल्यों को बचाये रखने के लिए प्रयत्नशील हैं । नरेश जी नारी सम्मान के आग्रही थे । नरेश जी नहीं चाहते थे कि उसकी नारी पति द्वारा निष्काषित होकर दर-दर भटके, या आत्महत्या करे । वानीरा आधुनिक नारी है । वे अन्यायपूर्ण रवैये को चुनौती देती है ।

डॉ. भगीरथ बड़ोले लिखते हैं -“इस प्रकार उपन्यास के नायक विवेक की दृष्टि स्त्री-पुरुष संबंधों में स्वस्थ परंपरा का पोषण करती है । अपनी पत्नी के आचरण को देखकर भी अंत में वह वानीरा को अपमानित करके नहीं निकालता।”^{१७}

वानीरा पति के कार्य में सहायक बनकर अपने व्यक्तिगत जीवन की बलि चढ़ाने के पक्ष में नहीं है । पति का साहचर्य न मिलने की स्थिति में निःसंकोच अन्य पुरुषों की मैत्री स्वीकारती है । वानीरा इसका उदाहरण है । क्लाइड और आनंद को समर्पित होने के बाद वानीरा स्वयं को पापी नहीं मानती । उपन्यास के अंत में दोनों का जीवन बिखर जाता है । दोनों सामाजिकता निभाने एकाकी बन जाते हैं, परंतु मार्गच्युत नहीं होते । विवेक शरदबाबू के देवदास की तरह शराब में नहीं डूबता बल्कि सृजन के मार्ग पर कदम बढ़ाता है ।

उपन्यास के अंत में वानीरा को आनंद के हाथ में न सौंपकर लेखक इस ओर इशारा करते हैं कि पति के साथ छल करना दाम्पत्य जीवन की पवित्रता को नष्ट करता है। अन्य पुरुषों की मैत्री में मर्यादा और संयम आवश्यक है। स्त्री-पुरुष के जीवन की तृप्ति एक व्यक्ति में ही होनी चाहिए। इसके अभाव में जीवन विषाक्त बन सकता है।

अंत में इस उपन्यास पर विचार करते हुए लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय लिखते हैं कि -

“प्रेम के तनाव पर आधारित नरेश जी का यह उपन्यास विवेक और वानीरा के इर्दगिर्द घुमनेवाली कथा के द्वारा आधुनिकता के संदर्भ में स्त्री-पुरुष के बनते बिगड़ते संबंधों की चर्चा सामाजिक यथार्थ के धरातल पर प्रस्तुत करता है । व्यक्ति पर अधिक केन्द्रित करके भी लेखक ने उसे समाज से जोड़ने की चेष्टा की है । समाज में विघटित होते हुए मूल्यों और मर्यादाओं के बीच जीवन की प्राप्ति के बाद के परिवेश में विवेक और वानीरा मध्यमवर्ग के संकट बोध के प्रतीक बनकर आते हैं।”^{१८}

(५) नदी यशस्वी है :

नरेश जी का यह उपन्यास सन् १९६७ में प्रकाशित हुआ था । यह उपन्यास ‘धूमकेतु एक श्रुति’ के बाद का खण्ड है जिसमें उदयन के किशोर जीवन को चित्रित किया गया है । ‘नदी यशस्वी है’ नरेश जी का व्यक्तिपरक उपन्यास है । इस उपन्यास की भूमिका में नरेश जी लिखते हैं कि – “सजीव चित्रण है अब पूर्णतः विस्तृत हो गये उस संसार का जब इस देश में अंग्रेज शासक थे और जहाँ मध्यमवर्गीय सरकारी कर्मचारियों और कुलीन परिवारों पर अंग्रेज रहन-सहन का प्रभुत्व था, तो दूसरी ओर देश की स्वाधीनता के लिए क्रांतिकारी और गांधीजी अपने अपने ढंग पर संघर्षरत थे । इस पृष्ठभूमि में यह उपन्यास छोटेसाब उदयन के अंग्रेज परस्त चाचाजी के अदृश्य भय से मुक्त होने की कहानी है ।”^{१९}

इस उपन्यास की कथा अलग-अलग तीन खंडों में विभाजित हैं । प्रथम खंड में बालक उदयन की स्मृतियों के माध्यम से ग्रामीण समाज का चित्र खींचा गया है । दूसरे खंड में शहरीवर्ग को स्थान दिया गया है और तीसरा खंड उपन्यास का उत्तरार्ध है जिसमें क्रांतिकारी युवकों के हिंसात्मक और गांधीजी के अहिंसात्मक आंदोलन को वर्णित किया गया है ।

उपन्यास का प्रारंभ इंदौर के पास स्थित एक छोटे से गाँव महु से होता है । महु में अंग्रेज सरकार की छावनी है । उदयन के चाचाजी अंग्रेज सरकार के वकील हैं । उदयन को अच्छे संस्कार एवं शिक्षा दिलाने हेतु चाचाजी उसे महु से ले आते हैं । उदयन गाँव, परिवार तथा दोस्तों को छोड़कर चाचा के घर चला आता है । महु में

चाचाजी अकेले ही रहते थे । अंग्रेज ढंग की विशाल कोठी में उदयन का नवाबी जीवन शुरू होता है । चाचाजी के कड़े नियंत्रणों के साथ उदयन के शिस्तमय जीवन की शुरुआत होती है । चाचाजी उदयन के अच्छे संस्कार के लिए तमाम सुविधाएँ उपलब्ध करवाते हैं, परंतु उदयन अपने असल संस्कारों से मुक्त नहीं हो पाता । उदयन पूरे दिन गली के बच्चों के साथ भटकता रहता था जिससे उसमें ढेर सारी बुराईयाँ पनपने लगीं । चोरी-छिपे बाज़ार की चीजें खाना, बीड़ी पीना, चोरी करना, नदी की कछारों और बावड़ियों में घुमते रहना उदयन की आदत बन गई थी । चाचाजी उसे ठीक करने का भरसक प्रयत्न करते हैं परंतु शिस्तबद्ध वातावरण के बीच भी ऐसे दोस्तों को ढूँढ़ लेता था, जो उसे रहस्यमय स्थान की सफर करवाये । उदयन को केरम खेलना, रिंग खेलना या किताबें पढ़ना अच्छा नहीं लगता । वह तो दोस्तों के साथ खाई में गिरता, बावड़ी कूदता और नदी में तैरता रहता ।

उदयन गाँव से कुछ ऐसी बातें सुनकर आया था, जिसे बुजुर्गों ने गंदी कहकर टाल दी थी । उदयन ने गाँव की स्त्रियों से स्त्री-पुरुष के जातीय जीवन के कई किस्से सुने थे और कुछ आधी-अधूरी बातें आवारा दोस्तों ने सुनाई थी । उदयन में अन्य बच्चों की तुलना में कुतुहल तथा जिज्ञासा अधिक थी । उदयन के मन में बालसहज ऐसे अनेक प्रश्न थे जिनका जवाब न बड़े व्यक्तियों ने दिया और न ही दोस्तों ने । इस कारण उदयन में कई विकृतियाँ भर आई । महु में नौकर लछमन के कहने पर उदयन चाचाजी के कमरे की दरार में झाँककर गाँव की विधवा मंडलोई के साथ चाचाजी को निर्वस्त्र देखता है। यह दृश्य उदयन के मन पर गहरी छाप छोड़ता है। उसका मन स्त्री-पुरुष संबंधों को लेकर उलझ जाता है। उदयन सोचता है कि -“दीदी की बीमारी, आठवाँ महीना, वल्लभाबुआ का उनके पिता की गोद में सिर रखना, सीढ़ी पर खड़ी मजदूरनी, चाचाजी की गौरवर्ण देह इनका उत्तर किसी के पास नहीं है क्या ? छोटे-बड़े सब इन चीजों से क्यों कतराते हैं ?”^{२०}

नग्न दृश्य देखने के बाद उदयन की जातीय वृत्तियाँ जागृत होती हैं । बहुत कम उम्र में बाल सखी सुनंदा के स्पर्श से वह रोमांचित हो जाता है । “सुनंदा मेरे

अधरोष्ठ पर अपनी अंगुली धीरे-धीरे फेरती जा रही थी । उसने कब झटके से मेरे ओठ चुमे तथा अपने बिस्तर पर भागकर मुँह फेर लेट गयी मैं समझ नहीं सका । मैं बड़ी देर तक सोचता रहा कि चलू सुनंदा के पलंग पर, चलकर जाऊँ पर हाथ पैरों में बड़ा अजीब ठंडापन लगने लगा ।”^{२१}

उदयन की जातीय वृत्तियाँ उत्तरोत्तर बढ़ने लगीं । विजातीय स्पर्श से असंतुष्ट उदयन अपने से बड़ी उम्र की युवती के प्रति आकर्षित होता है । उदयन महू में रहकर कुछ सवालों के जवाब पाने वाला ही था कि चाचा के साथ महू छोड़कर मालवा आ जाना पड़ा । मालवा में आकर उदयन मेजिस्ट्रेट साहब की बेटी शीला को चाहने लगता है । शीला एक सुशील लड़की थी । शीला ने जब अपी मर्यादा नहीं तोड़ी तो उदयन नौकरानी की विधवा युवान बेटी कावेरी के प्रति आकर्षित होता है । उदयन ने जब सुनंदा से पूछा था कि स्त्री क्या है ? तो सुनंदा ने आधा-अधूरा उत्तर देकर टाल दिया था परंतु कावेरी ने तो उदयन से शरीर संबंध स्थापित करके स्त्री शरीर का पूर्ण रहस्य उद्घाटित कर दिया । समय गुजरते कावेरी हरनामसिंह पहेरेदार के साथ भाग जाती है । उदयन फिर प्रश्नों से घिर जाता है । वह सोचता है कि -“कावेरी नारी देह का रहस्य मेरे निकट जीवनभर के लिए उद्घाटित करके कहीं चली गयी । स्त्री क्या होती है? का जो उत्तर कावेरी ने दिया क्या सभी स्त्रियों के पास यही उत्तर होगा ।”^{२२}

उदयन को ‘क्या सभी स्त्रियों के पास यही उत्तर होगा’ वाले प्रश्ना का पूर्ण समाधान नहीं मिला । परिणामस्वरूप उदयन अपने स्कूल के दोस्त इन्द्रमल जैन की परित्यक्ता किरणदीदी के मोहपाश में बंध जाता है । किरणदीदी संयमी एवं धार्मिकवृत्तिवाली औरत थी । वह अपनी सीमा और मर्यादा का पालन करती न खुद भटकती है और न उदयन को भटकने का मौका देती है, बल्कि उदयन को उसकी मर्यादा का एहसास करवाकर उसके पूरे जीवन पथ को बदल देती है।

उपन्यास के अंत में आवारा, घुमक्कड़ एवं जातीयवृत्ति से ग्रस्त उदयन का पुनःजन्म होता है। उदयन लघुताग्रंथि तथा पापग्रंथि से ऊपर उठकर स्वयं देशसेवा

के लिए तैयार होता है।

नरेश जी ने उदयन की गाँव की स्मृतियों को चित्रित करने के लिए परोक्ष शैली का प्रयोग किया है। उदयन के मन में पूरा का पूरा गाँव का संसार जीवंत है। उदयन गाँव की गलियाँ, चौराहे, दुकान, दोस्त, परिवार तथा रिश्तेदारों को भूला नहीं है। दूसरी तरफ महु के शहरी वर्ग के चित्रण में नरेश जी ने प्रत्यक्ष शैली का प्रयोग किया है। इसमें वर्तमान संसार है जिसका उदयन साक्षी बनता है। उपन्यास में उदयन कई प्रकार की मानसिक उधेड़बुन का सामना करता है। उपन्यास की मुख्य कथा में उदयन की जिज्ञासा तथा कूतुहल से प्रेरित बालसहज पराक्रम तथा साहस है, साथ-साथ चाचाजी द्वारा थोपे गये संस्कारों का तीव्र विरोध है। नरेश जी ने उदयन के जीवन के साथ-साथ नष्ट हो चुके राजाओं का ऐयाशीपूर्ण जीवन, खंडहर हो चुकी हवेलियाँ के भीतर बंद राजा-महाराजा की क्रूरता, उनके अनैतिक संबंध, प्रेम आदि अनगिनत दबी बातों के पृष्ठ खोलकर रख दिए हैं।

इस उपन्यास पर अपने विचार प्रकट करते हुए डॉ. सुरेश जी ने लिखा है कि -“उदयन के माध्यम से या प्रसंग से उदयन के अन्तर्मन में प्रवेश करती है, चाहे पूरी कथाएँ न हो, टूटी हुई हो। यही इस उपन्यास को कलात्मक, वैशिष्ट्य प्रदान करता है। यह खंडित चित्रों की कथा है जिसमें कथात्मक एकता का अभाव है। स्मृतियाँ संयोग साहचर्य से पूर्वदीप्त के माध्यम से ही सारा संयोजन हुआ है। इसकी वैचारिक व्याख्या से कथा प्रवाह में अवरोध अवश्य उपस्थित होता है।”²³

(६) प्रथम फाल्गुन :

‘नदी यशस्वी है’ के पश्चात् नरेश जी का यह ‘प्रथम फाल्गुन’ उपन्यास ई.सन् १९६८ में प्रकाशित हुआ। इसमें बहुपत्नीत्व, नाज़ायज संतान तथा निष्फल प्रेम की समस्या को चित्रित किया गया है।

‘प्रथम फाल्गुन’ नरेश जी के अन्य उपन्यासों की तुलना में बिल्कुल नवीन है। इस उपन्यास की नायिका ‘गोपा’, ‘डूबते मस्तूल’ की रंजना की तरह न अधःपतन का मार्ग अपनाती है और न ‘दो एकान्त’ की वानीरा की तरह घुट-घुट कर अपना

जीवन जीती है । गोपा नखशीख गांधीयुगीन स्त्री का प्रतिनिधित्व करती है । रंजना और वानीरा की तरह गोप अपने प्रेमी पुरुष को बदलती नहीं बल्कि प्रेम में निष्फलता मिलने पर भौतिकता से दूर सादगीपूर्ण जीवन बीता देती है ।

‘प्रथम फाल्गुन’ की कथा अवकाश प्राप्त जज सौरिन्द्रनाथ उर्फ नाथबाबू के परिवार से संबंधित है । नाथबाबू लखनऊ के सबसे प्रतिष्ठित एवं प्रसिद्ध व्यक्ति थे । सार्वजनिक वाचनालय, कॉलेज तथा नगरपालिका जैसे संस्थान के चेयरमेन पद पर रह चुके नाथबाबू की गिनती लखनऊ के कुलीन भद्रवर्ग में होती थी । नाथबाबू की शादी हुए पाँच साल हो गये थे, परंतु अभी तक पिता नहीं बन पाये थे । परिणामस्वरूप नाथबाबू ने दूसरी शादी करने का फैसला किया । नसीब की बलिहारी कहें या संजोग, नाथबाबू की दूसरी शादी के दिन ही प्रथम पत्नी श्रीमती नाथ पुत्री गोपा को जन्म देती है । नाथबाबू ने दोनों परिवार के लिए अलग घर की व्यवस्था की थी । उसकी पैतृक कोठी वृंदाधाम में श्रीमती नाथ और गोपा रहते थे और नववृंदा नामक बंगले में नाथबाबू की दूसरी पत्नी और उसकी संतान रहने लगे । नाथबाबू जानते थे कि गोपा उसकी संतान नहीं है फिर भी वे आजीवन गोपा के पिता के रूप में अपना कर्तव्य निभाते रहें । नाथबाबू दोनों परिवार के बीच आजीवन बंटे रहे । दो-दो परिवार होते हुए भी वे एकाकी रह गये, क्योंकि दोनों परिवार में अपनी कोई स्थायी जगह न बना पाये ।

लेखक ने आरंभ में कुछ पृष्ठों में सौरिन्द्रनाथ के वैभवी जीवन का उल्लेख करके कथा को दूसरी तरफ मोड़ दिया है । इस प्रकार सौरिन्द्रनाथ द्वारा उठायी गई बहुपत्नीत्व की समस्या गौण बन जाती है और नाजायज संतान का बोझ ढोनेवाली गोपा की व्यथा प्रमुख बन जाती है ।

श्रीमती नाथ समाज का लांछन तथा पति की उपेक्षा सहती हुई अपनी बेटी गोपा को एम.एस.सी तक पढ़ाती है । गोप पढ़ने में तेज थी । उसने गोल्ड मेडल प्राप्त कर कॉलेज में डेमोस्ट्रेटर की नौकरी स्वीकार ली । गोपा अब काफी समझदार और शादी के लायक बन गयी । गोपा के जन्मदिन पर एक जलसे का आयोजन

किया जाता है जिसमें गोपा की मुलाकात चित्रकार महिम से होती है । प्रथम मुलाकात में ही दोनों एक-दूसरे को पसंद करने लगे । गोपा शादी पूर्व अपने जन्म संबंधी घटना को महिम के सामने स्पष्ट कर देना चाहती है । वे किसी भी घटना को छिपाकर महिम को अंधेरे में रखना नहीं चाहती । गोपा ने अपने नाजायज़ जन्म संबंधी घटना का उल्लेख महिम के सामने कर दिया । महिम को जब इस बात का पता चला तो समाज भीरु एवं स्वयं को आदर्श कलाकार माननेवाला महिम गोपा के व्यक्तित्व को स्वीकार नहीं कर सका । महिम गोपा से मुँह मोड़ लेता है । महिम गोपा की याद में झूरने लगता है, जब वियोग सहा न गया, तब महिम शराब पीने लगा और कोठे पर जाने लगा । महिम अपने से बड़ी उम्र की श्रीमती लीलासाहनी नामकी विवाहिता स्त्री के प्रेम जाल में फँसता है । गोपा अपने जीवन में उत्पन्न परिस्थिति से निराश हुए बिना सत्य को स्वीकारती हुई कहती है -“मेरा यह भ्रम था कि अपनी भूमि कभी बदल सकूंगी पर नहीं अब मुझे पूरा विश्वास हो गया है कि चाहे मैं कितना ही कलंक की भूमि पर होऊ लेकिन वह मेरी वास्तविक भूमि है ।”^{२४}

कालान्तर गोपा के पिता की मृत्यु हो जाती है । पति की मृत्यु के पश्चात् श्रीमती नाथ संसार जीवन छोड़कर किसी धार्मिक स्थल पर लोगों की सेवा करने चली जाती है । गोपा भी सांसारिक जीवन भोगने से पूर्व निराश हो चुकी थी । गोपा वैभवी चमक-दमक और भौतिकता को छोड़कर, अपने पिताजी की सारी संपत्ति बेचकर एक फार्म में शिक्षा संस्थान खोलकर सादगीपूर्ण जीवन जीने लगती है ।

उपन्यास के अंत में जीवन की भटकन से थका-हारा, प्रायश्चित में जलता हुआ महिम गोपा के पास आता है, परंतु गोपा प्रेम, शादी, पारिवारिक जीवन आदि बातों से काफी ऊपर उठ चुकी थी । अड़िग, दृढ़ निश्चयी, स्वाभिमानी, दर्दमयी गोपा ‘शैक्षणिक संस्थान में भावुक बातें नहीं होती’ कहकर महिम के साथ अपने रिश्ते की तथा उपन्यास की कथा को विराम देती है ।

प्रेमचंदजी के प्रेमाश्रम, सेवासदन तथा रंगभूमि से समानता रखनेवाले इस उपन्यास में गांधीयुगीन मूल्यों की रक्षा करने का सफल प्रयास किया गया है । नरेश

जी मानते थे कि प्रत्येक व्यक्ति के कुछ पारिवारिक और कुछ राष्ट्रीय मूल्य होते हैं । मूल्यों का जतन करना व्यक्ति का कर्तव्य बनता है । मूल्यों से ही आदर्श समाज और आदर्श व्यक्ति का निर्माण होता है । इस उपन्यास का केन्द्रीय पुरुष पात्र करनी और कथनी में अंतर रखता है । महिम एक आदर्श कलाकार था, परंतु प्रियपात्र के अतीत के अनचाहे पन्ने खुलते ही समाजरूपी रणभूमि छोड़कर कायरों की तरह भाग खड़ा होता है ।

गोपा और सौरिन्द्रनाथ आदर्श का ढींढोरा नहीं पिटते, वे आदर्श को चरितार्थ करके दिखाते हैं । दूसरी शादी करनेवाले सौरिन्द्रनाथ प्रथम पत्नी और पुत्री के प्रति अपनी सामाजिक जिम्मेदारी मृत्यु पर्यन्त निभाते हैं । गोपा भी निष्फल प्रेम से आहत होकर अपने जीवन को कुंठित नहीं करती, किन्तु व्यक्तिगत प्रेम को समष्टि में विलीन कर देती है और नये जीवन की शुरुआत करती है । महिम जीवन से पलायन कर अपने जीवन को बिखेर देता है । महिम का मूल्यवान जीवन नष्ट हो जाता है । गोपा और महिम के चरित्र में गोपा का चरित्र उत्कृष्ट और अनुकरणीय लगता है । नारी होते हुए भी अपने जीवन को टूटने-बिखरने की बजाय नई और प्रेरणादायक विचारों की नींव डालती है ।

‘प्रथम फाल्गुन’ उपन्यास की ज्वलंत समस्या नाजायज़ संतान की है । ‘प्रथम फाल्गुन’ जिस युग में लिखा गया उस युग में बहुपत्नीत्व प्रथा अस्तित्व में थी । आज यह समस्या इतनी गंभीर नहीं है । हाँ ! नाजायज़ संतान की समस्या आधुनिक युग में कई गुना बढ़ गई है । आधुनिकता, स्वतंत्रता या प्रेम के बहाने स्त्री-पुरुष के अनैतिक संबंध बढ़ते जा रहे हैं । बाहर से सभ्य दीखनेवाले लोग वैचारिक रूप से सभ्य नहीं हैं । नाजायज़ संतान की स्थिति एवं व्यथा जो पहले थी, वही आज भी है । इसमें कोई बदलाव नहीं आया । नाथबाबू जानते थे कि गोपा उसकी बेटी नहीं है फिर भी सामाजिकता को बचाने के लिए प्रयत्न करते हैं । ऐसी स्थिति में स्त्री को समाज और पति दोनों की उपेक्षा का सामना करना पड़ता है । नाजायज़ संतान के युवान होने पर शादी-ब्याह में अनेक कठिनाइयाँ आती हैं । उसे न परिवार में

अधिकार मिलता है, न समाज में प्रतिष्ठा । उसका पूरा जीवन तिरस्कृत बन जाता है। वह खुद से ही नफरत करने लगता है ।

महिम के चले जाने के बाद गोपा के पास दो ही रास्ते बचते हैं । पहला आत्महत्या का और दूसरा वेश्या बनने का । नरेश जी नारी सम्मान एवं नारी उत्थान के हिमायती हैं । उन्होंने गोपा को न मरने दिया और न वेश्या बनने के लिए छोड़ दिया बल्कि गोपा को तीसरे मार्ग पर ले जाते हैं । यह तीसरा मार्ग था समष्टि का, सेवा का और आत्मगौरवपूर्ण जीवन का । 'डूबते मस्तूल' की रंजना और 'दो एकान्त' की वानीरा के पास जीवन को कोई स्पष्ट हेतु नहीं था, जबकि गोपा के पास सुनिश्चित दिशा और उज्ज्वल भविष्य था ।

डॉ. विवेकराय इस घटना पर अपनी राय प्रकट करते हुए लिखते हैं कि -
“असफल प्रेम और तिरस्कृत सामाजिकता की प्रक्रिया में प्रायः जहाँ आत्महत्या एक प्रमुख विकल्प होता है, वहाँ इस युग में गांधी ने देश सेवा और समाज सेवा की एक नई जमीन दी। जिस पर खड़ा होते ही संकुचित स्व विराट स्व में मिल जाता है।”^{२५}

‘प्रथम फाल्गुन’ उपन्यास पढ़ने से कोई प्रेमकथा पढ़ने का एहसास होता है। कथा-शिल्प आधुनिक एवं सुगठित है । चरित्रों की मनःस्थिति को उभारने के लिए नरेश जी ने मनोवैज्ञानिकता का सहारा लिया है । इस उपन्यास में वैयक्तिकता और सामाजिकता के बीच का टकराव नज़र आता है । नरेश जी के पात्र भौतिकता को छोड़ सादगीपूर्ण एवं संयमी जीवन को महत्त्व देते हैं । अंत में इतना ही कह सकते हैं कि भारतीय उच्च मूल्यों की रक्षा करना ‘प्रथम फाल्गुन’ उपन्यास का उद्देश्य है ।

(७) उत्तरकथा खंड एक :

नरेश मेहता कृत उत्तरकथा खंड एक और उत्तरकथा खंड दो स्वरूप की दृष्टि से महाकाव्यात्मक उपन्यास है । उत्तरकथा खंड एक सन् - १९८२ में प्रकाशित हुआ । यह नरेश जी का सातवाँ उपन्यास है । उत्तरकथा में द्वितीय विश्वयुद्ध से स्वाधीनता संग्राम तक का भारतीय समाज निरूपित है । उत्तरकथा खंड एक १९०० से १९०३ तक की समयावधि में लिखा गया है, जिसका संबंध मालवा

प्रदेश से जुड़ा है ।

नरेश जी ने खंड एक को क्रमशः आठ भागों में विभाजित किया है -
(१)परिणय प्रकरण (२) वधूत्व प्रकरण (३) प्रशाखा प्रकरण (४) अंतर प्रकरण (५)
बाह्य प्रकरण (६) पल्लव प्रकरण (७) राग प्रकरण (८) इत्यलम प्रकरण ।

उत्तरकथा खंड एक के अंतर्गत १९वीं सदी के मालवा का युगजीवन जीवंत हो उठा है । विशेष ब्राह्मण परिवार के विविध संस्कार, यज्ञोपवित विवाह, त्रयोदशा, श्राद्ध इत्यादि का विस्तृत वर्णन मिलता है । अशिक्षित, अर्धशिक्षित तथा शिक्षित कर्मकांडी बालकों के रीतिरिवाज, विविध अनुष्ठान उत्सवों के वक्त आयोजित बड़े-बड़े भोज, उस वक्त की ब्राह्मणों की भोजनप्रियता, आपसी स्वार्थ राग, द्वेष, ईर्ष्या, पारिवारिक कलह और विविध आर्थिक संकट के सामने संघर्षरत चरित्रों की महानता तथा नीचता के विरोधाभासी चित्र द्वारा मालवा की सामाजिकता का यथार्थ चित्रण मिलता है। उत्तरकथा नरेश मेहता के प्रामाणिक अनुभवों का प्रामाणिक दस्तावेज है।

यह नायिका प्रधान उपन्यास है । इसकी नायिका दुर्गा है । यह नाम मात्र की दुर्गा नहीं है, बल्कि व्यवहार में भी अपनी शक्ति एवं सामर्थ्यता का प्रदर्शन करती है। वह भारतीय नारी का आदर्श रूप है । दुर्गा गरीब ब्राह्मण की बेटी है। उसके पिताजी के पास इतने रुपये नहीं हैं कि ढेर सारा दहेज देकर बेटी को ससुराल भेज सके । दुर्गा भी पिताजी की चिंता से परिचित थी । इस कारण दुर्गा त्र्यम्बक की दूसरी पत्नी बनने के लिए तैयार हो जाती है । दुर्गा शुक्ल परिवार की बहू बनकर मालवा से उज्जैन चली आती है । दुर्गा दुर्भाग्यशाली औरत थी । विवाह के दिन ही हैजे की बीमारी पिताजी और दो भाइयों को मौत के मुख में धकेल देती है । दुर्गा के ससुराल में कदम रखते ही ऐसे झटके लगे कि खुद दुर्गा तय न कर पायी कि वह पिताजी की मौत का मातम मनाये या अपनी शादी की खुशी । दुर्गा के आते ही सास ने रोब जमाना शुरू कर दिया । दुर्गा पर सितम गुजारने में कोई कसर न रखी गई । दुर्गा ने अमानवीय व्यवहार एवं क्रूर यातनाओं को सहते हुए, अपनी सहनशीलता, करुणा, त्याग और क्षमा का परिचय देती है । आखिर शांत और

क्षमाशील व्यक्तित्व से प्रभावित होकर सास को दुर्गा के प्रति सहानुभूति पैदा होती है। उसका हृदय परिवर्तन होता है।

दुर्गा के पारिवारिक संघर्ष के साथ, अन्य कथा में परिवार की व्यथा तथा दर्द चित्रित है। दुर्गा की माँ गोदावरी देवी और भाई शिवशंकर आजीवन पीड़ा, व्यथा और गरीबी में जीने के लिए विवश हैं। पति और दो पुत्र की मौत को हृदय में छिपाकर वह अभिशप्त एकाकी जीवन जीती है। उसका एक मात्र बेटा सांसारिक जीवन से निर्मोही होकर ब्रह्मचारीव्रत धारण करता है। शिवशंकर की दृष्टि में संसार क्षणभंगुर है।

“ऐसे कर्म करो जिजी कि वे कर्म ही बाद में रहे, बड़े से बड़े महल-किल्ले नहीं रहते। बड़े से बड़े राजवंश भी नहीं रहते। यहाँ बहुत रहने की चिंता करनेवाला ही सबसे पहले नहीं रहता है। जिजी सबकुछ भगवान पर छोड़ दो, क्या तुम कर्ता हो यदि कर्ता थी तो दोनों बेटों को, बाबा को क्यों जाने दिया।”^{२६}

उत्तरकथा में आध्यात्मिक जीवन को महत्त्व दिया है। इस उपन्यास के कतिपय पुरुष पात्र बहुपत्नीत्व के युग में भी कुआँरे या विधुर रहकर संयमित जीवन जीते नज़र आते हैं। शिवशंकर के बाद ऐसे ही वितरागी व्यक्ति पंडित आनंदशंकर हैं। उसकी पत्नी युवावस्था में क्षयरोग का भोग बनती है। वे आधी जिंदगी उसकी सेवा में बिताते हैं। प्रौढ़ावस्था में युवान पुत्र की हत्या हो जाती है और विधवा पुत्रवधू तथा पौत्र-पौत्री की जिम्मेदारी पंडित आनंदशंकर पर आ जाती है। इतने बड़े हादसे के बावजूद भी वह विचलित हुए बिना अपने धर्म को निभाते हैं। पंडित उत्सवलालजी ऐसी ही समस्या के शिकार हैं। उसकी पत्नी की मौत पागल कुत्ते के काटने से हुई है। वे दारुण गरीबी के बीच अपने पाँच साल के बेटे को पालने के लिए विवश हैं। बेटे की खातिर दूसरी शादी भी नहीं कर सकते।

प्रस्तुत उपन्यास में जहाँ कर्तव्यनिष्ठ और संयमी पात्र हैं, वहाँ कुसंस्कारी, आरोपी तथा स्वार्थी पात्र भी हैं। कृष्णादेवी की भाभी स्वार्थी स्त्री है। उसका बेटा विशु बुआ कृष्णादेवी के इशारे पर अपनी भाभी दुर्गा पर बलात्कार करने का प्रयास

करता है। फून्दीलाल तथा महादेव शुक्ल की हत्या के जुर्म में बिशु को फांसी होती है।

नरेश जी ने सद् और असदवृत्तिवाले पात्रों के साथ संपत्ति के नशे में ऐयारी एवं विलासी जीवन जीनेवाले चरित्रों को भी विकसित किया है। उच्च धनिक वर्ग के मनोहरलाल उपाध्याय उर्फ कामदार साहब विलासी जीवन के आग्रही हैं। वे शराब और सुंदरी के शौकीन हैं। वह अपनी सौन्दर्यशालिनी पत्नी गायत्रीदेवी को छोड़कर कमला नामक वेश्या को पत्नी बनाते हैं। कमला का भाई निकम्मा एवं लालची स्वभाव का है। उसकी नज़र कामदार साहब की संपत्ति पर टिकी हुई थी। एक दिन मौका पाकर उसने अपने बहन और बहनोई की हत्या कर दी। दूसरी ओर निर्धन गायत्रीदेवी उपेक्षिता जीवन जीने के लिए विवश हो जाती है। गायत्रीदेवी स्त्रीसहज कामनाओं का दमन करके ईश्वर भक्ति में अपना जीवन बिताना चाहती हैं, परंतु प्रौढ़ावस्था का अकेलापन उसे शिवशंकर का सहारा लेने के लिए प्रेरित करता है। गायत्रीदेवी का संग पाकर नारी प्रेम से वंचित ब्रह्मचारी शिवशंकर का तप टूट गया। शिवशंकर ने गायत्रीदेवी के साथ अपने संबंध का इकरार करते हुए कहा कि -“माँ दुर्गा या गोविंद के संबंधों की तो भाषा दी जा सकती है, परंतु जिस अनात्म आत्मीयता को तुम में पाया उसे भाषा से अभिव्यक्त किया ही नहीं जा सकता, तुम्हें प्राप्त नहीं किया जा सकता परंतु तुम्हारे द्वारा आज प्राप्ति का परम सुख और आस्वाद मिला। गायत्री विश्वास करो संसार में आना सफल हो गया।”^{२७}

नरेश जी ने गायत्री और शिवशंकर के बीच आत्मिक प्रेम की स्थापना की है। वे दोनों मार्ग से विचलित हुए बिना अपना जीवन जीते हैं। उत्तरकथा खंड एक के अंत में गोदावरी देवी की मृत्यु हो जाती है। शिवशंकर दत्तक पुत्र गोविंद की जिम्मेदारी दुर्गा को सौंपकर चारधाम की यात्रा के लिए निकल पड़ते हैं।

(८) उत्तरकथा खंड दो (१९८४) :

नरेश जी ने उत्तरकथा खंड एक के पश्चात् तुरंत दो साल में उत्तरकथा खंड दो सन् - १९८४ में प्रकाशित करवाया। प्रथम खंड की तरह दूसरे खंड को भी छः

प्रकरणों में विभाजित किया है - (१) उत्तरोत्तर प्रकरण (२) जागरण प्रकरण (३) कौटुम्बिक प्रकरण (४) परिवर्तन प्रकरण (५) समाहार प्रकरण (६) निर्वेद प्रकरण ।

इस उपन्यास में महात्मा गांधी प्रेरित १९४२ के स्वतंत्रता आंदोलन से लेकर भारत-पाकिस्तान का बंटवारा तथा गांधीजी की मृत्यु तक की कथा वर्णित है । नरेश जी ने स्वतंत्रतायुगीन धार्मिक, सामाजिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक प्रवृत्तियों का विशद वर्णन किया है । उत्तरकथा खंड दो व्यापक फलक पर लिखा गया बृहत् उपन्यास है । इस दूसरे खंड में प्रथम खंड के त्र्यम्बक के पिताजी की सौतेली माँ, त्र्यम्बक के फूफा, गायत्री देवी, सविता जी तथा दुर्गा जैसे अनेक नामी-अनामी पात्रों की मौत दिखाकर उनसे संबंधित कथा को विराम दिया है ।

उत्तरकथा खंड दो की शुरुआत त्र्यम्बक के मनोमंथन के साथ होती है । प्रिय पात्रों की मौत तथा दुःखद स्मृतियों के कारण त्र्यम्बक को सांसारिक जीवन से वैराग्य हो जाता है । उसका मन बार-बार स्वयं को प्रश्न करता है कि आखिर संसार मनुष्य को क्या देता है ? त्र्यम्बक के विचार में कहें तो -“गृहस्थी की झंझट और जिम्मेदारी मनुष्य को क्या-क्या काम नहीं करवाती । आखिर व्यक्ति का प्रयोजन क्या ? गृहस्थी, जमीन, जायदाद, लौकिक वासना तो बहुत अच्छा लगता है । व्यक्ति को ये सारी चीजें एक सामाजिक प्रतिष्ठा, मान-सम्मान एवं विशिष्टता भी देती है, बल्कि कहना चाहिए यह अमानवीयता है, वे किसी भी संस्कारी मानस को अन्तरमन तक पीड़ा, दुःख और संत्रास ही देती है ।”^{२८}

इस उपन्यास के पात्र सामान्य तथा मानव सहज वृत्तियों के शिकार हैं । इसमें जहाँ करुणा, त्याग, दया, प्रेम तथा बलिदान की भावना विद्यमान हैं, वहाँ उसमें द्वेष, क्रोध तथा बदले की भावना भरी हुई है । प्रमुख कथा उपन्यास के मध्यभाग तक पहुँचते-पहुँचते बिलकुल शिथिल पड़ जाती है । कभी कभी ऐसा महसूस होता है कि मुख्य कथा पर दूसरी कथा हावी हो गई हो । उत्तरोत्तर प्रकरण में गांधीजी के अहिंसक विचारों को स्थापित किया गया है । त्र्यम्बक एवं दुर्गा की नयी युवा पीढ़ी गांधी विचारों से काफी प्रभावित हैं । इन दोनों के चारों बेटे राष्ट्रीय

आंदोलन में सक्रिय रूप से भाग लेते नज़र आते हैं ।

जागरण प्रकरण में १९४२ के आसपास की गतिविधियों को चित्रित किया है । उस वक्त उज्जैन में गोपाल मंदिर का चौक और जनरल लायब्रेरी समग्र गतिविधियों का केन्द्र थी । पूरा मालवा क्षेत्र 'ब्रह्म समाज', 'आर्य समाज' और 'प्रार्थना समाज' से प्रभावित था । समग्र देश में महात्मा गांधी, लोकमान्य तिलक, स्वामी दयानंद सरस्वती, स्वामी रामतीर्थ, स्वामी विवेकानंद आदि के नाम गूंज रहे थे । गांधीजी का असहयोग तथा नमक आंदोलन चल रहा था । वे देशवासियों को चरखा तथा खादी का महत्त्व समझा रहे थे । गांधीजी देश की स्वतंत्रता के लिए आये दिन सत्याग्रह करते, जेलयात्रा करते, स्वदेशी चीजों का महत्त्व समझाते तथा विदेशी कपड़ों की होली करते थे । गांधीजी अहिंसा के पुजारी थे । गांधीजी का शस्त्र था - अहिंसा जबकि भगतसिंह, सुखदेव एवं राज्यगुरु जैसे क्रांतिकारी युवक हिंसा के पुजारी थे ।

मैथिलीशरण गुप्त तथा माखनलाल चतुर्वेदी जैसे राष्ट्रीय कवि अपनी कविताओं के माध्यम से लोगों में चेतना जगा रहे थे । साहित्य के क्षेत्र में छायावादी कवि पंत, प्रसाद, निराला एवं वर्मा की विशेष प्रतिष्ठा थी । प्रेमचंदजी कहानीकार के रूप में काफी प्रसिद्ध हो चुके थे । प्रेमचंदजी की भाषा अंग्रेज सरकार के खिलाफ तेजाब उगल रही थी । लोग बंगाल के महान साहित्यकार बंकिमबाबू, शरदबाबू तथा रवीन्द्रनाथ को पढ़ते थे । टैगोर की गीतांजली को पुरस्कार मिलने पर पूरा देश गौरान्वित हुआ । संगीत तथा नृत्य के क्षेत्र में फैयाजखान, ओंकारनाथ, अलाऊद्दीनखान, अवतीन्द्रनाथ ठाकुर, नंदलाल और उदयशंकर के पीछे लोग दीवाने थे । उस समय रविशंकर महाराज का भी समाज पर काफी प्रभाव था ।

उज्जैन में साहित्यिक गतिविधियाँ भी चल रही थी । यहाँ साहित्य रसिकों की संख्या पर्याप्त मात्रा में थी । उस समय माखनलाल चतुर्वेदी की 'कर्मवीर' पत्रिका अति प्रसिद्ध थी । वाणी कल्पतरु, कल्पवृक्ष, सरस्वती, चांद, मोर्डन रिव्यू, विशाल भारत जैसी पत्रिकाएँ आमवर्ग में पढ़ी जाती थीं । 'अमरिका भ्रमण' तथा 'जर्मन जागरण का बिगुल' किताबों की बोलबाला थी । छोटे-बड़े जमींदार, राजा-महाराजा,

पढ़े-लिखे बुद्धिजीवी लोग विदेशी चीजों का इस्तमाल करते थे । विदेशी जूते और कपड़ों की फैशन थी । लेखक ने इन छोटी-बड़ी, सूक्ष्म बातों को हूबहू चित्रित किया है । वातावरण का विस्तृत वर्णन करते समय नरेश जी पारिवारिक कथा को मानो भूल गये हो ऐसा लगता है । एक समय पर हमें लगता है कि हम पारिवारिक नहीं किन्तु राजनीतिक उपन्यास पढ़ रहे हैं ।

उपन्यास के उत्तरार्ध में राजनीति से जुड़े पात्रों का आगमन होता है । इन पात्रों में बड़े-बड़े कांग्रेसी नेता, सामान्य कार्यकर्ता, कवि, चित्रकार, वकील, प्रोफेसर्स इत्यादि हैं । इनमें से काफी लोग रावलजी, विजयवर्ग जी, कम्युनिस्ट नटवरलाल, जोशी, वासुदेव, बसंतदेव लोलीकर तन, मन, धन से राष्ट्र को समर्पित थे । उज्जैन में युवराज लायब्रेरी के पास कांग्रेसी कार्यालय, हरिजन सेवक संघ तथा चरखा संघ का दफ्तर था, जहाँ से राजनीतिक गतिविधियों का संचालन होता था । युनियन की हड़ताल में मजदूरों का साथ देना, धरणे पर बैठना, प्रभात फेरी निकालना, खादी का प्रचार-प्रसार करना इन लोगों का मुख्य कार्य था । ये तमाम पात्र सार्वजनिक सभी में तथा कांग्रेस अधिवेशन में हिस्सा लेते हैं । गांधी जयंती के दिन 'वंदे मातरम्' का गीत गाते हुए, 'चरखा चला के, लेके स्वराज्य प्यारा' के नारे लगाते लोगों के घर जाते थे । लोगों को स्वदेशी चीजों के इस्तमाल के लिए समझाते थे और विदेशी कपड़े नहीं पहनने की सौगंद दिलवाते थे । इस अभियान में गांधीवादी और कम्युनिस्ट दोनों जुड़े हुए थे । स्वतंत्रता आंदोलन में सभी दल एक होकर अपनी ताकत का प्रदर्शन कर रहे थे ।

उपन्यास के अंत में कथा शीघ्र आगे बढ़ती है । देश में उत्पन्न परिस्थिति का संक्षिप्त वर्णन करते हुए नरेश जी आगे बढ़ जाते हैं । उत्तरार्ध के अंतिम पृष्ठों में गांधीजी द्वारा आयोजित हड़ताल, सत्याग्रह, धरणा, जेल भरो आंदोलन इत्यादि का वर्णन किया है । गांधीजी की गिरफ्तारी के बाद गिरधर ठक्कर लोगों में उत्साह भरने हेतु भाषण देते हुए कहता है कि - "सरकार न चले इसके लिए जो भी, जैसा भी काम करना पड़े करना होगा । इस आंदोलन में हिंसा-अहिंसा का प्रश्न नहीं है ।

यह सत्याग्रह भी नहीं है, बल्कि एक प्रकार से अब देश को दुराग्रह ही करना होगा। देश हमारा है तो सरकार भी हमारी ही होनी चाहिए।^{२९}

उपन्यास के अंत में अपने कुटुम्ब के लिए सर्वस्व होम करनेवाली दुर्गा तथा देश को आज़ादी दिलानेवाले महात्मा गांधी की मृत्यु हो जाती है। एक तरफ दुर्गा का परिवार बिखर जाता है, तो दूसरी तरफ गांधी का हिन्दुस्तान। अखण्ड हिन्दुस्तान भारत-पाकिस्तान के रूप में विभक्त हो जाता है। बंटवारे के प्रतिघात स्वरूप पूरा देश रक्तंजित हो गया। दंगे-फसाद, खून-हत्याएँ, लुट, आगजनी, अराजकता आदि घटनाओं ने देश की शांति भंग कर दी। गांधी मूल्यों के संरक्षक द्वारा ही हिंसा फैलायी गयी और गांधी मूल्यों की सरेआम हाँसी उड़ायी गयी। बंटवारे के दौरान हुए दंगों में दुर्गा का सबसे छोटा बेटा चन्द्रशेखर मारा जाता है। दुर्गा पुत्र की मृत्यु का आघात सह नहीं पायी और अंत में उसकी भी मौत हो जाती है।

गांधीजी के मूल्य चिरस्थायी हैं। वह समय के साथ न बदले हैं और न मृतःप्राय हुए हैं। उपन्यास के अंत में गांधीजी के विचारों को जन-जन तक पहुँचाने तथा भोली ग्रामीण जनता की सेवा करने गोविंद-गोरा और उसका बेटा गाँव की ओर निकल पड़ते हैं।

उत्तरकथा दुःखी एवं अभावग्रस्त जीवन जीनेवाले व्यक्तियों की खामोश व्यथा की कथा है। नरेश जी ने संयुक्त परिवार की आपसी फूट, स्वार्थ, झगड़े आदि के साथ स्वतंत्रता युगीन परिवारों की अवदशा को निरूपित किया है। नरेश जी ने कुछ पात्रों पर गांधी विचार का प्रभाव बताया है, तो कुछ इसे चोचले मानकर भोग-विलास के बीच ऐश्वर्यपूर्ण जीवन जीते हैं। पात्रों की अधिकता और छोटी-छोटी कथाओं की भरमार पाठक को उलझन में डालती है। कभी पारिवारिक संघर्ष तो कभी राजनीतिक उथल-पुथल लेखक का एक कथा में से दूसरी कथा पर चले जाना कथा-प्रवाह में बाधा पहुँचाता है। फिर भी काव्यात्मक भाववाही भाषा, जीवंत शब्दचित्र, सक्षम चरित्र और महान उद्देश्य के कारण उपन्यास श्रेष्ठ बन पाया है।

नरेश जी ने मानव धर्म को श्रेष्ठ बताया है। असदवृत्ति को छोड़कर सदवृत्ति

अपनानी चाहिए । अविरत कर्म ही जीवन है, धर्म है । आदर्शविहीन जीवन व्यर्थ है । व्यक्ति को अपने स्वार्थ के लिए नहीं बल्कि देश के लिए भी होम होना है । नरेश जी का मानना था कि पृथ्वी पर जन्म धारण करनेवाले प्रत्येक व्यक्ति को मूल्य चुकाना पड़ता है ।

“दुर्गा, त्र्यम्बक, शुक्ल जैसे अनाम, साधारण जन, बिना नामवाले ग्रामीण नालों से इस धरती पर छोटी-छोटी यात्राएँ कर अपने से बड़े में विलीन हो जाते हैं । तो गांधी जैसे परम ख्यातनाम नामधारी जल बनकर अपनी यात्रा में अनेक की यात्राएँ समेटकर जोड़कर अगत्या समुद्र तक पहुँचकर स्वयं महासागरत्व प्राप्त कर लेते हैं परंतु संसार मूल्य मांगता है । प्रतिश्रुति चाहता है । प्रत्येक ऐसी परिणति अग्नि के दहकते अंगारों पर से चलकर ही प्राप्त होती है । परिणति चाहे घर परिवार वाली दुर्गा की, त्र्यम्बक की हो या मानव समाज व्यापी गांधी की हो ।”³⁰

उत्तरकथा खंड दो में श्रीराम वर्मा अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखते हैं कि –“उत्तरकथा को पढ़ते हुए महसूस होता है कि जैसे लेखक लूसिए गोल्डमान के उत्पत्तिमूलक संघटनात्मक समाजशास्त्र के सहारे पुराने मालवा के खौफनाक अंधेरे को एक विशिष्ट सामाजिक स्थिति में एक निश्चित वरण की अनिवार्यता का सामना करते हुए उभार रहा है और उजाले में समस्याओं की एक श्रृंखला प्रस्तुत करते हुए आलोचनात्मक चित्र और चरित्र उकेरते हुए सार्थक समाधान की संभावना तक आना चाहता है ।”³¹

वर्णनात्मकता की अतिशयता, पात्रों की भरमार, छोटी-बड़ी सैकड़ों कथाएँ फिर भी काव्यात्मक भाववाही भाषा, जीवंत शब्द चरित्र, सक्षम चरित्र और महान उद्देश्य के कारण उत्तरकथा खंड-। और खंड-।। को श्रेष्ठ श्रेणी के उपन्यासों में से एक है ।

अंत में इतना ही कहा जा सकता है कि महाकाव्यात्मक उपन्यासों की परंपरा में उत्तरकथा एक मूल्यवान दस्तावेज है ।

: संदर्भ :

क्रम	कृति, लेखक	पृ.क्रमांक
१.	आधुनिक हिन्दी उपन्यास : उद्भव और विकास - डॉ. बेचैन	२१८
२.	डूबते मस्तूल एक ओर भूमिका से - नरेश मेहता	९
३.	---- वही ---	१०
४.	---- वही ---	१००
५.	---- वही ---	१६०
६.	---- वही ---	१८४
७.	हिन्दी उपन्यास : एक सर्वेक्षण, महेन्द्र चतुर्वेदी	२१८
८.	आधुनिक हिन्दी उपन्यास : उद्भव और विकास, डॉ. बेचैन	२६८
९.	यह पथ बन्धु था, नरेश मेहता	
१०.	---- वही ---	४७१
११.	---- वही ---	५६७
१२.	---- वही ---	५७३
१३.	यह पथ बंधु था - कृति की भूमिका में से, नरेश मेहता	
१४.	यह पथ बंधु था, नरेश मेहता	५७३
१५.	धूमकेतु एक श्रुति, नरेश मेहता	२९८
१६.	हिन्दी उपन्यास : उत्तरशती की उपलब्धियाँ, डॉ. विवेकीराय	१२९
१७.	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास में मानव मूल्य और उपलब्धियाँ, डॉ.भगीरथ बड़ोले	१०७
१८.	द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास, लक्ष्मीसागर वाष्णीय	९८
१९.	नदी यशस्वी है, नरेश मेहता, उपन्यास के मुखपृष्ठ के पिछले हिस्से से	
२०.	नदी यशस्वी है, नरेश मेहता	१३५
२१.	---- वही ---	१४७
२२.	---- वही ---	१६७
२३.	हिन्दी उपन्यास, डॉ. सुरेश सिन्हा	३४७

क्रम	कृति, लेखक	पृ.क्रमांक
२४.	प्रथम फाल्गुन, नरेश मेहता	२३१
२५.	समकालीन हिन्दी उपन्यास, डॉ. विवेकीराय	१५९
२६.	उत्तरकथा खंड-१, नरेश मेहता	१३०
२७.	---- वही ---	५११
२८.	उत्तरकथा खंड-११, नरेश मेहता	४५
२९.	---- वही ---	४८५
३०.	---- वही ---	५०५
३१.	उत्तरकथा खंड-११, नरेश मेहता - मुखपृष्ठ के पिछले हिस्से से	

अध्याय - ४

नरेश मेहता के उपन्यासों की चरित्र सृष्टि

(क) प्रमुख नारी पात्र

- (1) असामान्य, व्यक्तिवादी, अनिष्ट सुंदरी रंजना (डूबते मस्तूल)
- (2) वैवाहिक मूल्यों का विद्रोह करनेवाली भोगवादी स्वतंत्र नारी वानीरा (दो एकान्त)
- (3) नाजायज बोझ से अभिशप्त, एकनिष्ठ प्रिया गांधीयुगीन नारी का आदर्श रूप - गोपा (प्रथम फाल्गुन)
- (4) परंपरित आदर्श भारतीय नारी का मंगलमयी रूप सरो उर्फ सरस्वती (यह पथ बन्धु था)
- (5) नारी अस्मिता का प्रतिनिधि पात्र - दुर्गा (उत्तर कथा खंड- I - II)

(ख) प्रमुख पुरुष पात्र

- (1) तरंगी बातुनी दिवास्वप्नशील स्वामीनाथन उर्फ अकलंक (डूबते मस्तूल)
- (2) आस्था और विश्वास की साकार मूर्ति, आधुनिक युग का विभागीय व्यक्तित्व डॉ. विवेक (दो एकान्त)
- (3) खोखले और दंभी आदर्शों का प्रतिनिधि समाजभीरु पलायनवादी - महिम (प्रथम फाल्गुन)
- (4) मध्यमवर्गीय ईमानदार प्रामाणिक आदर्श शिक्षक पथ बन्धु - श्रीधर (यह पथ बन्धु था)
- (5) आत्मपीड़न तथा दायित्ववहन का करुणा विचलित रूप-शिवशंकर (उत्तर कथा खंड- I, II)
- (6) मातृस्नेह से वंचित बालक उदयन (धुमकेतु एक श्रुति)
- (7) संवेदनशील आवारा उदंड विद्रोही किशोर उदयन (नदी यशस्वी है)

असामान्य व्यक्तिवादी अनिद्य सुंदरी रंजना : (डूबते मस्तूल)

प्राचीन भारतीय संस्कृति की परंपरा अनुसार समाज को सबसे ज्यादा एहमियत दी गई जबकि व्यक्ति को गौण मानकर उपेक्षित किया गया । वर्तमान समय में परंपरित मूल्यों में काफी बदलाव आता है । व्यक्ति ने अपने अधिकार एवं स्वतंत्र जीवन के लिए समाज और परिवार के सामने विद्रोह किया है ।

नरेश जी के उपन्यास में उपर्युक्त दोनों विचारधारा को पुष्ट करने वाले पात्र मौजूद हैं। एक जो भारतीय संस्कृति की रक्षा के लिए अपने जीवन को भी दाँव पर लगाने वाले, तो दूसरी तरफ व्यक्तिमत्ता के समर्थक विद्रोही नारी पात्र भी है।

‘डूबते मस्तूल’ उपन्यास की नायिका रंजना असामान्य व्यक्तिवादी चरित्र है। मनोविज्ञान की परिभाषा में उनका चरित्र बिलकुल ठीक बैठता है । ऐसे पात्र व्यक्ति और उसके अहं की सत्ता का स्वीकार करके समाज का तिरस्कार करते हैं। उन्हें सामाजिक मान्यताओं में आस्था नहीं होती । उनकी अपनी स्वतंत्र विचारधारा होती है जिसमें उसे किसी भी कर्म के प्रति ग्लानि नहीं होती । वे अहम् केन्द्रित आत्मविश्वासी, चिंतनशील प्राणी होते हैं । ऐसे पात्र प्रेम, विवाह और सेक्स के बारे में अपनी निजी धारा बनाकर सामाजिक व्यवस्था और नैतिकता की उपेक्षा करते हैं । जिससे कभी-कभी अस्वस्थ सामाजिक वातावरण का निर्माण भी हो जाता है ।

व्यक्तिवादी और असामान्य पात्र सामाजिक एवं पारिवारिक ढाँचे में स्वयं को व्यवस्थित नहीं कर पाते। इस परिस्थिति में उनका सामाजिक जीवन बिखर जाता है। उनका आचार-विचार असामान्य प्रतीत होता है। मनोवैज्ञानिकों ने असामान्य चरित्र के कुछ वर्ग निर्धारित किए हैं, जिसके अंतर्गत (1) कुंठाग्रस्त चरित्र (2) अहमग्रस्त चरित्र (3) यौन विकृत चरित्र ।

उपर्युक्त परिभाषा और लक्षणों को ध्यान में रखकर रंजना के चरित्र का सूक्ष्म अध्ययन पर यह फलित होता है कि रंजना असामान्य व्यक्तिवादी चरित्र की कोटि में आती है ।

रंजना का प्रथम परिचय पूर्वदीप्ति प्रणाली से होता है, जहाँ रंजना प्रौढ़ावस्था

के दिन अपने दो कुत्ते के साथ लखनौ में बिता रही है । अपने मित्र का घर समझकर घुसे स्वामीनाथन को रंजना अपना पूर्व प्रेमी मानकर उसके जीवन की दर्दिल कथा सुनाती है ।

प्रौढ़ावस्था में भी रंजना ने अपना शरीर काफी चुस्त और मोहक बना रखा है । वह स्वतंत्र और हँसमुख औरत है । गोरा रंग, दक्षिणी ढंग की साड़ी, केल की तरह चिकनी बांहें, गोरी नाक, तराशे हुए होठ, सुंदर गाल तथा चीकनी ठोड़ी, हँसती हुई आँखें, बाक्कट घुँघराले बाल, एक हाथ में रिस्टवॉच, दूसरे हाथ में कंगन, गले में मोतियों की माला, चमेली के फूल की तरह कान में पहने हुए टोप्स तथा पाँव में चप्पल देखकर कोई भी कह सकता है कि युवा-वस्था में रंजना अत्यन्त सुंदर होगी ।

रंजना गरीब व्यापारी बाप की बेटी थी, फिर भी दिवास्वप्न में राचती थी । रंजना तेरह साल की उम्र में ही सैयद नामक लड़के के प्रेम में पड़कर राजमहल में जाने के सपने देखने लगी थी ।

“.... और मैं किसी पहाड़ी पर चांदनी रात में बैठकर सोचती कि कहीं से ऐसा कोई आ जाता जिसकी मोटी-मोटी मांसल बाँहों में अपने को एकदम ढीला छोड़कर बहुत प्रसन्न हो पाती । वह मुझे इतने पैसे, इतने बड़े महल और इतने नौकरों से घेर देता कि किसी सरदार को भी देखने को नसीब न होता ।”¹

इसी सपने को पूरा करने रंजना सैयद के साथ भाग जाती है और जश्न की रात सैयद को अपना सब कुछ सौंप देती है । साहसी रंजना घोड़े पर सवार होकर अफगान की पहाड़ियों से गुजरती हुई सपनों की दुनिया में खो जाती है ।

“मुझे लग रहा था कि लाखों लोग सैयद और मेरे स्वागत में खड़े हैं । मैं मलिका थी और दूर-दूर तक भूरी छितरी सूनसान दिखाई पड़नेवाली धरती मेरी मिलिकियत-सी लग रही थी ।”²

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक हुंग दिवास्वप्न के बारे में कहते हैं कि -“दिवास्वप्न कल्पना से उत्पन्न होते हैं । इसके द्वारा अहंकार मूलक लालसा सत्ता की लिप्सा अथवा कामुक वासना की तृप्ति होती है ।” इस परिभाषा के संदर्भ में सोचे तो

रंजना में अहंकार तो हैं ही स्वयं को सुंदर घोषित करने के पीछे सत्ता स्थापित करने की भावना है । क्रमशः कई पुरुषों की अंकशायिनी बननेवाली रंजना में कामवासना प्रबल है। सैयद रंजना को धोखे से किसी अफगान को पाँचसौ रुपयों में बेच देता है। प्रिय पात्र द्वारा धोखा खाने पर गुस्से में आकर रंजना सैयद और अपने खरीदने वाले की हत्या कर घर चली आती है । सैयद की हत्या के बाद रंजना अपने परिवार के साथ लखनौ चली आती है जहाँ क्रांतिकारी अकलंक के प्रेम में पड़ती है । अकलंक का प्रेम रंजना के जीवन को बदल देता है । वह घंटों तक 'बायरन', 'टेनीसन', 'शेक्सपियर' और 'जोलो' की किताबें पढ़ती है । अकलंक को पाकर फिर दिवास्वप्न देखनेवाली रंजना सोचती है कि - 'मैं फ्रांस की कुमारियों की भांति सोचा करती थी कि सबकुछ नील कमल की भांति ही सुन्दर, मैं दूंगी और मेरा राजकुँवर सा होगा अकलंक ! जीवन फूलों के कुंजों की तरह रंग और गंध की कुंद-कलियों से भर जायेगा । मेरा मन साँझ के तारों के साथ चांदनी में उड़ते मेघपरियों के सपनों में डूबा रहता था ।'³

दिवास्वप्न के कारण ही रंजना उपन्यास और कहानियों की नायिका 'अन्नाकेरिना', 'लूसीमैनेट' और 'मादाम बावै' के साथ अपनी तुलना करती है । कल्पनालोक में विहरनेवाली रंजना के सारे सपने उस समय चुर-चुर हो जाते हैं जब क्रांतिकारी अकलंक को पुलिस पकड़ती है और आजीवन कारावास की सजा मिलती है। अकलंक के प्रेम को हृदय के एक कोने में गाड़कर वह एम.ए. करती है। दीक्षांत समारोह में प्रशंसकों की तालियों के बीच रंजना विलायत जाने का निर्णय करती है किन्तु उनके पिता रंजना की शादी एक सरफिरे युवक के साथ कर देते हैं। रंजना का ससुर एवं पति उसके माता-पिता की हत्या कर सारी संपत्ति लेकर विदेश भाग जाते हैं । इस बीच रंजना एक अर्धपागल बच्ची को जन्म देती है । इस पागल बच्ची भी रंजना का साथ छोड़ संसार छोड़कर चली जाती है । इस हादसे ने रंजना को एकाकी बना दिया ।

असामान्य व्यक्तिवाला इन्सान आत्मविश्वासी होता है। इस दृष्टि से रंजना का

आत्मविश्वास ही उसे इतने बड़े हादसे के पश्चात् भी नये सिरे से जिन्दगी जीने के लिए प्रेरित करता है । वह नर्स की ट्रेनिंग लेकर म्यू की मिलिट्री अस्पताल में सैनिकों की सेवा के लिए जाती है । यहां सैनिकों की वासनामयी नज़रों से रंजना को घृणा हो जाती है । सैनिकों की गंदी, वासनामय नज़रों से स्वयं की रक्षा के लिए रंजना टोमस के प्रेम को स्वीकार कर उससे शादी करने का निर्णय लेती है । रंजना टोमस से शादी करे उससे पूर्व दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान टोमस की मौत हो जाती है। जिससे रंजना के शादी का सपना फिर बिखर जाता है । टोमस के न रहने पर मिलिट्री अफसर रेनाल्ड रंजना पर बलात्कार करता है । इस घटना से व्यथित रंजना ने त्यागपत्र देना चाहा, परंतु त्यागपत्र न स्वीकारते हुए रंजना का तबादला बैरागढ़ अस्पताल में कर दिया गया।

बैरागढ़ में रंजना के जीवन में मेजर जास्टीन नामक एक और पुरुष का आगमन होता है । रंजना का नारी मन पुरुषों की लालची नज़रों से दूर किसी एक ऐसे पुरुष की निश्चा में रहना चाहता था ताकि बाकी सब पुरुष उसे नारी की निगाहों से देखें । जास्टीन के साथ विवाह करने का निर्णय रंजना के जीवन का एक समाधान मात्र था । वह जास्टीन को इसलिए अपनाती है - “तुम बताओ कि यदि मेजर जास्टीन का साथ छोड़ देती तो मेरे सामने वेश्या या वेकाई गर्ल के भविष्य के अलावा और क्या था ।”⁴

नर्स की नौकरी से त्यागपत्र देकर रंजना-जास्टीन के देश ‘हौलैंड’ आती है। हौलैंड में अपना पारिवारिक जीवन बिताने आयी रंजना के जीवन में जास्टीन का मित्र चित्रकार वान निकोलस का प्रवेश होता है । वान का सौन्दर्य-चित्र और संगीत रंजना को पागल बना देता है । रंजना के अवचेतन मन में पड़ी कुछ हासिल करने की और कुछ बनने की ग्रंथी तीव्र हो उठती है । अनिद्य सुंदरी रंजना चाहती है कि वह वान जैसे देश प्रसिद्ध चित्रकार की प्रेयसी बनकर काफी शौहरत हासिल करें ।

‘फ्रायड’ के अनुसार व्यक्ति में अहं (EGO) और काम (SEX) दोनों प्रवृत्तियाँ जन्मजात विद्यमान होती है । व्यक्ति के असामान्य वर्तन के पीछे उनका अहम और

काम जिम्मेदार होता है। रंजना के पतन के लिए स्वयं का सौन्दर्य ही जिम्मेदार था। उस सौन्दर्य के कारण ही रंजना में अहम् का विस्तार होता है। रंजना चाहती है कि उसे कोई समझे, कोई सराहे, उसके रूप की प्रशंसा करे और उसके प्रेमपाश में बंध जाए। मिलिट्री अस्पताल में सैनिकों की नज़र उसकी गोरी चीकनी बाँहे तथा लहराते कुंतल की ओर जाती तब रंजना का अज्ञात मन प्रसन्न हो उठता था।

रंजना में उद्दाम वासना प्रवाह किसी एक पुरुष के रोकने पर रुकने वाला नहीं था। मेजर जास्टीन की पत्नी होने के बावजूद भी रंजना वान के चुंबनों का सहर्ष स्वीकार करती है। “मैं कदाचित बहुत दिनों से प्यासी थी और वह भी इसी जल की।”⁵ रंजना सत्ता प्राप्ति की लालसा लिए वान की तरफ आकर्षित होती है। रंजना पूरे हॉलैंड में वान की भारतीय प्रेमिका के रूप में प्रसिद्ध होकर स्वयं को भाग्यशालिनी समझती है। रंजना अपने आपको कभी कालिदास की शकुंतला तो कभी शेक्सपियर की जुलियट मानती है। अंग्रेजी कवि ‘कीट्स’ ने अपनी सारी कविताएँ मानो रंजना के लिए ही लिखी है। वान रंजना के सौन्दर्य को चित्र रूप में प्रकट करता है तो रंजना बहुत गौरव महसूस करती है।

“आपेरा के सृष्टा को मैंने मोहा था। मैंने उसे प्रेरणा दी थी और मुझे लगने लगा कि मैं इन सबसे ऊपर हूँ। इस महान सृष्टि की आत्मा तो मैं हूँ, वान और उसकी ये अभिव्यक्ति के रंग-संगीत मुझे प्रेरणा के सम्मुख कितने बोलने लगते हैं। वान को मैंने मोहा है।”⁶

रंजना दुहरी विचारधारा की शिकार है। एक तरफ वान के साथ आकाश में उड़ना चाहती है तो दूसरी तरफ जास्टीन की मृत्यु के बाद संवेदनशील वान के प्रेम को ठुकराती है।

मनोविश्लेषकों का यही कहना है कि जब प्रबल आकांक्षाओं की सिद्धि के मार्ग में बाधाएँ खड़ी हो जाती है तब कुंठा, निराशा, हताशा और आंतरद्वन्द्व पैदा होता है। रंजना के भीतरी द्वन्द्व ने वान के पवित्र प्रेम को ठुकराने पर मजबूर किया। रंजना के मन में अज्ञात भय था कि जिसके साथ वह गृहस्थी बसाना चाहती है वह पुरुष

उससे काफी दूर चला जाता है ।

“मेरी छाया भी चाण्डाल की छाया है, अगर वह मनुष्य को छोड़ किसी देवता या सूर्य-चंद्र पर भी गिर जाये तो वह अपवित्र या उसे ग्रहण लग सकता है ।”⁷

रंजना आत्मपीड़ा द्वारा दूसरों को दुःख पहुँचाने में अज्ञात आनंद का अनुभव करती है । वह परपीड़ा वृत्ति से ग्रस्त थी । वान जैसे व्यक्ति के आत्मिक पवित्र प्रेम को ठुकराकर रंजना कुलकर्णी जैसे पशु के हाथ में पड़ती है । इस प्रकार वान को भी लालची पुरुषों की पंक्ति में बिठा देती है । रंजना हौलैंड में अपने बेटे असित को वान के पास छोड़कर भारत चली आती है । वान नियमित पत्र लिखता रहता है लेकिन रंजना को विश्वास नहीं आता और वह वान के प्रति आशंकित होती है । वह वान को नफरत करने लगती है। रंजना वान के बारे में सोचती है - “मेरा मन वान के प्रति भयंकर छिः छिः से भर उठा। मैं उसे इसकी कुरूपता का उत्तर दूँगी और मैंने निश्चय किया कि वान को आत्मसमर्पण नहीं कर सकती, कभी नहीं कर सकती।”⁸

रंजना कुलकर्णी जैसे बौने पुरुष से कभी प्रेम नहीं कर सकती है वह जानते हुए भी वान से प्रतिशोध लेने के लिए ही वह विवाह करती है । जब कुलकर्णी को रंजना के अतीत जीवन का पता चला तो उसने रंजना का जीवन नर्क बना दिया और अंत में घर से निकाल दिया । वान से प्रतिशोध लेने की भावना के कारण रंजना होम हो गई । रंजना अपने ही दर्प (अहम्) के कारण न कुछ पा सकी, न कुलकर्णी जैसे धिनौने पुरुष को पहचान सकी । रंजना सारी जिन्दगी अफगान की पहाड़ियों से लेकर हौलैंड के समुद्री किनारों तक भटकती रहीं ।

रंजना लेखक और पाठक दोनों के लिए एक पहेली बनकर आई । रंजना के विचार थे कि नारी शरीर पुरुष का ऋण चुकाने के लिए ही तो है । ऐसा मानकर वह सब कुछ करती रही । कुलकर्णी के साथ किया गया विवाह उनकी भूल थी जिसे स्वीकारती हुई रंजना कहती है कि - “कुलकर्णी मेरे जीवन की सबसे पहली भूल का वह पत्थर था जो मेरे दर्प की मीनार का अंतिम काला और सबसे ऊँचा

शिखर बनकर आया । शिखर एकदम काला धिनौना रूप के व्यंग का सबसे बड़ा प्रतीक एक पशु ।⁹

रंजना जीवन के अंतिम दिनों में झूठे बर्तन-सी हो जाती है। उसकी स्थिति अत्यन्त खराब हो जाती है । इन परिस्थिति के लिए वह खुद जिम्मेदार थी ।

“जीवन के प्रत्येक पतन को रंजना रस मानकर चलती है । आवेश में पग उठने पर भी मनुष्य विवेक आने पर लौट लेता है किन्तु जब कोई आवेश में पूरा जीवन जी जाता है तो इसका अर्थ तो हुआ कि वह सबकुछ उसके मन को अच्छा लगता है ।”¹⁰

रंजना जीवन में आये विविध पड़ाव के कारण कुंठित हो जाती है । रंजना की विद्रोहशील प्रकृति कुंठा से उत्पन्न हुई है । रंजना ऐसी नारी की प्रतीक है जिसे पुरुष केवल दैहिक मूल्यों से ही देखता है । रंजना की कुंठा इतनी बढ़ जाती है कि उसके भीतर पापग्रंथि जन्म लेती है । वह स्वयं को मानने लगती है कि रंजना नारी के पुण्य शरीर में पाप जैसी है । रंजना का सुंदर शरीर ही उसके लिए अभिशाप बन जाता है । रंजना के अंतिम दिनों के वर्णन करते हुए लेखक लिखते हैं कि -“रंजना उस बावड़ी की तरह हो गई है जो किसी युग में किसी राजा के द्वारा बहुत ही सुंदर एवं मोहक पत्थरों की जालियों तथा महाराबों से सजाकर बनायी गयी थी किन्तु आज वो उसमें पानी भरकर कार्ड और सड़ेपचों की सड़ांध से सबकुछ मृत लग रहा है।”¹¹

विद्वानों ने रंजना के चरित्र पर आरोप लगाते हुए कहा है कि रंजना के सामने यौन पवित्रता का समाज मर्यादित बोध कोई मूल्य नहीं रखता । वह हमेशा भौतिक दृष्टि से अत्यन्त संपन्न ऐसे पुरुषों से शारीरिक संबंध बांधती है । नरेश जी रंजना का पक्ष लेते हुए बताते हैं कि रंजना के चरित्र के द्वारा खोखले मूल्यों के सामने विद्रोह प्रकट करवाया गया है ।

डॉ. भगीरथ बड़ौले रंजना का पक्ष लेते हुए लिखते हैं कि -“रंजना खोखले परंपरागत मूल्यों के आधार पर टिकी सामाजिकता एवं उससे संबंध शेष पुरुष वर्गों

के प्रति अपना विद्रोह प्रकट करती है । उसे परवश होकर कितने पुरुषों की अंकशायिनी होना पड़ता है ।¹²

इस प्रकार रंजना के समग्र व्यक्तित्व से पता चलता है कि अपने निजत्व की खोज में निकली रंजना निष्प्रयोजन हो जाती है । अतः रंजना एक असाधारण - असामान्य व्यक्तित्व का प्रतिनिधि पात्र है ।

वैवाहिक मूल्य का विद्रोह करनेवाली भोगवादी, स्वतंत्र नारी वानीरा (दो एकान्त) :

अपने स्वतंत्र अस्तित्व की स्थापना के लिए परंपरागत रूढ़ मूल्यों के सामने वानीरा का विद्रोह उसे व्यक्तिवादी घोषित करता है । इस तरह वानीरा का चरित्र व्यक्तिवादी नज़र आता है । अपनत्व और आत्मीयता के अभाव में वानीरा का पूरा जीवन सूख गया है । आज की आधुनिक शिक्षित नारी विवाहोपरांत पति के व्यक्तित्व में अपने व्यक्तित्व को विलीन करना नहीं चाहती । वह अपनी पहचान अलग बनाना चाहती है, स्वतंत्र निर्णय लेना चाहती है । नारी की यही स्वतंत्र पहचान बनाने की ललक पारिवारिक जीवन में कड़वाहट भर देती है । आज के महानगरीय वातावरण ने व्यक्ति को एकाकी बना दिया है । उसे अजनबीपन और निराशा ने चारों ओर से घिर लिया है । इन समस्याओं से छुटकारा पाने के लिए व्यक्ति कभी-कभी मार्गच्युत हो जाता है । वानीरा का जीवन इन्हीं उतार-चढ़ाव के बीच फंसा हुआ है ।

वानीरा विवेक की उपेक्षा एवं एकाकी जीवन से उब कर ऐसे रास्ते पर निकल पड़ती है जहाँ वानीरा और उनका दाम्पत्य जीवन खंड-खंड होकर बिखर जाता है । वानीरा इस रास्ते पर जाना नहीं चाहती है परंतु मजबूरन उसे जाना पड़ता है । वानीरा बंगला भाषा के निवृत्त प्रोफेसर प्रथमबाबू की इकलौती संतान है जिनका विवाह डॉक्टर विवेक के साथ हुआ है । विवाह के प्रारंभिक दोनों में दोनों का जीवन मादक, सुगंधित और जलभीगे समुद्र की तरह था । कल्पना लोक में खोयी वानीरा सोचती थी - “मेरे सोने के डैन फूट आये हैं और कैसे लम्बा-लम्बा आकाश में तैर रही हूँ ।”¹³

शादी के एक साल में ही सबकुछ बदल गया । विवेक की प्रेक्टीस बढ़ने के साथ उसकी व्यस्तता बढ़ती गई । वानीरा एकाकीपन का शिकार होती है । वह चिड़चिड़ी और अकारण गुस्सा करने लगी । कभी-कभी स्वयं की सजाए-सजायी हुई चीजों पर ही गुस्सा निकालती । लेखक बताते हैं कि -“सितार से चिढ़ हो जाती । आलमारी में से किताबें फेंक दी जाती । शंख-घोंघे के रंगीन ढेर पर गुस्सा उतारा जाता । मूर्तियों के लिए रखी मिट्टी पर तो आप ही खे बैठती कि कितना व्यर्थ का कुड़ा-करकट इकट्ठा कर लिया गया है ।”¹⁴

वानीरा पति की प्रगति और प्रसिद्धि से खुश थी । विवेक की व्यस्तता को समझने की कोशिश भी करती है, किन्तु लगातार प्रतीक्षा, उबा हुआ एकाकी और निरस जीवन संवेदनशील वानीरा को निस्पृह बना देता है । कालांतर दोनों के बीच दूरियाँ काफी बढ़ जाती है । वानीरा अपनी लड़खड़ाती गृहस्थी को ठीक करने का तमाम प्रयत्न करती है । वह स्वयं को भी व्यस्त रखने का प्रयास करती है -“दिन भर विवेक का कमरा व्यवस्थित किया जाता । अंध बनी बंध छवियों की प्रतिकृतियों को सहेज दिया जाता । बनी हुई मूर्तियों को अपनी देखरेख में धूप में सुखाया जाता । मोढ़ा डाल कोई पत्रिका पढ़ते हुए ध्यान रहता कि सुखती मूर्तियाँ कहीं तिडक न जाए ।”¹⁵

आरंभ के दिनों में कभी-कभार पति-पत्नी साथ बैठकर चाय पीते, समुद्र की सैर करते परंतु कालांतर सबकुछ समाप्त हो गया । वानीरा के जीवन की एक ही प्रकार की स्थिति ने उसे निरुत्साही एवं अकर्मण्य बना दिया । वानीरा को रिक्तताको भरने के प्रयत्न निष्प्रयोजन लगते हैं । क्योंकि “क्रमशः बढ़ती इस रिक्तता को वह किस चीज़ से और क्यों भर भरे ? समुद्र देखते रहने से ? मंदिर के विशाल प्रांगण को तथा उसके बाहरी शिखर प्राचीरों से अंकित बंध छवियों को देखते रहने से ? रथयात्रा की स्मृति से ? रवीन्द्र संगी से ? क्या मन का निभृत एकाकीपन तथा सूनी निबिड़ता वैष्णव पदों की तल्लीनता से दूर की जा सकती है ?”¹⁶

पति या पत्नी में किसी एक की लंबे समय की उपेक्षा तथा वैचारिक विरोध

दांपत्य जीवन को निष्फल बना देता है । वानीरा और विवेक के बीच वैचारिक तालमेल नहीं था । विवेक समाजसेवी, अभौतिकवादी एवं कलाकार जीव था जबकि वानीरा उनके विरुद्ध भौतिकवादी और सुखी गृहस्थी में विश्वास करती है। इस कारण वानीरा अपना जीवन संवारने में खुद जुट जाती है ।

एकाकी वानीरा के जीवन में समृद्ध एवं रंगीन मिजाजी इन्सान मिस्टर क्लाइड का आगमन होता है । घर की दीवारों में बंद वानीरा का मन मिस्टर क्लाइड के आगमन से खिल उठा । अब वह किसी की परवा न करते हुए उन्मुक्त रूप से क्लाइड के साथ समुद्र के लहरों पर सवार होती है, विवेक के अभाव में जो सपने अधूरे छूटे थे इसे वानीरा ने क्लाइड के साथ मिलकर पूरे किये ।

मि. क्लाइड की तुलना में विवेक के पास कम धन और भौतिक सुविधा का अभाव था । विवेक गरीब मरीजों का डॉक्टर था । ऐसे में वह वानीरा की चाह पूरी नहीं कर सकता । क्लाइड के साथ घूमते-फिरते मँहगी भेंट स्वीकारते हुए वानीरा सोचती है कि वैभव की एक चमक होती है । वानीरा क्लाइड के होटल के कमरे के साथ अपने ड्राइंग रूम की तुलना करके क्षोभ का अनुभव करती है । वानीरा विवेक द्वारा दी गई स्वतंत्रता का दुरुपयोग करने लगी और समय के साथ उसके जीवन में विवेक का कोई स्थान नहीं रहा । क्लाइड की गाढ़ मैत्री प्रेम में परिणित होती है । अब वह क्लाइड के बिना रह नहीं सकती । इस कारण ही वानीरा विवेक को जगन्नाथपुरी की प्रेक्टीस छोड़वाकर क्लाइड के शहर डिब्रूगढ़ ले आती है । यहाँ पर वानीरा चाबागान के मालिक एवं मिलिट्री अफसर की जांच करने विवेक को मजबूर करती है जिससे उनसे मन चाही फीस वसूल की जाये ।

डिब्रूगढ़ में आकर वानीरा की गृहस्थी थोड़ी ठीक तो हुई लेकिन कुछ दिनों के लिए ही । डिब्रूगढ़ में वानीरा एक मृत बच्चे को जन्म देती है । इस घटना से वानीरा अत्यन्त दुःखी और निराश हो जाती है । वानीरा को दुःखी देख विवेक खुद वानीरा को क्लाइड और उसके मित्र आनंद के साथ वानीरा जंगल में शिकार के लिए भेज देता है । आखिर वानीरा वर्तमान क्षणों को भोगने के लिए तैयार हो जाती

है । वानीरा रात्रि के सन्नाटे में सौन्दर्य पुरुष आनंद के प्रति आकर्षित होकर अपने को समर्पित करती है । वह महसूस करती है कि यह समर्पण केवल समर्पण नहीं था वह ग्रहीता भी हुई थी ।

वानीरा की कामनाएँ अतृप्त हैं । वह स्वयं प्यासी है इस कारण एक पुरुष से संतुष्ट होनेवाली नहीं थी । वानीरा यौन प्रवृत्तियों की शिकार है । जीवन की रिक्तता कामतृप्ति का एक बहाना मात्र था । आनंद के पीछे वानीरा अपने पति को लेकर इलाहाबाद पहुंच जाती है । आनंद के बच्चे की माँ बनकर वानीरा चाहती है कि लदाख मोरचे पर से लौटकर आनंद उसके साथ उसके बच्चे का भी स्वीकार करे । अंत में विवश होकर वानीरा को विवेक के साथ जगन्नाथपुरी लौटना पड़ता है । यहाँ आकर विवेक वानीरा का नाम मात्र का पति बन गया । विवेक की मौन उपेक्षा वानीरा के जीवन में कुण्ठा उत्पन्न करती है । सामाजिक नियम और व्यक्तिगत इच्छाओं की टकराहट से परेशान वानीरा कभी स्वयं को दंड देने की चाह रखती है तो कभी मृत्यु की कामना करती है ।

“पूरा दिन अनमनी आँखों के सामने से बह जाता और उसके चौके मन में केवल हाहाकार होता उसे लगता कि समुद्र उसे बहाकर कहीं दूर ले जाये क्योंकि अब स्वयं कहीं जाना न हो सकेगा ।”¹⁷

वानीरा अपने पहले शिशु की तरह अज्ञात में समाप्त हो जाना चाहती है ।

“स्वप्न में अनेकों बार वह बालू के विस्तार में नंगे पैर दौड़ती चली गयी है, दौड़ती चली गयी है और सागर में क्षीणतर होते हुए समाहित हो गयी है । अपने इस अवसान पर गहरी परितृप्ति होती है कि अब उसे फिर कभी क्लाइड, आनंद या विवेक किसी का भी सामना नहीं पड़ेगा ।”¹⁸

एक तरफ वानीरा व्यक्ति स्वातंत्र्य को महत्त्व देती है तो दूसरी ओर सामाजिकता का स्वीकार करती है । वैवाहिक जीवन का अवमूल्यन करनेवाली वानीरा अंत में चाहती है कि अकेलेपन की स्थिति में विवेक उसे सम्हाले । उसके पेट में पल रहे आनंद के बच्चे को स्वीकारे और परवरीश में साथ दे ।

“उसका मन हुआ कि वह दौड़कर विवेक के सीने पर सिर रखकर इतना रोये कि सारा विगत अपने शाखा मूल के साथ विनिष्ट हो जाए । और विवेक-वानीरा एक बार फिर से स्नात धूले-धूले से चमकते हुए खिल जाए ।”¹⁹

वानीरा न तो पूर्णरूपेण वैवाहिक जीवन का निषेध करती है न सामाजिक बंधन को तोड़ने की हिमत करती है । वानीरा आवेश में आकर एक जगह पर विवेक के मसीहा भाव को ठुकराती है । वानीरा विवेक की उपेक्षा सहते हुए नाम मात्र की पत्नी बने रहना नहीं चाहती । वह विवेक को कहती है -“मैंने कभी नहीं चाहा, कि बहुमूल्य शीशा जो टूट गया है, परंतु फ्रेम में जड़े होने के कारण बिखर नहीं जाता, उसे फेंका न जाये ।”²⁰

चूंकि विवेक से अलग होने की कामना करनेवाली वानीरा घुटघुटकर स्वयं एकाकी बनकर रहना तो पति के घर में ही पसंद करती है, जहाँ उसकी सामाजिक सुरक्षा है ।

वानीरा मनोविकृति का शिकार है । ऐसे चरित्र दूसरों की भावना का अनादर करनेवाले स्वार्थी असामाजिक, अनैतिक स्वच्छंदवृत्तिवाले होते हैं । उसका बौद्धिक स्तर ऊँचा होता है लेकिन वे बेफिक्र होकर अपराध करते रहते हैं । वानीरा संगीत, चित्र और साहित्य में रुचि रखनेवाली पढ़ी-लिखी, विचारशील युवती है । वह स्त्री-पुरुष समानता की आग्रही है । वह स्वीकारती है कि नारी पुरुष के लिए भोग की वस्तु के अलावा कुछ भी नहीं है । क्रमशः अनेक पुरुषों के सामने समर्पण करना उसकी मजबूरी नहीं है, परंतु वास्तव में यौन अतृप्ति का शिकार है । यदि क्लाइड के साथ के समर्पण की क्षणों को वह जन्मजन्मांतर नहीं भूल सकती तो फिर दूसरे पुरुष आनंद की बहकी-बहकी बातों में पिघल क्यों गई ? वह आनंद के बारे में सोचती है -“वह कितना चाहती रही कि जोरों की एक चपत आनंद को मार बैठे केवल इसलिए कि वह कोई झरने का जल नहीं है । वह एक व्यक्ति है और वह भी पराई है ।”²¹

अज्ञात में वानीरा सामाजिक भय से परेशान है । शायद यही भय आनंद के

प्रति नफरत का कारण बनता है । वानीरा का असल व्यक्तित्व कुछ ओर ही है । क्लाइड के बाद आनंद की बाँहों में वानीरा परम सुख का अनुभव करती है । समर्पण की क्षणों के बाद उसका अनुभव लेखक ने कुछ इस प्रकार वर्णित किया है -

“वह मानो समग्र स्नात हो उठी । बड़ा भीगा-भीगापन सारी देहयष्टि में वैसे ही फूट उठा था । जैसे वह केले का पुष्ट वृक्ष हो और हाथी की सूँड ने उसे दबाकर निचोड़ना आरंभ किया हो ।”²²

वानीरा के समग्र व्यक्तित्व के मूल्यांकन के बाद हमारे मन में एक प्रश्न उठता है कि सदियों से स्त्री-पुरुषों को लेकर अलग-अलग मूल्य निर्धारित हुए हैं। इस दृष्टिकोण में आजतक कोई बदलाव नहीं हुआ । यदि वानीरा की जगह यह गलती विवेक द्वारा होती तो शायद पुरुष स्वभाव के साथ जोड़कर भूला दिया जाता । उपन्यास के अंत में विवेक की तुलना में ज्यादा प्रायश्चित करती है । विवेक मसीहा बनकर भी वानीरा को माफ नहीं करता । उपन्यास के अंत में वानीरा जिस स्थिति में जीती है वह देखकर लगता है कि आज भी स्त्री और पुरुष दोनों के लिए समाज की दृष्टि भेदभावपूर्ण है । कोई आर्थिक आधार न होने के कारण ही वानीरा को विवेक के साथ रहना पड़ता है । विवेक का मौन और उपेक्षा वानीरा को तोड़ देती है ।

“वह अन रियाज़ी अनकसी सितार है जो अपने सारे स्वर राग खो चुकी है । अजीब वासी-वासी-सा व्यवहार, कुम्हलायी आँखें, उनींदा विलोकना ऐसा उसमें समा गया था कि उससे कुछ भी पूछना उसकी ओर देखना तक उसे दुःख देने लगता है ।”²³

वानीरा का निर्माण नरेश मेहता की कलम से हुआ है, जो नारी सम्मान के आग्रही हैं । अगर अन्य उपन्यासकार के हाथों में वानीरा का चित्रण करना होता तो क्या होता ? -

“जैनेन्द्र के हाथों वानीरा न जाने कितनी बार अनावृत्त होती । इलाचन्द उसे मेटल पेशन्ट बना देते । शायद घुटन और कुंठाओं को युगबोध माननेवाले नये लेखक उसके चारों ओर कुहासों का घटाटोप को उनकी प्रखरता और तीक्ष्णता के

साथ प्रस्तुत किया है जो प्रति यथार्थ होते हुए भी असुंदर नहीं हो पायी है ।²⁴

समग्र मूल्यांकन के बाद हम यह कह सकते हैं कि वानीरा स्वतंत्र, आधुनिक नारी का प्रतिनिधि पात्र है ।

नाजायज़ बोझ से अभिशप्त, एक निष्ठ प्रिया गांधीयुगीन नारी का आदर्श रूप :

गोपा (प्रथम फाल्गुन) :

गोपा गांधीयुगीन नारी का मूर्तिमंत रूप है । जज सौरीन्द्रनाथ तथा श्रीमती नाथ की बेटी गोपा एम.एस.सी. में स्वर्णपदक प्राप्त कर कॉलेज में डेमोस्ट्रेटर के रूप में काम करती है । गोपा के जीवन के साथ नाजायज़ शब्द जुड़ा हुआ है जो उसके जीवन को क्षत-विक्षत कर देता है । पिताजी की दूसरी शादी के कारण गोपा आजीवन पितृस्नेह से वंचित हो जाती है ।

गोपा विवेकशील, व्यवहारु तथा सरल स्वभाव की युवती है । समृद्धि का अहंकार कहीं नज़र नहीं आता । बाह्य चमक-दमक और ऐश्वर्य से वह उब चुकी है । धनिक वर्ग के औपचारिक संबंध से उसे नफरत है ।

गोपा के चरित्र-चित्रण में नरेश जी ने मनोविश्लेषणात्मक शैली का सहारा लिया है । गोपा सामाजिक भय से पीड़ित है । अपने नाजायज जन्म की वास्तविकता को स्वीकारने में वह धबराती है । वह सोचती है -“हमारी कैसी विडम्बना है, नियति है कि हम जीवनभर अपनी ही संज्ञा स्वत्व ढोते चलते हैं। अपने से पृथक हो सकने की या अन्य कुछ बन सकने की हमें छूट ही नहीं होती। कितना थका देने वाला बोझ है । सबसे मुक्ति है पर अपने पर अपना ही बोझ ढोने से कोई मुक्ति नहीं ।”²⁵

गोपा का जीवन बाहर से बिलकुल शांत और अंदर से उबलते ज्वालामुखी की तरह है । उसे अपना जीवन एक प्रवंचना लगता है । गोपा की जिंदगी का कड़ुआ सत्य मकड़ी के जाले की तरह अपने आसपास फैला था जो उसे दिन-रात कुरेदता

रहता है । वह अपने सत्य से इतराती है । मुखौटेवाली जिंदगी उसे जरा भी पसंद नहीं । गोपा अपने ही बंद तहखाने की अभिशप्त राजकुमारी है ।

“अर्थहीन निजता एकाकीपन नितान्त से बढ़कर कोई व्यथा नहीं । रोटी की भूख रोटी से शांत हो जाती है पर मन की व्यथा ।”²⁶

गोपा चित्रकार महिम की प्रेयसी है । गोपा यह मानती है कि भावना और संबंध को पुकार-पुकार कर कहने से आपसी संबंध अपनी नैसर्गिकता खो देता है । इसलिए गोपा महिम को मन ही मन चाहती है । गोपा प्रेम के इकरार से डरती है । बाहर से स्वस्थ दिखाई देनेवाली गोपा एक ऐसी हीमशिला की तरह है जिसका एक ही हिस्सा पानी से बाहर दिखाई देता है ।

मनोविज्ञान के अनुसार मनुष्य वो नहीं जो ऊपर-ऊपर से दिखाई देता है । असल में उसका आंतरिक व्यक्तित्व कुछ अलग होता है । मनुष्य समझने में जटिल प्राणी है । एक जगह गोपा स्वयं मनुष्य के भीतर छिपे हुए मनुष्य के बारे में कहती है कि -“हमारे उजले व्यक्तित्वों के भीतर न जाने कितनी सुरंग, कंदराएँ, दुर्दम जंगल होते हैं, न जाने कितने विकलांग व्यक्तित्व होते हैं जिन्हें हम मुस्कराते हुए टेलकम पावडर की गंध के नीचे वहन करते होते हैं । पर एक दिन ऐसा अवश्य आता है जब हम उस विकलांगता से निष्कृति चाहते हैं ।”²⁷

गोपा छलभरे जीवन से तंग आ गई है । अपने भीतर के सत्य से मुक्त होने के लिए छटपटाती है । गोपा अपने प्रेम का इकरार करने से पूर्व महिम को सारी बात बता देना चाहती है । वह महिम को अंधेरे में रखकर प्रेम करना नहीं चाहती । गोपा में स्वपीड़न की प्रवृत्ति है जो अपने आपको पीड़ा देकर सामनेवाले के सुख की कामना करती है -“तभी मैंने तय किया था कि मैं छल नहीं करूँगी बिना सब कुछ बताये कभी मैं आपका प्रेम नहीं स्वीकार करूँगी, छले जाने की क्या यातना होती है मैं अच्छी तरह से जानती हूँ । और मैं आपको नहीं छलूँगी।”²⁸

वर्णसंकर व्यक्ति के अभिशाप से व्यथित गोपा मिथ्याप्रवंचना से नफरत करती है । उसे प्रिय को गँवाना पसंद है, लेकिन उसे छलना पसंद नहीं । गोपा के जीवन

की सच्चाई जानकर आदर्श चित्रकार महिम भी मुँह फेर लेता है परंतु गोपा को महिम से कोई शिकायत नहीं है । गोपा चाहती थी कि महिम अपने वासुदेवसत्य के साथ सारे समाज के सामने उसे ग्रहण करे चूंकि महिम ऐसा नहीं करता । समाजभीरु महिम समाज के दायरे में ही अपने आपको सुरक्षित समझता है ।

गोपा दृढ़निश्चयी युवती है । प्रिय की बेवफाई से गोपा भीतर से टूट जाती है लेकिन टूटने की आवाज बाहर किसी को सुनाना नहीं चाहती । महिम की बेवफाई के बावजूद भी गोपा में कोई व्यक्तिगत राग-द्वेष नहीं है । गोपा सरल हृदय की नारी है । महिम द्वारा ठुकराई जाने पर वह अपने आपको सम्हाल लेती है । इस प्रकार गोपा का दयनयी, आत्मविश्वासी और धैर्यवान व्यक्तित्व का परिचय मिलता है । वह महिम को कहती है कि -“मैं तो इस क्षण को भी अगले क्षण में भूल जाना चाहती हूँ। हम क्या है ? हमारे वैयक्तिक राग, द्वेष, कामनाएँ, बाधाएँ क्या अर्थ रखती है ? अपनी इस देह-मन की कारा के ठीक बाहर कैसा विशाल उत्ताल सागर आमंत्रित करता लहराता है । कभी इसका अनुभव किया है, मैं कहती थी न महिमबाबू कि हमारी भूमियाँ भिन्न है लौट जाइए आप यहाँ से।”²⁹

उपन्यास के अंत में गोपा अपनी झूठी सामाजिकता, अपने अस्तित्व के अनुत्तरित प्रश्नों और उससे उत्पन्न आंतरद्वन्द्व से मुक्त हो जाती है । जिस भ्रम को लेकर वह आशान्वित थी उस भ्रम को वह तोड़ देती है । महिम भी गोपा को वास्तविकता के साथ स्वीकारने की हिमत नहीं करता, तब गोपा भी भीतर की हताशा, कुंठा को फेंककर अपने नाजायज़ संतान होने की वास्तविकता को निःद्वन्द्व होकर स्वीकार लेती है ।

“मेरा यह भ्रम था कि अपनी भूमि कभी बदल सकूंगी पर नहीं अब मुझे पूरा विश्वास आ गया है कि चाहे मैं कितना ही कलंक की भूमि पर होऊ लेकिन वह मेरी वास्तविक भूमि है । वही मुझे भविष्य में भी धार सकती है ।”³⁰

गोपा पलायन के बदले नये सृजन की ओर प्रयाण करती है । नारियेल की तरह बाहर से कठोर बनकर भीतर की सारी संवेदना के जल को संग्रहीत करके

प्रेमचंद युगीन नायिका की तरह जीवन की कठोरता को मधुरिता में परिणित करती है । पिताजी की मौत और माँ का ब्रजनिवास चला जाना गोपा के जीवन में खालीपन भर देता है । गोपा भौतिक चीजों, ऐश्वर्य एवं संपत्ति को त्यागकर एक शिक्षा संस्थान खोल देती है । यहाँ आकर गोपा अपनी व्यक्तिगत भावना को समष्टि के कल्याण में होम कर देती है । उपन्यास के अंत में गोपा की पिताजी की मौत पर सांत्वना देने आये महिम के सामने वह बिलकुल व्यावहारिक रूप में नज़र आती है । महिम उस समय कुछ स्पष्टता करना चाहता है परंतु गोपा शैक्षणिक संस्था में भावुक बातें नहीं हो सकती यह कह कर टाल देती है ।

अतः गोपा गांधीयुगीन नारी का आदर्श-चरित्र है । प्रेम में निष्फलता मिलने पर भी आत्महत्या जैसा धिनौना मार्ग नहीं अपनाती बल्कि खुद अपने पैरों पर खड़ी होकर संघर्षशील जीवन जीती है । अनपढ़ नारियों को पढ़ा-लिखाकर सक्षम बनाती है । गोपा का मानना था कि भौतिकता इन्सान को पूर्ण सुख नहीं दे सकती किन्तु आत्मिक विकास से ही जीवन साधनामय बन सकता है । जो सुख सादगी में है, वह भौतिकता में नहीं । दूसरों का कल्याण ही उत्तम मनुष्य जीवन है । इस तरह गांधीयुगीन मूल्य की रक्षा करते हुए अपने जीवन का उत्सर्ग करती है ।

अतः पूरे उपन्यास में गोपा अपने विविध रूप लेकर सामने आती रही है । माता-पिता के दाम्पत्य जीवन को लेकर कई प्रश्नों से घिरी नादान बच्ची, पिता के द्वारा आयोजित बड़े-बड़े उत्सवों में अनौपचारिक रूप से शामिल होती, शांत-गंभीर युवती, महिम की मुग्ध प्रिय !, आजीवन आत्ममंथन से घिरी, अपने व्यक्तित्व के बोझ से परेशान और अंत में सीधी-सादी सेविका बनकर नारी के आत्मगौरवयुक्त व्यक्तित्व का परिचय देती है । निश्चय ही गोपा गांधीयुगीन नारी का मूर्तिमंत आदर्श रूप है ।

परंपरित, आदर्श भारतीय नारी का मंगलमयी रूप सरो उर्फ सरस्वती :
(यह पथ बन्धु था) :

‘यह पथ बंधु था’ उपन्यास में जितना महत्त्व और वर्णन श्रीधर का है उतना ही सरो उर्फ सरस्वती का भी है । दोनों की गाथा समान रूप से वर्णित है। प्रस्तुत

उपन्यास में सरो के माध्यम से वैयक्तिक विफलता की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है । सरो के द्वारा परंपरित, आदर्श भारतीय नारी का मंगलमयी रूप प्रकट हुआ है ।

उच्च आदर्श, अपार धैर्य, अति सहिष्णुता, विशाल हृदय, अनहद करुणा, आस्था, श्रद्धा और क्षमा जैसे गुणों को लेकर जीवन युद्ध लड़नेवाली यशोधरा की तरह चिर वियोगीनी सरो पूरे उपन्यास में न केवल अपना प्रभाव छोड़ जाती है, बल्कि असंवेदनशील पाठकों के हृदय को भी द्रवित कर जाती है ।

सरो हमारे उपन्यास की नायिका और श्रीधर की पत्नी है । अध्यापक पिता की पुत्री सरो अपने माता-पिता की एक मात्र संतान है । सरो के पिताजी ने उसे आदर्शवादी वातावरण में पाला था । सरो ससुराल में संयुक्त परिवार में रहते हुए भी स्वार्थ, कुटनीति या ईर्ष्या का सहारा नहीं लेती । वह सहज स्वभाव की मूक समर्पिता सहनशीला स्त्री है । वह धरिनी के समान सारे दुःखों को स्वयं झेलकर औरों को सुख प्रदान करनेवाली स्त्री है । सरो दुनियादारी तथा लोकजीवन के मिथ्याचार से दूर प्रामाणिक जीवन जीती है । सरो गुणवान एवं शीलवान होते हुए भी परिवार के अकल्पनीय त्रास को झेलती है । सरो का पति एक स्कूल में शिक्षक है । वह संसारी होते हुए भी अव्यवहारु है । पत्नी के प्रति अपनी जिम्मेदारियों से बेखबर पति के कारण ही सरो को उपेक्षा और अपमान सहना पड़ता है । जिठानी सरो पर हुक्म चलाने के अतिरिक्त कुछ नहीं करती । घर का सारा कामकाज़ सरो को ही करना पड़ता । कुँएँ से खारा तथा मीठा पानी लाने से लेकर अनाम फटकना-कूटना, बीस आदमियों का दो जून का खाना सरो को ही पकाना पड़ता था । बड़े सवेरे शुक डूबते वक्त उठकर सप्तर्षि उगकर ऊपर आ जाते तब तक सरो घर की गृहस्थी में लगी रहती । पति ने आजतक कभी ये नहीं पूछा कि खाना खाया या बाकी है ? सरो घर का काम पूर्ण करके जब कमरे में पहुँचती तब पति और बच्चे सोये हुए मिलते ।

असहनीय यातना को खामोश सहनेवाली सरो के जीवन में एक और आफत आती है, जब उनका पति श्रीधर नौकरी से त्यागपत्र देकर गृहत्याग करता है । पति

के चले जाने से जिठानी सरो पर अत्याचार करना छोड़ती नहीं बल्कि बढ़ा देती है । सरो एक नौकरानी बनकर रह जाती है । उसे और उसके बच्चों को बासी रोटी खाने को दी जाती है । परिवार में उसका अपमान होने लगा । इस परिवार में सरो एक उपेक्षिता नारी बनकर रह गई । सरो की दयनीय स्थिति को इस प्रकार बयान किया गया है -“अब जैसे मरुस्थल में मात्र जेठ की दोपहरी ही तप रही थी । न कहीं छायाश्रय था न तपने का अंत जो था वह इतना भाँप-भाँपवाला उजड़ापन था कि न केवल देह वरन आत्मा भी तोड़ दे।”³¹

सरो जब ब्याहकर आई थी तब उसकी देह कंचनवर्णा थी । सादी धोती में भी वह सुंदर दीखती थी, परंतु अब दर्द और कठोर परिश्रम के कारण शरीर में हड्डियाँ मात्र बची है । लेखक लिखते हैं कि -“पति के बिना हड्डियों में बुखारवाली, अधभूखी पसलियोंवाली बच्चों से घिरी सरो रात नहीं काली लू होती है जिसमें मात्र झुलसन ही नहीं होती सब ऐंठ जाता है ।”³²

सरो ने शादी पूर्व कुछ सपने देखे थे । नील आकाश होगा । ऊपर खुली दिशाएँ होंगी । जिनकी कोई देवरानी-जिठानी नहीं होगी । जहाँ सोने के स्वर्गिक सेब की भांति एकान्त परिवार होगा । सरो के नसीब में कुछ उल्टा ही मिलता है । संयुक्त परिवार, निर्मोही पति जो पारिवारिक झंझटों से दूर भागता है । परिणामस्वरूप सरो जिठानी के हुक्म का पालन करने में ही बीत जाता है । सरो भी अपनी देवरानी-जिठानी जैसी निश्चिन्तता चाहती है, जहाँ सिर्फ सरो का ही संसार हो ।

पति के चले जाने के बाद कामकाज़ और भी बढ़ जाता है । वह दिनभर इतना काम करती है कि खुद के बच्चों को सीने से भी नहीं लगा सकती । पिताजी ने अच्छे संस्कार दिए थे और कुछ किताबों में से पढ़ा था कि दूसरों का भला करने पर जीवन स्वर्ग बन जाता है । यही आदर्श एवं उच्च विचारधारा सरो के जीवन को खण्ड-खण्ड कर देता है । जो सुख सरो की जिठानी चतुराई और अप्रामाणिक बनकर प्राप्त करती है, वही दुःख सरो ईमानदार, धीरजवान तथा सहनशील बनकर भोगती है ।

सरो की मुठ्ठीभर हड्डियों में गजब की ताकत और स्फूर्ति है । सरो शरीर से दुर्बल एवं कमजोर जरूर है परंतु उसका मन दृढ़ है । वह थकती जरूर है लेकिन हारती नहीं है । जेठ-जिठानी और देवर-देवरानी के अलग हो जाने पर सास-ससुर तथा तीन बच्चों की जिम्मेदारी अकेली उठाती है । उसके चेहरे पर अव्यक्त उदासी छायी रहती परंतु बच्चों के सामने वह प्रसन्न ही रहती ।

पति के प्रति वफादारी, अनुराग और समर्पण सरो के जीवन की विशेषता है । गृहत्याग के पाँच साल के बाद एक भी पत्र न भेजनेवाले पति को उलाहना देने की बजाय उसकी चिंता करती है । वह सोचती है कि पति कष्ट में होंगे, उन्हें समय न मिलता होगा । सबकुछ ठीकठाक हो जाने के बाद खत जरूर लिखेंगे ।

सरो लक्ष्मण पत्नी उर्मिला की तरह चौदह साल तक पति का इंतजार करती है । वह श्रीधर को माफ करते हुए कहती है कि -“प्रत्येक धर्मज्ञ के जीवन में वनवास, यातना, प्रिय विरह आदि होते ही हैं ।”³³

सरो कठोर परिश्रम एवं कुपोषण के कारण क्षय का शिकार होती है फिर भी स्वयं को सांत्वना देते हुए वह कहती है कि -“प्रत्येक पत्नी को अपने-अपने तरीके से अग्निपरीक्षा देनी पड़ती है ।”³⁴

रामायण सरो के जीवन का प्रेरणास्त्रोत है । इस महान ग्रंथ से ही शक्ति एवं आत्मबल प्राप्त करते हुए जीवन संघर्ष से जूझती है । श्रीधर की गैरहाजरी में सरो माता और पिता दोनों की जिम्मेदारी निभाती है । सरो तोड़-जोड़ करके दहेज इकट्ठा करके अपनी बड़ी बेटी गुणवंती की शादी करती है । शादी के बाद थोड़े ही दिनों में कम दहेज के कारण गुणवंती के ससुरालवाले उसे क्रूरतापूर्वक मार-मारकर अपाहीज बना देते हैं । अपाहीज गुणवंती किसी काम की न रही तब उसे वापस सरो के पास हमेशा के लिए भेज देते हैं । बेटी के दुःख से दुःखी एवं व्यथित सरो पहलीबार मृत्यु की कामना करती है । लगातार दुःख झेलने के कारण सरो क्रोधी एवं चिड़चिड़ी बन जाती है । अपने परिवार के दुर्भाग्य के लिए वह स्वयं को जिम्मेदार मानती है ।

उपन्यास के अंत में सास-ससुर की मृत्यु के बाद वह नितांत एकांकी बन जाती है । सरो निराश्रित अवस्था में अपनी अपाहीज बेटी और एक मात्र आवारा बेटे को लेकर श्रीधर की प्रतीक्षा करती है । जब श्रीधर आता है तो यह मिलन क्षणजीवी बनकर रह जाता है । श्रीधर को छोड़कर सरो महाप्रयाण के पथ पर निकल पड़ती है । जिस साड़ी में वह ब्याहकर आई थी उसी साड़ी में उसका श्रृंगार होता है। सरो की मृत्यु कोई साधारण स्त्री की मृत्यु न लगकर संन्यासिनी की मृत्यु लगती है ।

“रोग से अनवरत लड़ते-लड़ते वह खोखली हो गयी थी । रंग सफेद हो गया था। फिर भी अर्थी पर लेटी कैसी निश्चिंत, सुखी, संतुष्ट लग रही थी। कोई परिताप नहीं था, मुख पर कोई कामना शेष नहीं थी। जैसे वह विराट समापन हो।”³⁵

नारी सम्मान के आग्रही नरेश मेहता की कलम से सरो जैसी नारी चरित्र की अवधारणा समग्र नारी जाति के प्रति सम्माननीय दृष्टिकोण प्रकट करती है । सरो की करुणा, दया, क्षमा, त्याग और सहिष्णुता के सामने पाठक नतमस्तक होकर प्रणाम करता है । अंत में नरेश मेहता अपने विचार बताते हुए कहते हैं कि –“नारी के इस तप को, द्विजत्व को अन्य नहीं समझ सकता । पुरुष तो मात्र फेन है । जड़हीन, दम्भ चाहे जितना वह कर ले बोधित्सव का नारायणत्व का परम पद का लेकिन नारी के समकक्ष वह नगण्य है । इसलिए भोग और उसका दुःख भी नारी का ही भाग है ।”³⁶

अतः अंत में हम इतना ही कह सकते हैं कि नरेश मेहता ने सरो के माध्यम से मानवीय चरित्र एवं ऊँच आदर्श को चित्रित करने का सफल प्रयत्न किया है ।

नारी अस्मिता का प्रतिनिधि पात्र दुर्गा (उत्तरकथा खंड-1, II) :

सृष्टि की उत्पत्ति से लेकर आजतक भारतीय संस्कृति के मूल्यों की रक्षा में स्त्रियों का योगदान महत्त्वपूर्ण रहा है । स्त्री समय-समय पर कभी दुर्गा बनकर, कभी पार्वती बनकर, कभी महाकाली बनकर तो कभी सीता या द्रौपदी बनकर पुरुष के पीछे खड़ी रही है । इस उपन्यास की दुर्गा का चरित्र समग्र स्त्री-जाति को एक सामान्य ग्रामीण युवती में कितनी ताकत होती है इसका संदेश देता है ।

उत्तरकथा की नायिका दुर्गा साक्षात् दुर्गा है । सहनशीलता में उसकी बराबरी कोई नहीं कर सकता । दुर्गा गरीब पिता की पुत्री है परिणामस्वरूप उसे दहेज के अभाव में दुहाजवर से शादी करनी पड़ती है । दुर्गा ससुराल में कठोर परिश्रम करती है, फिर भी सास के उलाहना एवं अत्याचार से बच नहीं सकती । दुर्गा बिना प्रतिकार किए धीरज से काम लेती है और इस कारण ही वह कालान्तर नाते-रिश्तेदारों एवं परिवारवालों के दिल जीत लेती है । दुर्गा के चरित्र की यह सबसे बड़ी उपलब्धि है ।

शादी से पहले दुर्गा का जीवन मुक्त पंखी की तरह था । किशोरी दुर्गा अपने दैहिक परिवर्तन का अनुभव करती हुई सोचती है मानो उसकी देह के वृक्ष में न जाने कई शाखा-प्रशाखाएँ फूटी हैं और वह कोई अन्य लोक में विहार कर रही है । आनेवाली प्रत्येक ऋतु दुर्गा के मन पर कुछ अलग ही छाप छोड़ जाती है । यौवन की दहलीज पर खड़ी दुर्गा के मन में उठे तुफान को लेखक ने इस प्रकार चित्रित किया है - “गत एक दो वर्षों में ऐसा लगने लगा था कि वह वर्षा-फूहार को खूब अपनी देह के माध्यम से अन्तर तक भीगे ऐसे भोगते हुए लगता कि उसका जड़मूल तक सिंचा पड़ रहा है ।”³⁷

दुर्गा का मन तोते की तरह इधर-उधर उड़ने लगता । फूलों की वानस्पतिक गंध उसे न जाने कौन-से प्रदेश में ले जाती । यौवन सहज आवेग के कारण उसकी देह सुलग उठती । जैसे प्रत्येक युवती वैवाहिक जीवन के सपने देखते-देखते एकांत में लज्जा का अनुभव करती है । दुर्गा को भी होता है कि -“विवाह शब्द मात्र से अज्ञात में ही लगता है कि वह निर्वसन हो उठी है और वह तब अधिक संकुच उठती । अनजाने ही उसकी चाल में कैसा सधापन आ गया था, जैसे वह बताशों पर चल रही है ।”³⁸

विवाह की सुंदर कल्पना में खोयी हुई दुर्गा को पिता की गरीबी के कारण दुहाजुवर से तो विवाह करना पड़ता है साथ में सास की क्रूरता और कठोरता को भी भोगना पड़ता है । दुर्गा की कमनसीबी की शुरुआत विवाह मंडप में से शुरू होती है ।

बारात दरवाजे पर आती है, विवाह की रश्म बाकी है ऐसे वक्त पिताजी एवं दो भाइयों की हैजे की बीमारी से मौत हो जाती है । विदा के समय उसका दुःखी मन सोचता है कि -“उसके विवाह की ऐसी कल्पना क्या कभी किसीने की थी ? क्या वह भी उस घर में चौथी लाश की अर्थी की भाँति नहीं निकली ?”³⁹

खंडित सपने, व्यथित मन, खामोश पीड़ा को हृदय के एक कोने में गाड़कर दुर्गा ससुराल आती है । नरेश मेहता इस उपन्यास की नायिका दुर्गा के माध्यम से नारी जाति के कई महत्वपूर्ण सवालों को वाचा देते हैं । परतंत्रता, अन्याय, पारिवारिक बोझ केवल नारी के हिस्से में ही क्यों आता है ?

ससुराल की दहलीज पर पाँव रखते ही वह अपने विभाजित व्यक्तित्व को लेकर परेशान होती है । वह स्वीकारती है कि -“वह स्वयं में दो है । वह एक जो कि उसकी देह है जिस पर नाना प्रकार के अंकुश हैं, जिसे ब्याहा गया है । जिसके अपने जाने कैसे-कैसे संबंध हैं और दूसरी वह है जो इस देह से परे सर्वथा उन्मुक्त है जैसे यह धूप, हवा, आकाश है जो कि स्वच्छंद, निरानंद, संबंधहीन, चित्तरूप में परिव्याप्त है ।”⁴⁰

वैवाहिक जीवन के कुछ दिनों में ही दुर्गा के मन में वैराग्य उत्पन्न होता है । स्त्री-पुरुष असमानता तथा ससुराल में स्त्री पर होनेवाले अत्याचार यही सिद्ध करता है कि अर्धनारीश्वर की कल्पना तो मात्र आदर्श है । स्त्री केवल भोग्या है, वस्तु है, चीज़ है । वह सोचती है कि -“विलास और सन्यास केवल पुरुष के ही संदर्भ में अर्थ रखते हैं, स्त्री के भाग्य में केवल सहना ही है ।”⁴¹

ससुराल में सास का अमानवीय व्यवहार, नफरत और घृणा ऊपर से पूरे परिवार का बोझ दुर्गा के कोमल मन में उथल-पुथल मचा देता है । ससुराल दुर्गा को कारागार लगता है । नारी जीवन की विवशता के ऊपर विचार करती हुई दुर्गा सोचती है कि - “क्या इसी कारागार के लिए हम अंकुर से वृक्ष बनते हैं? क्या सदा बिखा बने रहना संभव नहीं ? क्या फिर कभी वैसी निश्चिन्तता नहीं होगी ?”⁴²

दुर्गा को कलंकिनी साबित करने के लिए उसकी सास अपने भतीजे द्वारा दुर्गा पर बलात्कार करवाने की साजिश रचती है फिरभी संस्कारी और सहनशीला दुर्गा सारी विपरीत परिस्थितियों का धैर्य से सामना करती हुई अंत में सबको अपना बना लेती है ।

दुर्गा चरित्रवान, साक्षात् लक्ष्मी, पार्वती और अन्नपूर्णा हैं । उदारता, त्याग एवं क्षमा उसके जीवन के उत्तम गुण हैं । उसके जीवन से जुड़ी अच्छाइयाँ या बुराइयाँ सबको हँसते-हँसते स्वीकारती है । दुर्गा की सास निर्दयी औरत है जो येन-केन प्रकार से दुर्गा को फंसाने के लिए चाले चलती रहती है । सास चाहती है कि दुर्गा तंग आकर आत्महत्या कर ले ।

ससुराल में इतने कष्ट सहने के बावजूद भी न सास के प्रति उसके दिल में नफरत या कड़वाहट है और न ही अपने मायके जाकर माता-पिता के सामने अपने दुःखों का ढिंढोरा पिटती है। सास के बुरे व्यवहार के बावजूद भी वह पाताल के मुख में गिरी सास को गहरे पानी में छलांग लगाकर जान की परवाह किए बिना बचा लेती है। दुर्गा हृदयहीन सास की दिन-रात सेवा करके उसका दिल जीत लेती है।

दुर्गा शांत और आत्मसंतोषी नारी है । पारिवारिक उत्सवों और प्रसंगों में वह स्वयं कुछ न कर के सास को आगे करती है । अपने ही बेटे की यज्ञोपवित में सास-ससुर को बिठाकर संतोष का अनुभव करती है ।

दुर्गा वैयक्तिक राग-द्वेष से दूर रहकर सबको अपना बनाती, आत्मीय व्यवहार करती, अपना जीवन जीती है । दारुण गरीबी में जीनेवाले अविवाहित काका तथा ससुर को आर्थिक सहाय करती है और मरने पर श्राद्धविधि भी करवाती है। गरीब विधवा सविता याज्ञिक की अस्पताल जाकर सेवा करती है और उसकी बेटी गोरा की शादी गोविंद से करवा देती है । इस प्रकार दुर्गा अंतिम सांस ले रही गोरा की माँ की आत्मा को शांति प्रदान करती है ।

दुर्गा व्यवहारकुशल औरत है । हर काम में पैसों की किफायती बर्तना कोई दुर्गा से ही सिखे । पैसों का अपव्यय कभी नहीं होने देती । दुर्गा के इसी स्वभाव के

कारण वह सात-सात संतानों की परवरिश, सामाजिक व्यवहार तथा औरों को मदद करती रहती है ।

दुर्गा खुद संयुक्त परिवार में जीवन बिताती है । परंतु स्वयं के बेटे को शादी के बाद स्वतंत्र जीवन जीने के लिए अलग कर देती है । झगडालु बहू के स्वभाव को भी खुशी-खुशी टाल देती है । पुत्र के जीवन में न किसी प्रकार की दखलअंदाजी करती है और न ही दुर्गा कभी सास बनकर बहू पर हुक्म चलाना चाहती है । सहनशीलता, नम्रता एवं क्षमा ही दुर्गा के दाम्पत्य जीवन और पारिवारिक जीवन का राज है ।

दुर्गा में संबंधों को समझने और बनाये रखने की सूक्ष्म एवं गहरी दृष्टि है । संन्यासी जीवन जीनेवाले अपने बड़े भाई शिवशंकर तथा आजीवन पति उपेक्षिता विधवा गायत्री मौसी के आत्मिक संबंध को दुर्गा सहज भाव से स्वीकारती है । दुर्गा का मानना था कि शारीरिक संबंधों से भी ऊपर अन्य संबंध हो सकते हैं ।

“जब हम अपनी सारी इन्द्रियों से निकलकर किसी वस्तु या भाव या व्यक्ति को देखते, सुनते या अनुभव करते हैं और तब जो आनंद होता है वही लोकोत्तर है।”

“इन्द्रियों की पुकार हमें विनाश की ओर ले जाती है, परंतु सानिध्य हमें संपन्न बनाता है क्योंकि उसमें जुड़ने का, वृद्धि का भाव उत्पन्न होता है ।”⁴³

दुर्गा कोमल हृदय की स्त्री है । वह सपने में भी किसी का बुरा नहीं चाहती । बड़दा शिवशंकर और गायत्रीदेवी के संबंध के बारे में एकाद क्षण के लिए मन में आये विचार भी दुर्गा को पाप लगता है ।

दुर्गा परंपरित भारतीय नारी है । उसकी दृष्टि में उसका पति ही उसकी गति और मुक्ति का आधार है । अपने संतानों का पालन वह स्वतंत्र रूप से करती है । परंपरित कम पढ़ी-लिखी स्त्री होते हुए भी जीवन की उत्तरावस्था में वह महात्मा गांधी प्रेरित स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लेती है । विदेशी कपड़ों की होली करना,

स्त्रियों को घर-घर जाकर समझाना दुर्गा के स्वतंत्र व्यक्तित्व की पहचान है । दुःख में भी प्रसन्न रहना उसके जीवन की विशेषता है । दुर्गा संवेदनहीन या जड़ है ऐसा भी नहीं है, उसे भी पुत्रवधू के दुर्व्यवहार पर, विधु शेखर के प्रेम विवाह पर और चन्द्रशेखर का राजनीति में सक्रिय होने पर बड़ा आघात एवं दुःख लगा था । वह जीवन की अंतिम अवस्था में असहाय और एकाकीपन का अनुभव करती है ।

“आज समस्त पुत्र-कलत्र के होते हुए भी कैसी असहायता थी कि वह खुलकर ओ माँ कहकर चीख भी नहीं पा रही थी ।”⁴⁴

“क्या कुल कुटुम्ब घर-परिवार का यह पसारा इसी सब फजीहत के लिए होता है क्या इसे ही सांसारिक सुख कहा जाता है ?”⁴⁵

जीवन की सांध्यवेला में दंगे-फसाद में पुत्र की मौत की खबर दुर्गा को आद्यान्त हिला देती है । पुत्र की मौत के थोड़े ही दिनों में दुर्गा भी महाप्रयाण के पथ पर निकल पड़ती है ।

इस प्रकार अंत में दुर्गा का चरित्र भारतीय समाज की परंपरित किन्तु शक्तिशाली स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करता है । दुर्गा जैसी स्त्रियों के कारण ही भारत देश की संस्कृति महान और अनुकरणीय है ।

तरंगी, बातुनी, दिवास्वप्नशील स्वामीनाथन उर्फे अक्लंक (डूबते मस्तूल) :

डूबते मस्तूल एक नायिक प्रधान उपन्यास है । सैद्धांतिक दृष्टि से देखें तो स्वामीनाथन को हम नायक की कोटि में नहीं रख सकते । इस उपन्यास की खास विशेषता यही है कि इसमें अक्लंक नाम के दो चरित्र हैं । भले ही अक्लंक नायक के गुणों में खरा न उतरे, किन्तु वह कम महत्त्वपूर्ण पात्र नहीं है । उपन्यास के आरंभ से अंत तक बैठक पर रंजना की जीवन रामायण सुननेवाला यह स्वामीनाथन निष्ठावान एवं धैर्यवान श्रोता है । रंजना एवं स्वयं के चरित्र का विश्लेषण आत्मकथात्मक शैली में स्वामीनाथन खुद करता है । शक्ल-सूरत में रंजना के पूर्व प्रेमी अक्लंक के समान दिखनेवाला स्वामीनाथन हकीकत में रंजना का प्रेमी नहीं है ।

रंजना उसे अपना पूर्वप्रेमी मानकर बिते हुए अतीत को अनावृत्त करती हुई अपने जीवन का बोझ हलका करती है ।

अक्लंक कानपुर में बनियान तथा मौजे की होजियरी में सेल्समेन है । बरसों बाद लखनौ अपने दोस्त हंसराजपुरी को मिलने आता है जहाँ गलती से पूरी का घर समझकर रंजना के घर में घुस जाता है । रंजना उसे अक्लंक मानकर जबरन रोक लेती है ।

प्रथम दर्शन से ही अक्लंक हमें विचित्र मालूम पड़ता है । बिलकुल लापरवाह, तरंगी, बातुनी, कुछ-कुछ शेखचल्ली के समान दीखता है । होली के दिनों में भी घर से एक जोड़ कपड़ा लेकर ही निकला है । जो पहना था वह भी लोगों ने कलर और पानी से खराब कर दिया । गीले कपड़े एवं मुँह पर सुखा हुआ रंग अक्लंक सरकस का जोकर जैसा दिखाई देता है ।

स्वामीनाथन तरंगी स्वभाव का है । तांगे में बैठकर वह सोचता है मित्र की पत्नी बहुत गोरी तथा चिकनी होगी । मित्र को नरगीस के फूल पसंद है, इसलिए उसकी पत्नी को भी वही फूल पसंद होंगे । स्वामीनाथन की हरकतें, सोचने का ढंग, शेखचल्ली जैसा मन आदि को देखकर विदूषक की याद आ जाती है । उसे स्वयं भी अपनी बेवकूफी पर तरस आता है । अपनी उटपटांग हरकतों से खुद परेशान भी हुआ है । वह खाते वक्त चप-चप आवाज़ करता है । उसी आवाज़ के कारण उसकी सेक्रेटरी उसे छोड़ जाती है ।

स्वामीनाथन भले ही बेवकूफ एवं फूहड़ दीखता हो, परंतु बनियान के विज्ञापन के लिए व्यापारी वर्ग में वह सबसे मशहूर है । स्वामीनाथन को एक चतुर सेल्समेन होना चाहिए लेकिन वह बिलकुल भोट सेल्समेन है । एक अपरिचित स्त्री उसे अपना प्रेमी मानकर जबरदस्ती घर रोक लेती है ऐसी स्थिति में न वह इन्कार कर सका, न वह उसकी गलतफहमी दूर करने का प्रयत्न करता है । अक्लंक रंजना के घर रुक जाता है । रंजना की कहानी सुनते-सुनते अपनी कायरता पर अफसोस प्रकट करता है ।

“मैं बहुत धबराकर बोल रहा हूँ । मेरी परेशानी पर ओस की बूंदों की तरह पसीना जरूर आ गया होगा, जिसे मैं कायरता के कारण पोंछना भी पसंद नहीं कर रहा हूँ क्योंकि मैं कायर हूँ तभी तो समझौता करने अंदर से उत्सुक हूँ।”⁴⁶

स्वामीनाथन यौन अतृप्ति से पीड़ित एवं दुर्बल चरित्र का इन्सान है । रंजना को वेश्या की कक्षा तक पहुँचानेवाले समाज और अनेक पुरुषों के प्रति घृणा करता है तो दूसरी तरफ प्यासी रंजना को स्नेह से भीगो देने के लिए उसके शरीर की कामना करता है । स्वामीनाथन रंजना की देह का न केवल सूक्ष्म निरीक्षण करता है, बल्कि उसे स्पर्श करने के लिए लालायित या उत्तेजित हो उठता है । वह रंजना के कुर्ते में से दिखाई देनेवाले सुंदर उरोज पर मोहित हो जाता है । असंयमी स्वामीनाथन सुंदरी रंजना को देखकर सोचता है - “रंजना के बालों की लहरें कैसी अलग-अलग कर दी है और मेरा मन सहज चाहने लगता है कि उन लहरों को एक बार ओठों से चूम लूँ । ये बाल मेरी आँखों पर, पलकों पर, गालों पर, ओठों पर काली घटा की तरह फैल जाए, बस फैल जाए।”⁴⁷

रंजना की कथा सुनकर उसके हृदय में सहानुभूति अवश्य जगती है, परंतु अनेक पुरुषों द्वारा भोगी गई रंजना को स्वयं स्वीकार सकता है ? वह उसका उत्तर देता हुआ कहता है कि - “किसे इतनी फूर्सत जो तुम्हारे जीवन के बंद दरवाजों को खटखटा कर देखने की चेष्टा करें कि तुम क्या हो ? तुम तो वह हो जो रंगपुते हुए सड़क पर हो । घर सबके बंद हुआ करते हैं । समाज घर की चौखट पार नहीं करता ।”⁴⁸

स्वामीनाथन के मन में रंजना के प्रति विरोधाभासी भाव उत्पन्न होते हैं । कभी रंजना को नफरत करता है, तो कभी अपना हाथ रंजना के हाथ में दे देता है । स्वामीनाथन को हो आता है कि वही रंजना का अक्लंक बनकर सबकुछ दे दे जो रंजना को नहीं मिला । स्वामीनाथ रंजना का पक्ष लेता हुआ उसकी हालत के लिए समाज को जिम्मेदार मानता है । समाज की गलत परंपरा एवं नीति-नियमों पर आक्रोश प्रकट करता हुआ कहता है - “जाने कितने संस्कार समाज रूप में उसके

चारों ओर खड़े कर देते हैं कि उसमें वह व्यक्ति नष्ट हो जाता है। तुम्हारी शिक्षा-दीक्षा से विद्रोह कर यदि कोई व्यक्ति बनना चाहता है तो उसे तुम पथभ्रष्ट, अनागरिक, चरित्रहीन कहकर बहिष्कृत कर देते हो।”⁴⁹

उपन्यास के प्रारंभ में तरंगी, बातुनी, विदुषक एवं स्त्री शरीर का लालची दीखनेवाला स्वामीनाथन अंत में चिंतनशील व्यक्ति बन जाता है। समाज के खोखलेपन एवं पुरुष की मनोवृत्ति पर करारा व्यंग्य करता है, तब हमें नहीं लगता कि यह वही स्वामीनाथन है, जो प्रारंभ में मजाक से हास्य उत्पन्न करता था। रंजना की कथा सुनने के बाद स्वामीनाथन द्रविभूत होकर सारे समाज को प्रश्न करता है कि रंजना को ऐसी स्थिति में डालनेवाला आखिर कौन है ?

“रंजना आज खो नहीं गयी, बल्कि टुकड़े-टुकड़े होकर नष्ट-भ्रष्ट, खंड-खंड होकर कुरूप निर्लज्ज बनी हँस रही है तो तुम्हें क्यों आश्चर्य होता है, रंजना आज निर्लज्ज, चरित्रहीन, वासनामयी और पतिता लग रही है तो इसका उत्तरदायी कौन? रंजना या अक्लंक या वान निकोलस ? कदाचित कोई नहीं।”⁵⁰

इस प्रकार अंत में इतना ही कहा जा सकता है कि स्वामीनाथन उर्फ अक्लंक अपने विचित्र एवं विशिष्ट विरोधाभासी चरित्र द्वारा पाठकों पर गहरा प्रभाव छोड़ जाता है।

आस्था और विश्वास की साकार मूर्ति, आधुनिक युग का विभाजित व्यक्तित्व डॉ. विवेक (दो एकान्त) :

आधुनिक युग में मनुष्य की शिक्षा-दीक्षा बढ़ी है। मनुष्य की बौद्धिक सीमा का विस्तार हुआ है। मनुष्य अधिक चिंतनशील और विचारशील बना है जिसके कारण वह तर्क-वितर्क में उलझ गया। हृदय और बुद्धि के बची के द्वन्द्व ने उसे विभाजित जीवन जीने के लिए मजबूर किया है। विभाजित व्यक्तित्व की पहली विशेषता यही है कि वह हमेशा अनिर्णय स्थिति में रहता है। ऐसा व्यक्ति कभी-कभी स्वयं की समस्या में ऐसा फँस जाता है कि उसमें से निकलने का उपाय ही नहीं सूझता। विभाजित व्यक्तित्व को खंडित व्यक्तित्व भी कह सकते हैं। व्यक्ति स्वयं बौद्धिक,

चिंतनशील, चतुर होते हुए भी अपने निर्णय पर उसे विश्वास नहीं होता और दूसरों के निर्णय पर आधारित रहता है । ऐसी अनिर्णयात्मक स्थिति इन्सान के जीवन में बाधा उत्पन्न करती है ।

दो एकान्त का नायक डॉ. विवेक अनिर्णयात्मक व्यक्तित्व का प्रतिनिधि पात्र है। विवेक सेवाभावी, संवेदनशील, मानवीय गुणों से युक्त प्रसिद्ध डॉक्टर है। विवेक न केवल अच्छा डॉक्टर है बल्कि एक अच्छा शिल्पी, संगीतप्रेमी एवं पुस्तकप्रेमी भी है । विवेक नारी स्वातंत्र्य का हिमायती है । विवेक जगन्नाथपुरी के किनारे स्थित सुंदर कोठी में अपनी पत्नी वानीरा के साथ सुखी जीवन की शुरुआत करता है । विवेक अपनी पत्नी के साथ कभी चाय पीते तो कभी खिड़की में से समुद्र को देखते, कभी संगीत सुनते तो कभी पुस्तकें पढ़ते, कभी मूर्तियों की रचना तो कभी पत्नी को बाँहों में भरने की इच्छाएँ आदि क्रियाएँ समय के साथ एक कचोट बनकर रह जाती है । वह बिलकुल निरभ्र आकाश-सा एकाकी बन जाता है । वह आद्यान्त टूट जाता है ।

विवेक सरल, संतोषी, परोपकारी तथा मानवतावादी है । विवेक अपनी निजी जिन्दगी से भी ज्यादा एहमियत मरीज़ को देता है । विवेक गरीब मरीज़ों की सेवा में इतना डूब जाता है कि पत्नी के प्रति अपनी जिम्मेदारियों का एहसास तक नहीं रहता । विवेक को स्वयं की पत्नी अपने मित्र की पत्नी लगने लगती है। विवेक यशप्राप्त डॉक्टर था । उसके यहाँ मरीज़ों की कतार लगती, जो विवेक को मात्र आशीर्वाद देते । ये मरीज़ इतने गरीब होते थे कि कभी-कभी विवेक को स्वयं दवा लाकर देनी पड़ती । विवेक वर्षाऋतु में भीगता, नदी-नाले पार करता और मौसम-कमौसम में गरीब रोगियों की सेवा के लिए पहुंच जाता है। विवेक अधिक व्यस्तता के कारण वानीरा से दूर होता चला गया । वानीरा को भी उपेक्षित जीवन का एहसास हो गया था ।

विवेक जब वानीरा को कहीं घुमाने नहीं ले जा सकता तब एक विश्वास के साथ वानीरा को किसी गैर-पुरुष के साथ घूमने की इज़ाजत देता है । वानीरा ने दी हुई आज़ादी का फायदा उठाते हुए मुक्त जीवन जीना शुरू कर दिया । विवेक को

जब पता चलता है तब बहुत देर हो चुकी थी । वानीरा को वहाँ से वापस लाना विवेक के बस का काम नहीं था ।

विवेक संकोची स्वभाव का इन्सान है । किसी बात पर स्पष्ट ना कहने की हिम्मत उसमें नहीं है । जो भी प्रस्ताव आता है उसे स्वीकार कर उसके साथ चल देता है । यही कारण था कि विवेक वानीरा के प्रस्ताव पर पहले डिब्रूगढ़ (असम) और फिर इलाहाबाद जाने के लिए तैयार हो जाता है । विवेक मन से कमजोर और शंकालु है । क्लाइड के साथ घुमती वानीरा को देख मन में शंका-कुशंका करता है । वह रात में सोयी हुई वानीरा के मुख को पढ़कर अपनी शंका का समाधान करने का व्यर्थ प्रयास करता है ।

विवेक में पौरुष सहज आक्रमकता का अभाव है । उसका अपना कोई स्वतंत्र व्यक्तित्व ही नहीं है । कभी-कभी लगता है कि विवेक लाचार या कमजोर नहीं है, परंतु स्वभावगत विवशता उसके जीवन में समस्या पैदा करती है । विवेक वानीरा के गैर पुरुष के साथ संबंधों को न केवल प्रोत्साहन देता है, बल्कि उसे चुपचाप स्वीकार भी लेता है । वानीरा को दी जानेवाली भेंट-सौगाद का कभी विरोध तक नहीं करता । कालान्तर वानीरा उसके हाथों से निकल जाती है । विवेक की उदारता का लाभ उठाकर वानीरा विवाहिता होकर भी आनंद के द्वारा गर्भवती होती है ।

ब्रह्मपुत्र के बांध पर बैठा हुआ विवेक वानीरा और आनंद के बीच की बातें सुनकर आश्चर्य के साथ अनुभव करता है कि -“उसे लगा कि न केवल उसका शरीर ही थका था बल्कि उसका मन भी बुरी तरह थका था । और जिसकी प्रतीति उसे इस समय हुई ।”⁵¹

विवेक शुरुआत में वानीरा के संबंधों को लेकर चिंतित नहीं था, परंतु परिस्थितियाँ हद से बाहर हो गई तब विवेक को सामाजिक भय सताने लगता है । आनंद और वानीरा के संबंध को लेकर समाज क्या सोचेगा ? क्या कहेगा ? विवेक कल्पना मात्र करता है -“उनके अवचेतन में जाने कहाँ किन दो कमरों में, दो लाशें झुलने लगी । उसके बाद लोगों की क्या प्रतिक्रिया हुई । कैसे प्रवाद फैला, कुछ

लोगों को आनंद से ईर्ष्या होने लगी । विवेक पर तरस आ गया । ब्रिज की टेबल पर ढेर-सा धुआँ छोड़ते हुए ठहाके लगाये गये ।⁵²

विवेक वानीरा की उपेक्षा एवं अवमानना चूपचाप सहता रहा । विवाहित जीवन में कई क्षण ऐसे आये जब विवेक ने अनुभव किया कि वह अवांछित है, फिजूल है । वानीरा के लिए विवेक का पति के रूप में केवल सामाजिक तौर पर ही था । वानीरा जीवन का आनंद तो क्लाइड और आनंद से ही उठाती है । इन परिस्थितियों के बीच विवेक स्वयं से नफरत करता हुआ खण्ड-खण्ड बिखर जाता है । विवेक अपनी गलतियों को सुधारने की कभी कोशिश नहीं करता । आनंद डिब्रूगढ़ से इलाहाबाद जाता है तो वानीरा के कहने पर विवेक वानीरा को लेकर इलाहाबाद चला जाता है ।

विवेक में पुरुष सहज कठोरता नहीं है बल्कि विवेक अधिक संवेदनशील है । किसी पर अधिकार जमाना उसे पसंद नहीं । स्त्री के प्रति वह अधिक भावुक, अधिक करुणाशील है । एक जगह वह कहता है कि -“संपूर्ण नारी को उसके सारे कार्य को, यातनाओं को, औरतों और सुख के प्रकार तक को पुरुष कभी नहीं समझ सकता ।”⁵³

स्त्री के प्रति अत्यधिक करुणा एवं उदारता विवेक के दाम्पत्य जीवन को छिन्न-भिन्न कर देती है । वह निर्बल, कमजोर, बूझा-बूझा-सा दीखता है । वानीरा विवेक को न समझ पायी और न कभी टूटने पर सांत्वना देती है । किसीका सहारा न रहने पर वह बिलकुल टूट जाता है । लेखक उसकी दशा का वर्णन करते हुए लिखते हैं -“वह कैसे क्रमशः टूटता चला गया जैसे कि रेतघड़ी में बालू का एक-एक कण रिसकर पूरा समय बीत जाता है और इतने बड़े बीत जाने की प्रतीति होती है? उसके इस टूटन में एक क्षण को भी भूल से भी वानीरा का न तो उसके कंधे पर झुका माथा ही था और न आश्वासन ।”⁵⁴

विवेक आत्मपीड़न में मानता है । खामोश रहकर किसी से भी कुछ कहे बिना दुःख सहना विवेक की विशेषता है । वानीरा आनंद के बच्चे की माँ बनने वाली है इस बात को सुनकर भी न वह क्रोध करता है न अपमानित करके घर से बाहर

निकाल देता है । विवेक जानता है कि इस समस्या का हल तलाक नहीं हो सकता । पति-पत्नी का रिश्ता हृदय से होता है इसलिए आसानी से तोड़ा नहीं जा सकता । तलाक मुक्ति का बहाना है उपाय नहीं क्योंकि -“एक बार संबंध बन जाने के बाद क्यों लोग कहते हैं कि तलाक मुक्ति का दूसरा नाम है । माना कि तलाक से व्यक्ति का संबंध समाप्त हो जाता है, लेकिन जो संबंध था जो कि स्मृति बन चुका है, उसे कैसे दूर किया जा सकता है ।”⁵⁵

विवेक का कर्तव्य उसे तलाक से रोक लेता है, किन्तु आठ साल के बाद वानीरा को सहते-सहते उसका पुरुषत्व जाग उठता है और पहलीबार स्वयं निर्णय करता है । आनंद के लदाख मोरचे से लौटने से पहले वह वानीरा को जगन्नाथपुरी चलने का हुक्म करता है । विवेक ऊपर से भले ही उदार दीखता हो, लेकिन मेजर आनंद द्वारा भोगी गई वानीरा तथा उसके पेट में पलते आनंद के बच्चे को देखकर मसोस उठता है । एक ही छत के नीचे रहते हुए भी विवेक स्वयं को वानीरा से अलग कर देता है । विवेक कभी स्वयं को कायर मानता है तो कभी अपनी ही गलती पर वह प्रायश्चित्त करता है । कभी स्वयं को प्रश्न करता है कि वानीरा रूपी मृगमाया के पीछे वह इतने सालों तक क्यों भागता रहा ? क्या वानीरा उसकी कमजोरी थी ? क्या वह वानीरा को इतना प्रेम करता था कि उसे छोड़ना असम्भव नहीं था ?

विवेक के प्रश्नों का उत्तर उपन्यास पढ़ते समय मिल जाता है । उपन्यास में कई ऐसे प्रसंग हैं जहाँ विवेक का वानीरा के प्रति बेहद प्रेम प्रकट हुआ हो । डिब्रूगढ़ आने के बाद वानीरा बच्चे की माँ बननेवाली है ऐसी स्थिति में छोटी-छोटी बातों का ध्यान रखता है । वानीरा मृत बच्चे को जन्म देती है तब उसके पास रहकर सांत्वना देता है । वानीरा की प्रसन्नता के लिए वह तमाम प्रयत्न करता है । संक्षेप में कहे तो अपनी पत्नी वानीरा के लिए विवेक ने अपनी सारी खुशियाँ कुर्बान कर दी थी ।

विवेक के प्रेम में क्लाइड और आनंद की तरह तुफानी वेग नहीं था । वह खामोश रहकर प्रेम करनेवाला पुरुष था । पहाड़ी नदी की तरह उछलती-कूदती मुक्त

हरिणी वानीरा को वह बांध नहीं पाया । विवेक के विचार में विवाह स्वतंत्रता देता है, बंधन नहीं ।

इस प्रकार गलत स्वभाव के कारण ही विवेक के जीवन में तनाव पैदा होता है। वह द्वन्द्वमय स्थिति में ही पूरी जिन्दगी गुजार देता है । दो परस्पर विरोधी प्रवृत्तियों के कारण विवेक न वानीरा को मुक्त कर सकता है, न स्वयं सुखमय जीवन बीता सकता है । एक ही छत के नीचे दो अलग-अलग कमरे में अलग-अलग जिन्दगी जीते हुए विवेक को लगता है कि -“उसकी जड़े सुखने लगी है । वह पुकारना चाहता था पर किसे ? इस पुल पर से वह किसे पुकार कर बुलाना चाहता है । तारों को ? तटों को ? गंगा को ? अंधेरे को ? ऐसे सर्वात्मवादी कभी व्यक्ति की पुकार नहीं सुनते ।”⁵⁶

घुटन से छुटकारा पाने के लिए विवेक दाम्पत्य जीवन के रथ पर से वानीरा को उतरने के लिए अनुरोध करता है । वह कहता है -“ठहरो वानीरा मुझे कोई जिज्ञासा नहीं इसलिए कि हमारे बीच अब पति-पत्नी का विश्वास निहीशेष है । मैं सामाजिक मुखौटा उतार फेंकने के लिए कभी नहीं कहूँगा । पर इतना मेरा आग्रह अवश्य है कि हम अपने लिए घोषित रूप में संबंधों को उतार फेंके लेकिन संबंध के रथ पर से पहले तुम्हें उतरना होगा इसीलिए कि तुम्हारी सुरक्षा का दायित्व मैंने एक दिन लिया था ।”⁵⁷

विवेक नरेश मेहता का नायक है । वह जैनेन्द्र के त्यागपत्र के मृणाल के पति कोयलेवाले की तरह पत्नी को कुलटा या चरित्रहीन कहकर घर से निकाल नहीं देता । घोषित संबंधों को फेंक देने के बाद भी विवेक वानीरा के पाश्व में खड़ा रहता है । विवेक के भीतर का मसीहा भाव उसके चरित्र को गौरवमय बना देता है । विवेक टूटते हुए वैवाहिक मूल्य की रक्षा के लिए अपने आपको होम कर देता है । ‘बुराई के बदले, भलाई किए जा’ की भावना के कारण विवेक कमजोर, दुर्बल, अनिर्णित, विभाजित चरित्र होते हुए भी पाठक के हृदय पर एक आदर्श छाप छोड़ जाता है ।

खोखले और दंभी आदर्शों का प्रतिनिधि महिम (प्रथम फाल्गुन) :

प्रथम फाल्गुन का नायक महिम कॉलेज में वाइस प्रिन्सिपल है । लेखक उसका बाहरी चित्रण करते हुए लिखते हैं कि -“साधारण, खुला रंग, मध्यम कद तथा किंचित पुष्ट देह के उस व्यक्ति के घुँघराले बाल होने पर उनका कड़ापन स्पष्ट था । यद्यपि उनके मुख पर पत्तों की सी चिकनाहट तो न थी पर उसकी आँखों में समझदारी के साथ-साथ फूलों की सी कमनीयता भी स्पष्ट थी ।”⁵⁸

महिम एक अच्छा चित्रकार है इस कारण धनाढ्य लोग उसे अपनी पार्टी में बुलाते हैं । जहाँ वह महसूस करता है कि चित्रकार की कोई स्थायी सामाजिकता नहीं होती । उन लोगों के सामने कला का कोई महत्त्व नहीं है । गोपा के जन्मदिन पर आयोजित पार्टी में उसकी और कला की उपेक्षा को सह नहीं पाया । उसे लगा कि “वह निमित्तभर भी नहीं है, बल्कि बड़े ही शालीन औपचारिक ढंग से कुछ देर के बाद वह उपेक्षित जैसा हो गया था । अतः वह इस विषमता को भूलने के लिए ही कुछ अधिक पी गया था ।”⁵⁹

पार्टी में महिम की मुलाकात सौरिन्द्रनाथ की बेटी गोपा से होती है । महिम गोपा को मन ही मन चाहने लगता है । गोपा महिम के चित्र की प्रेरणा थी। महिम गिज में बैठकर मंकी ब्रीज पर से जानेवाली गोपा का चित्र तीन दिन भूखे-प्यासे रहकर बनाता है । महिम के लिए यह चित्र कला का उत्तम नमूना था। गोपा के साथ दाम्पत्य जीवन की सुखद कल्पना मात्र से वह रोमांचित हो जाता है । महिम गोपा से चाहते हुए भी प्रेम का इकरार नहीं कर पाता । गोपा के बारे में सोचता है - “गोपा उसे समुद्र में उठी एक ऊँची चट्टान पर बैठी एक जलपरी-सी लगी जिसे वह पूरी तरह अनुभव करता था पर उस चट्टान पर चढ़कर उसे प्राप्त करने में समुद्र के उद्दामजल को चट्टान के चिकनेपन को बाधक पाता था ।”⁶⁰

महिम कुछ हद तक कायर लगता है । वह अक्सर वास्तविकता से दूर भागकर कल्पना लोक में विहार करके अपने आपको संतुष्ट करता है । उसका मानना था कि गोपा उसकी लिए वर्जित फल है जिसे खाने से शाप लग सकता है ।

महिम गोपा को पाने के लिए न हिम्मत जुटा पाता है और न प्रयत्न करता है । महिम अच्छा चित्रकार एवं बौद्धिक आदमी होते हुए भी लघुताग्रंथि का शिकार है । महिम की लघुताग्रंथि के पीछे धनाढ्य लोगों की उपेक्षा जिम्मेदार है। गोपा से प्रेम का इकरार न करने का एक कारण यही है कि गोपा लखनौ के अति धनाढ्य निवृत्त जज की पुत्री है । महिम की आर्थिक सम्पन्नता इन लोगों की दृष्टि में नहीं के बराबर है । महिम गोपा से शादी करके आर्थिक संपन्नता प्राप्त करना चाहता है, जो उसके पास नहीं है ।

महिम में आत्मविश्वास का अभाव है । वह कमजोर युवक है । बाहर से संयमी दीखनेवाला महिम न केवल स्त्रियों के सूक्ष्म सौन्दर्य का पारखी है बल्कि ऐसी स्त्रियाँ उसे मोहित भी करती है ।

“स्त्रियों के मादक नयन उसकी आँखों में बार-बार खुल पड़ रहे थे । गरारे और साडियाँ उनकी देहों की गंध उसके मनमें सदा के लिए भर गयी है।”⁶¹

स्त्रियों की इन्द्रजाल या मायाजाल में फँस जाने के डर से वह एक जगह मन-ही-मन गोपा को कहता है कि -“तुम मेरी पत्नी बनकर मेरे पार्श्व में खड़ी हो जाओ, देखती हो न इस तरह के उत्सवों - पार्टियों में ... लगे हुए चालाक आँखोंवाले सायास हँसीवाले सुंदर मुख आपके चारों ओर कैसा बारीक महीन षडयंत्र बुनते हैं । ये लोग संसार में किसी से भी सहानुभूति नहीं रख सकते।”⁶²

महिम समाजभीरु है, पलायनवादी है । वह आदर्शों के नाम पर दंभ करनेवाले लोगों का प्रतीक है । सामाजिकता से दूर भागनेवाला महिम अंत में तो स्वयं को समाज के साथ ही सुरक्षित और सलामत मानता है । महिम को जब पता चला कि गोपा नाजायज संतान है तो महिम में उसे अपनाने की हिम्मत न हुई । महिम चाहता तो अपने एकनिष्ठ प्रेम के जरिए आदर्श प्रस्तुत कर सकता था, परंतु वह गोपा से दूर रहकर बेवफा प्रेमी बनना पसंद करता है ।

महिम इस घटना को तार्किक दृष्टि से सोचता है । जन्म का सिद्धांत ही मनुष्य के लिए महत्त्वपूर्ण है, मनुष्य का व्यक्तित्व कोई महत्त्व नहीं रखता, गोपा

नाथबाबू की पुत्री हो या न हो क्या फर्क पड़ता है ? आदि तर्क लड़ानेवाला महिम अनिर्णयात्मक एवं द्वन्द्वग्रस्त जीवन जीने के लिए विवश होता है । वह गोपा के जीवन के साथ जुड़े सत्य का सामना करने से धबराता है -“पता नहीं इस समय क्या चाहता था, शायद वह तेज भागना चाहता था । नहीं वह चीख पाड़ना चाहता था । नहीं ! वह किसी भारी जनसमूह को संबोधित करना चाहता था ।”⁶³

महिम अनिर्णयात्मक स्थिति में भटकता रहता है । गोपा के प्रेम को कभी बीयर की बोतल में, कभी संगीत के जलसों में तो कभी धनिक घराने की अपने से बड़ी उम्र की स्त्री लाला साहनी के प्रेम में डूबकर भूलना चाहता है । वह व्यथित हृदय से गोपा को बिनती करता है -“गोपा यों न गाओ तुम इतिहास की मेहराबों, कँगूरों पर बैठकर यह न गाओ, क्योंकि अभी तुम देखते - देखते इतिहास के गवाक्ष से कूदकर विलीन हो जाओगी तब हाँ ! तब महिम क्या करेगा ?”⁶⁴

गोपा को भूलने के लिए महिम लखनौ छोड़कर एक साल तक इधर-उधर भटकता रहता है । अंत में महिम प्रायश्चित एवं स्पष्टता के लिए गोपा के पास जाता है, परंतु गोपा का दर्प उसे हमेशा के लिए लौटा देता है । महिम निष्फल प्रेम की चोट खाये, दिशाहारा बनकर सोचता है कि -“मध्यकाल के किसी प्राचीन दुर्ग के नगरद्वार की सांकल बजाता जैसे वह प्रातःकाल की वैतालिक बेलों से लेकर अर्धरात्री की अघोर कालिमा से घिरा खड़ा रहा पर प्रत्येक बार सांकल की वह भारी लौहे की आवाज़ दरवाजों के लौट सीने पर खट-खट करती रही ।”⁶⁵

अंत में गोपा के दर्प और स्वाभिमान के सामने महिम की पुकार का कोई महत्त्व नहीं रहता । जो द्वार महिम के लिए हमेशा खुले रहते थे वे हमेशा के लिए बन्द हो गये । अन्त में इतना ही कह सकते हैं कि उपन्यास में महिम परंपरा के पोषक के रूप में चित्रित हुआ है ।

मध्यवर्गीय, प्रामाणिक, आदर्श शिक्षक, पथ बन्धु श्रीधर (यह पथ बन्धु था):

श्रीधर ठाकुर उपन्यास का नायक है । श्रीधर प्रतीक है बीसवीं सदी के पूर्वार्ध के भारतीय समाज के अज्ञात छोटे-छोटे लोगों का जो उस काल के राष्ट्रीय संघर्ष

और परंपरागत निष्ठा के लिए चुपचाप होम हो गए । श्रीधर जैसे असंख्य लोग राष्ट्र निर्माण में अपना योगदान देते हैं किन्तु उसकी चर्चा इतिहास में नहीं होती ।

श्रीधर की कथा मात्र श्रीधर की कथा न रहकर आज के मध्यवर्गीय, ईमानदार, प्रबुद्ध परंतु साधनहीन व्यक्ति की कथा है । श्रीधर के पास सपने, स्वाभिमान और कुछ कर दिखाने का हौसला है, परंतु विशेष मूल्यों के साथ उसे सार्थक करने में कठिनाइयाँ आती हैं। वह कदम कदम आहत होकर टूटता रहता है।

कीर्तनियाजी का मझला बेटा श्रीधर का चित्रण करते हुए लेखक लिखते हैं - “इटालियन गोल टोपी, बन्द गले का एडवर्ड कोट, चुन्नटी धोती, गले में दुपट्टा, पैरों में पम्प शू पहनकर वह अत्यन्त तेजी से चलता था । मिडिल स्कूल में हिन्दी, इतिहास और भूगोल पढ़ानेवाला श्रीधर विचारों से आदर्शवादी था।”⁶⁶

“हलकी पतली मूँछे उनके लम्बे मुँह को संतुलित ही करती थी । एक नासिका के लंबेपन को छोड़कर उस मुख से कोई विशेषता गिनाना कठिन ही था। जो था अति साधारण ही था ।”⁶⁷

श्रीधर आदर्शवादी, आत्मसम्मानी और नैतिकवादी है । वह मालवा के एक छोटे से कसबे में शिक्षक का काम करता है । वह ‘राज्य का गौरवमय इतिहास’ नामक एक किताब लिखता है । श्रीधर बाहर से आज्ञाकारी एवं संपन्नशील दीखता है, बिलकुल ‘अल्लाह की गाय की तरह’ परंतु भीतर से विद्रोही । उसके भीतर विद्रोही की एक आग के कारण ही उसके द्वारा लिखी किताब में श्रीमंत सरकार की राजकीय पदवियों में परिवर्तन करने का वह साफ इन्कार कर देता है । वह क्षमापात्र भी नहीं लिखता बल्कि नौकरी से त्यागपत्र देकर कुछ कर दिखाने की ख्वाहीश लेकर घर से निकल पड़ता है ।

श्रीधर ज्ञानी एवं विद्वान है । श्रीधर पारिवारिक और राजनीतिक षडयंत्र से कोसों दूर रहता है । बच्चों के कपड़े फट जाये, भाई संपत्ति हड़प ले या पत्नी देर रात तक काम में उलझी रहे, श्रीधर को कोई फर्क नहीं पड़ता । श्रीधर सारी

परिस्थितियों से दूर बिलकुल निर्मोही अपनी मस्ती में जीता है । वह स्वाभिमानी है । वह न किसी के सामने सिर झुकाता है और अपने काम के लिए गिड़गिड़ाता है । जितना स्वाभिमानी है उतना आत्मपीड़न में माननेवाला है । अपनी पीड़ा को कभी सार्वजनिक नहीं करता । वह स्वयं इसे भोगता है ।

श्रीधर तीव्र महत्वाकांक्षी है । अपनी इच्छापूर्ति में स्वयं की निष्क्रियता एवं अव्यवहारिकता ही बाधक बनती है । गृहत्याग के बाद श्रीधर अजीब परिस्थितियों में फँस जाता है । वे अपना मार्ग तय नहीं कर पाया । गृहत्याग के बाद उसे कांग्रेसी नेता के भाषण तैयार करने पड़े, मजदूरों की बस्ती में रात्रि शाला चलानी पड़ी और गीता रहस्य का अनुवाद भी करना पड़ा । श्रीधर के मन में किसी काम के प्रति आशंका और अविश्वास बार-बार बना रहता है । वह क्रांतिकारी दल के साथ काम करता है परंतु क्रांति की सफलता पर मन में यकीन नहीं है । वह सोचता है -“दो चार बमों के धमाकों से, दो-चार हत्याओं से अंग्रेज शासनतंत्र को बदला जा सकता है।”⁶⁸

श्रीधर राजनीतिज्ञों के संपर्क में आकर समझ जाता है कि राजनीति उसके बस की बात नहीं फिर भी गांधीजी की राजनीति समझने का प्रयत्न करता है । सत्याग्रह के लिए चंदा इकट्ठा करता है और प्रजामण्डल कार्यालय को संभालता भी है । क्रांतिकारियों से प्रेरणा लेकर अंत में खुद भी गिरफ्तार होता है । सीधा-सादा, भला और संवेदनशील श्रीधर को चौदह साल का कारावास भुगतना पड़ता है । जेल से बाहर आकर क्रांतिकारी पत्रिका शंखनाद निकालता है जो भी कुछ महीनों में बंद कर देना पड़ा ।

श्रीधर जिस आदर्श एवं मूल्यों को लेकर चला था वह फरेब, अप्रामाणिकता एवं भ्रष्टाचार के सामने क्षीण पड़ गए । समाज के लिए आदर्श शक्ति नहीं, बल्कि लाचारी है । श्रीधर का जीवन संघर्षपूर्ण एवं उलझा हुआ है । श्रीधर पारिवारिक खींचातानी, भाइयों की कूटनीति, त्यागपत्र, उदरपूर्ति का संकट, पत्नी एवं बच्चों का मोह आदि अनेक मुश्किलों का सामना करता है ।

“श्रीधर बाबू का अवचेतन पलायन है जहाँ उन्हें न दुःख होता है न अपमान होता है । न परिताप होता है बस वे केवल उन सबको एकान्त में भोगते हैं ।”⁶⁹

नरेश मेहता ने अनेक स्थलों पर श्रीधर के स्थितप्रज्ञ स्वभाव की ओर संकेत किया है । श्रीधर को न किसी बात का दुःख होता है न क्रोध आता है । निर्णय की शिथिलता उसके जीवन को तनावग्रस्त बना देती है । श्रीधर के व्यक्तित्व से लगता है कि वह आग्रही नहीं, हठधर्मी है । श्रीधर की अनिश्चित योजना कभी-कभी हास्यास्पद बन जाती है और कुछ पाने की बजाय विफलता की ओर ले जाती है ।

श्रीधर सफलता की चरमसीमा को स्पर्श करना चाहता है परंतु महत्वपूर्ण घटना में सक्रिय रूप से योगदान दर्ज नहीं कर सका । अंत में श्रीधर व्यर्थ हो जाता है । आदर्श के विराट आकाश के नीचे श्रीधर टूटता चला गया ।

एकाकीपन और आश्रयहीनता जैसी समस्या श्रीधर की वैयक्तिक न होकर समष्टिगत है । जीवन की आपाधापी श्रीधर को बिखेर देती है । अंत में श्रीधर अपना संपूर्ण काशी को सौंपकर वृद्ध, बीमार, असफल होकर घर लौट आता है । घर में भी बहुत कुछ बदल गया है । माँ-बाप की मौत हो चुकी है और पत्नी मौत का इंतजार कर रही है । बड़ी बेटी को ससुरालवालों ने अपाहिज बनाकर हमेशा घर भेज दिया है और लड़का आवारापन पर उतर आया है । परिवार की हालत के लिए श्रीधर स्वयं को जिम्मेदार मानता है । श्रीधर पत्नी के सामने स्वीकारता है कि -“इस तरह लौटनेवाला व्यक्ति सरो मात्र आहत ही नहीं होता कहीं-न-कहीं अपमान अनुभव करता है । उपेक्षा उसे सालती है । उसे लगता है कि उसका पुरुषार्थ नपुंसक का पुरुषार्थ था ।”⁷⁰

अंत में पुत्री और पुत्र को सरो की मृत्यु के बाद उसके नैहरवाले अपने घर ले जाते हैं । श्रीधर फिर अकेला पड़ जाता है । एकान्त और अकेलेपन की पीड़ा श्रीधर के जीवन में विषाद भर देती है । उसे अपनी असफलता पर जितना दुःख नहीं हुआ इससे ज्यादा उसका कर्म नगण्य सिद्ध हुआ इस बात से हुआ । पच्चीस साल के संघर्ष के बाद भी उसका पुरुषार्थ नगण्य एवं नपुंसक साबित हुआ । उपन्यास के

आरंभ में राज्य का गौरवमय इतिहास लिखने वाले श्रीधर उपन्यास के अंत में मानव इतिहास लिखने बैठ जाता है । नीति, धर्म और आदर्श ने उसे गृहत्याग के सिवा कुछ नहीं दिया । श्रीधर व्यक्तिगत तौर पर कितना ही नाकाम या असफल रहा है, परंतु विद्वानों ने उसे राष्ट्रीय चरित्र के रूप के स्थापित किया है । नरेन्द्र मोहन लिखते हैं - “श्रीधर बिना किसी महज कर्म के अपनी साधारणता में भी उत्कट राष्ट्रीय चरित्र बन गया है । इसलिए उसमें अपनी आस्था संस्कार और कर्म चेतना के संपूर्ण उपकरणों का मिश्रण है । शायद उसका यह समन्वयवादी व्यक्तित्व टूटने पर भी अंतिम रूप से नहीं टूटता।”⁷¹

यह पथ बन्धु एक ऐसे व्यक्ति की कथा है जिसके पास अपनी ईमानदारी का प्रबल संबल है तथा जीवन के प्रति गहरी आस्था भी । श्रीधर स्वयं के साथ सबको जोड़ना चाहता है किन्तु अपने दायित्व को ठीक तरह से निभाने में वह असमर्थ है । श्रीधर अपने आप टूटता है तो कभी समाज की विपरित परिस्थितियाँ और आदर्शविहीन लोग उसे तोड़ डालते हैं ।

डॉ. नरेन्द्र मोहन कहते हैं - “प्रस्तुत उपन्यास में श्रीधर की पत्नी सरस्वती भी विफल रहती है, किन्तु उसकी विफलता परिवार के एक पक्ष को बचा लेती है लेकिन श्रीधर के नसीब में तो इतना भी नहीं ।

श्रीधर की जीवनगत अप्राप्ति समाज की अप्राप्ति नहीं बन पाई जिस प्रकार सरो की सहनशीलता कम से कम पारिवारिक संगठन के एक पक्ष को बचाती चलती है । अपनी विफलता में भी वह सार्थक हो जाती है । उस प्रकार श्रीधर का आत्मगत विघटन समग्र रूप से अर्थवान नहीं हो पाता ।”⁷²

कुछ विद्वान श्रीधर को पलायनवादी कहते हैं । उनका तर्क है कि श्रीधर के गृहत्याग के मूल में पलायनवृत्ति है । श्रीधर के चरित्र का सूक्ष्म अध्ययन करने पर यह आरोप बेबुनियाद लगता है । श्रीधर समाजोन्मुखी व्यक्ति है । वह गृहत्याग रचनात्मक कार्य के लिए ही करता है । श्रीधर का दृष्टिकोण आस्थावादी एवं मानवतावादी रहा है । परिस्थितियाँ उसे चारों ओर से घेर लेती हैं, ऐसे में

आत्महत्या करने का विचार जरूर करता है, परंतु करता नहीं है । वृद्ध, अशक्त एवं बीमारी के बाद भी श्रीधर मानव इतिहास लिखने के लिए कागज और पेन उठाता है, बस एक ही घटना श्रीधर के व्यक्तित्व को ऊँचा उठा देती है।

विद्वानों ने श्रीधर के आदर्शवाद को लेकर सवाल उठाते हुए कहा कि श्रीधर का आदर्शवाद उसे अव्यवहारु और असफल बनाता है । हा ! आदर्श व्यक्ति का ध्येय अलग होने के कारण वह अव्यवहारु हो सकता है, लेकिन उसकी असफलता के पीछे घिनौनी परिस्थितियाँ, गंदी राजनीति, दंभी लोग, स्वार्थी समाज आदि जिम्मेदार हैं, जो श्रीधर के व्यक्तित्व को सहन नहीं कर पाता। अतः आदर्शवाद का आरोप लगाना ठीक नहीं । आदर्श बचेंगे नहीं तो फिर स्वस्थ समाज का निर्माण कैसे होगा।

श्रीधर के चरित्र पर एक और आरोप बचपन में हुई घटना को लेकर लगाया गया है । बचपन में श्रीधर और उससे बड़ी उम्र की राजकुमारी इन्दुदीदी के रागात्मक संबंध को विद्वानों ने 'फ्रायडवादी' दृष्टिकोण से देखकर इस संबंध को अनैतिक करार दिया । श्रीधर इन्दु के संबंध को 'दीदीवाद' कह कर विद्वान वर्ग भर्त्सना करता है ।

विद्वानों के आरोप के साथ सम्मत हुआ जाये या न हुआ जाये किन्तु इस बात को नकार नहीं सकते जहाँ बालक श्रीधर इन्दु को अलग नज़रिये देखता है। इन्दु ने श्रीधर को ढेर सारी किताबें पढ़कर सुनायी हो चाहे अच्छे संस्कार और सपने दिए हो, फिर भी किशोरी इन्दु भी किताब पढ़ते-पढ़ते स्वयं को किताब की नायिका मानकर श्रीधर के साथ के संबंध में कुछ अलग ही अनुभव करती है । एक जगह श्रीधर कहता है कि -“कभी-कभी वह दाँतों से, अंगुलियों से, पलकों की बरौनियों से बल्कि संपूर्ण शरीर से दीदी को उसी तरह छू लेना चाहता हूँ जैसा कि वह मीठी लगनेवाली धूप को छूता है ।”⁷³

श्रीधर द्वारा इन्दु के संपूर्ण शरीर का वर्णन करना, उसे स्पर्श करना, जिन्दगीभर उससे सेवा करवाने का भाव और इन्दु के विवाह के बाद श्रीधर का दुःखी होना आदि प्रसंग हमारे मन में सवाल पैदा करते हैं । श्रीधर की इस चेष्टा

को प्राकृतिक शारीरिक परिवर्तन के रूप में भी देखा जाना चाहिए । उस वक्त श्रीधर नासमझ और बच्चा था । अतः श्रीधर पर यह आरोप कहाँ तक सही है ?

आदर्श जीवन जीनेवाला श्रीधर संवेदनशील इन्सान है । श्रीधर तीन बच्चे का पिता होते हुए भी रत्ना के प्रति अनुराग बढ़ाता है, परंतु बाद में अपने अनुराग को एक कोने में दफन कर देता है । श्रीधर उस समय बहुत ही कमजोर पड़ जाता है जब रत्ना 'तुमि आभार शा मि' कहकर हमेशा के लिए बिदा लेती है। श्रीधर रत्ना के लिए अपने आपको अपात्र मानता है ।

“जो किसी भी भांति तुम्हारे योग्य नहीं न वैसा मनोबल है, न संकल्प वो तो मात्र परिस्थितियों के कमजोर पुतले हैं । जो कि अंधेरे में अंधेरे तक यात्रा किया करनेवाले हजारों, लाखों साधारण कमजोर में से एक है ।”⁷⁴

अंत में इतना ही कह सकते हैं कि श्रीधर मानवीय चेतना का वैष्णवी व्यक्तित्व है । श्रीधर मानवता का मसीहा और वीर पुरुष है । वह महाभारत का नहीं मध्यम वर्ग युधिष्ठिर है ।

आत्मपीड़न तथा दायित्ववहन का करुणा विगलित चरित्र शिवशंकर (उत्तरकथा खण्ड - I, II)

उत्तरकथा खंड-I और II पढ़ने के बाद उसके नायक या प्रमुख पात्र को लेकर हमारे मन में अवश्य प्रश्न उठता है कि नायक या प्रमुख पात्र किसे माना जाये। नायिका के दृष्टिकोण से सोचा जाए तो दुर्गा के पति त्र्यम्बक को नायक के रूप में प्रतिष्ठित करना चाहिए । त्र्यम्बक भले ही आदि से अंत तक पूरे उपन्यास में छाया रहा हो परंतु दुर्गा के भाई शिवशंकर के चरित्र में जो ताकत है, जो प्रभाव है वह त्र्यम्बक में नहीं । शिवशंकर के करुणाविगलित आध्यात्मिक पुरुष रथ के सामने संस्कारी, सद्गृहस्थ, सरल और संवेदनशील त्र्यम्बक का व्यक्तित्व फीका मालूम पड़ता है । अतः नायक के रूप में शिवशंकर ही खरे उतरते हैं । शिवशंकर के द्वारा ही हमें सांसारिक जिम्मेदारी निभाते हुए आध्यात्मिक पथ पर अग्रसर होने का संदेश मिलता है ।

रमण आचार्य और गोदावरी देवी के बड़े पुत्र तथा दुर्गा के भाई शिवशंकर उत्तरकथा के नायक नहीं महानायक प्रतीत होते हैं । भारतीय संस्कृति ऐसे कर्म पुरुषों से गौरवान्वित है । जीवन को नियति का खेल मानकर संघर्षपूर्ण परिस्थितियों का सामना करना, विपरित परिस्थिति में भी विचलित न होना, संसार में रहकर ही संसार को समझना शिवशंकर के व्यक्तित्व के महत्त्वपूर्ण पहलू हैं ।

शिवशंकर गरीब कर्मकांडी ब्राह्मण का पुत्र है । दिखावे में एकदम देहाती और अव्यवहारू । युवावस्था में ही हैजे की बीमारी के कारण पिता और दो भाइयों को गँवा देता है । पिता और भाइयों की मौत शिवशंकर को वितरागी बना देती है । जब तक पिताजी थे शिवशंकर एकदम गँवार, आलसी और फूहड़ थे । उसे जितना काम सौंपा जाता उतना ही करता था । जैसे ही पिता की मृत्यु हुई विधवा माँ की जिम्मेदारी शिवशंकर के संपूर्ण व्यक्तित्व को बदल देती है । शिवशंकर पिताजी की संपत्ति का मालिक नहीं बल्कि रक्षक बनकर, पिता की गैरहाजिरी में माँ की सेवा करता है । शिवशंकर आजीवन ब्रह्मचारी रहकर निर्मोही जीवन जीता है ।

शिवशंकर निर्लेप, स्थितप्रज्ञ एवं कर्मयोगी व्यक्ति है । पिताजी की खेती को संभालता है । पिताजी ने गाँव में एक बगीचा खरीदा था जिसमें केवडास्वामी का जीर्ण-शीर्ण मंदिर था । शिवशंकर मंदिर का जिर्णोद्धार करके बगीचे में ही घास की कुटिया बनाकर साधनामय जीवन बिताना शुरू करता है ।

शिवशंकर आज्ञाकारी, सेवापरायण एवं जल की भाँति निर्मल है । वह माँ को तकलीफ न हो इस बात का अवश्य ध्यान रखता है । साधु-पुरुष शिवशंकर का बाहरी वर्णन करते हुए नरेश जी लिखते हैं कि -“गेहुआ वर्ण, सुदीर्घ नासिका, किंचित बड़े नेत्र, ब्रह्मचारी व्यक्तित्व माथे पर पंचकेशी धोती कुर्ता-दुपट्टा ।”⁷⁵

शिवशंकर में आसक्ति और अनासक्ति का अजीब संगम है । संसार के प्रति अदृश्य विरक्ति के कारण माँ को उन्होंने स्पष्ट कह दिया था कि वंश राजा रामचंद्र जी का भी नहीं रहा इसलिए वह पुत्र की शादी की कामना छोड़ दे । शिवशंकर संसार की क्षणभंगुरता पर अपने विचार प्रकट करते हुए माँ को समझाता है कि -

“ऐसे कर्म करो जिजी कि वे कर्म बाद में रहे । बड़े से बड़े महल, किले नहीं रहते । बड़े-बड़े राजवंश नहीं रहे । यहाँ बहुत रहने की चिन्ता करने वाला ही सबसे पहले नहीं रहता है जिजी सब कुछ भगवान पर छोड़ दो।”⁷⁶

शिवशंकर कोरे चिंतन का विरोधी है । वह कर्म और श्रम का आग्रही है । गाँव का उद्धार और लोगों को स्वनिर्भर बनाना उसके जीवन का ध्येय है । शिवशंकर की खोज अपने भीतर के नारायणत्व को जगाने की है । उसका मानना था कि मनुष्य मात्र में दिव्यस्वरूप ईश्वर का वास है । प्रत्येक मनुष्य को अपने भीतर बैठे परमात्मा को खोजना चाहिए । समर्पण में ही जीवन की सार्थकता है ।

शिवशंकर जाति-पाँति, मेरा-तेरा की संकुचित भावना से दूर वैश्विक स्तर पर सोचने की हिमायत करता है। “उसका चिंतन था अपनी आत्मा को जगाओ। उसी दिन सर्वात्मभाव आ जाएगा । सारे जातिगत, देशगत, कालगत बंधन हट जाएंगे । सांसारिक प्रपंच बने ही इसीलिए है कि तुम्हारी परीक्षा बराबर ली जा रही है । एक बार परीक्षित हो जाओ । दीक्षित हो जाओ । बस उस दिन अक्षय हो जाओगे।”⁷⁷

शिवशंकर मानते हैं कि संसार दीमक की तरह है, समय-समय पर उसे झाड़ना-पोंछना पड़ता है । दीन-हीन संत्रस्त प्राणियों के प्रति खयाल रखने से बड़ी न कोई प्रार्थना है न पूजा । शिवशंकर अपने विचारों को चरितार्थ भी करता है । शिवशंकर अपने रिश्तेदार के पुत्र गोविंद को दत्तक लेता है । उसे पढ़ा-लिखाकर वकील बनाने तक की जिम्मेदारी अपने खुद के पुत्र की तरह ही निभाता है ।

शिवशंकर बड़े संयमी है । विवाह और सांसारिक बंधनों से मुक्त रहनेवाले शिवशंकर के वैरागी हृदय में जब विधवा गायत्री के प्रति कोमल भावनाएँ जगती हैं तब स्त्री-पुरुष सहज आकर्षण की प्राकृतिक घटना को वे साक्षी भाव से देखते हैं । वे न दंभ करता है और न अपने विचारों को ढंकने की कोशिश करता है । पचास वर्ष की प्रौढ़ावस्था में पहुँचे शिवशंकर का युवामन गायत्री को देखकर अनुभव करता है कि -“मानवीय मन का कौतुक देखने-भोगने और अनुभव करने का यह प्रथम अवसर था । संपूर्ण देह जैसे कसी हुई सितार हो गई थी और वादक ने अभी उस

वाद्य को मात्र देखा भर कि मन का निषाद पंचम षड़ज अपने-अपने स्थान से बज उठने को आकुल लगे । ‘‘78

गायत्री के संदर्भ में शिवशंकर महसूस करता है कि स्त्री को लेकर वह इतना व्यस्त कभी नहीं रहा और स्त्री की आवश्यकता शरीर के संदर्भ में ही होती है ऐसा नहीं मानसिक जरूरत भी होती है । गायत्री की मौन संवेदना का संपूर्ण स्वीकार करने के बाद वे अपने आप को एक सीमा में बांध देते हैं । शिवशंकर गायत्री की भावना को ठुकराते नहीं है । वे जानता है कि दूर रहने में ही दोनों का कल्याण है ।

बाहर से वितरागी, ब्रह्मचारी और जितेन्द्रिय शिवशंकर का आंतरिक क्लेवर अत्यन्त कोमल एवं ऋजु है । गायत्रीदेवी पति से उपेक्षित रही । शिवशंकर उस स्त्री की करुणता और विह्वलता को पहचानता है । किसी कामवश दूर के रिश्तेदार के घर जा रहे शिवशंकर और गायत्री रेलवे के डिब्बे में न केवल एक-दूसरे के सुख-दुःख की कथा सुनाते हैं, बल्कि कुछ हद तक दोनों रागात्मक आकर्षण का स्वीकार भी करते हैं । रेल के डिब्बे में रात्रि के अंधकार में वे दोनों जब थोड़ी क्षण के लिए एक-दूसरे में एकाकार होते हैं तब शिवशंकर की अनुभूति कुछ इस प्रकार थी - ‘‘सहज ही उन्होंने गायत्री को कंधे से लगा लिया और उसकी लपलपाती पलकों के माध्यम से गायत्री को अपने में डूबने को देखते रहे । गायत्री की वह थरथराती देह और इस सब का स्पर्श उन्हें भी लगा कि वह मात्र स्पर्श नहीं कर रहे हैं बल्कि बहुत कुछ संप्रेषण भी कर रहे हैं ।’’79

गायत्री की ओर आकर्षण बढ़ने के बाद शिवशंकर की दृष्टि में परिवर्तन आता है । अब गायत्री का सौन्दर्य उसे आकर्षित करने लगा था । अब गायत्री के साथ बैठकर घण्टों बात करने का मन होता था, परंतु शिवशंकर अपनी पात्रता अच्छी तरह से समझते हैं । यह आशिकी इस उम्र में ठीक भी नहीं थी ।

शिवशंकर संतोषी व्यक्ति है । गायत्री और उनके बीच की कुछ रागात्मक क्षणों को वे जन्मजन्मांतर की प्राप्ति की क्षण मानते हैं । शिवशंकर सहज आकर्षण के बाद भी अपनी इन्द्रियों पर काबू रख सकता है । जो कुछ क्षण मिल ही गई है उतने में

ही परम संतोष का अनुभव करके स्वयं को सार्थक समझता है। पूर्णिमा की चाँदनी रात में छत पर खड़ी गायत्री को वे कहते हैं कि -“सब कुछ कहा नहीं जाता गायत्री ... । कितनी सुखद परंतु कैसी सुगंधमयी आत्मीय आज की रात्रि अब पूर्णतया बीतने के बिन्दु पर है । हो गया आत्मीय संसार । अनेकों तो पूरे जीवनभर आत्मीयता का एक क्षण भी नहीं मिल पाता ।”⁸⁰

ब्रह्मचारी दीखनेवाले पुरुष को भी प्रेम, स्त्री आदि की कामनाएँ सताती है। शिवशंकर भी गायत्री का स्नेह प्राप्त करके अपने आपको धन्य समझता है । उन्हें लगता है कि -“गायत्री तुम्हें प्राप्त नहीं किया जा सकता परंतु तुम्हारे द्वारा आज प्राप्ति का परम सुख आस्वाद मिला गायत्री ! विश्वास करो संसार में आना सफल हो गया ।”⁸¹

गायत्री के साथ बिताये क्षणों को परमात्मा द्वारा ली गई कसौटी मानकर शिवशंकर अपनी रागात्मकता को भीतर स्थिर कर देते हैं । वे अनासक्त बनकर अपने अपूर्ण कर्म को पूर्ण करने में व्यस्त हो जाते हैं ।

शिवशंकर आत्मनिष्ठ और कर्तव्यनिष्ठ है । वह सांसारिक मायाजाल दूर किसी महत्त्व की प्राप्ति में अपना जीवन समर्पित कर देता है । वह सारे कर्तव्य पूर्ण होते देखकर उर्ध्वयात्रा के लिए हिमालय निकल पड़ता है । यात्रापथ पर निर्मल भाव से गायत्री और गायत्री के स्नेह को याद करता है ।

“गायत्री ! तुम्हें प्रत्येक क्षण स्मरण किया है परंतु अपने लिए नहीं तुम्हारे ही लिए । अपने लिए स्मरण करके च्युत ही करता जबकि तुम्हें अच्युत होना है और इसमें मेरा इतना तो सहयोग हो ही सकता था कि स्मरण के माध्यम से तुम्हें भी इस लीलाभूमि में उपस्थित किए हूँ ।”⁸²

हिमाच्छादित प्रदेश में शिवशंकर गायत्री के स्मरण को एक क्षण के लिए भी नहीं भूले । वड़ पंड़े के हाथों डायरी और पत्र भेजता है । डायरी और पत्र पढ़कर शिवशंकर के प्रेमी हृदय का तो परिचय होता ही है, साथ में जीवन संबंधित चिंतन उनकी साधुता का दर्शन करवाते हैं । प्रेम अजर, अमर है, देहातीत है । प्रेम स्मरण

ही स्मरण है । शिवशंकर मृत्यु की अंतिम क्षण तक गायत्री का स्मरण करता है । शिवशंकर अपने देहत्याग के पूर्व परमलीला भाव का वर्णन करते हुए कहता है - “उठो शिव प्रेरणा कितने प्रसन्न भाव से खिलखिला रही है । किसी के प्रति भी कोई भाव का अब कोई अर्थ नहीं ... केवल निर्वेद - केवल वह प्रतिबिंब की लीला थी । लीला - माया का खेल समाप्त हो गया । जल में देखो कैसी प्रशांत स्फटिक उज्ज्वल हिम शांति विराजमान है । केवल तत्त्व !! केवल शिव !! ॐ शांति: शांति: शांति: ।”⁸³

शिवशंकर की मृत्यु किसी महायोगी की मृत्यु का एहसास कराती है । अतः आदि से अंत तक शिवशंकर का चरित्र एक आध्यात्मिक भाव लेकर पूरी पवित्रता के साथ हमारे समक्ष प्रस्तुत होता है । शिवशंकर कोई व्यक्ति न होकर एक अवतार मालूम पड़ते हैं । शिवशंकर के उज्ज्वल चरित्र की आभा और देवत्व रूपी कर्म ही उसे नायक रूप में स्थापित करते हैं ।

मातृस्नेह से वंचित बालक उदयन (धूमकेतु एक श्रुति) :

नरेश मेहता ने ‘धूमकेतु एक श्रुति’ तथा ‘नदी यशस्वी है’ उपन्यास लिखकर शुद्ध मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों को आश्चर्य में डाल दिया । दोनों उपन्यासों में मनोविज्ञान तत्त्वों का, लक्षण का प्रयोग इस तरह नरेश जी ने किया है कि इसे मनोवैज्ञानिक उपन्यास कहे जाने में अतिशयोक्ति नहीं होगी ।

मनोवैज्ञानिक उपन्यास में पात्रों की मनःस्थिति और अन्तर्मन की भावना को मुख्य रूप से चित्रित किया जाता है । इस दृष्टि से देखें तो ‘धूमकेतु एक श्रुति’ का बाल उदयन तथा ‘नदी यशस्वी है’ का किशोर उदयन के चरित्र-चित्रण में मनोविज्ञान का भरपूर सहारा लिया गया है ।

प्रस्तुत उपन्यास में नरेश मेहता ने धूमकेतु एक श्रुति में मातृप्रेम से वंचित बालक उदयन के मन की विविध ग्रंथियाँ जैसे अहम्, प्रेम और सेक्स का सूक्ष्म अध्ययन करके उदयन के भीतर छिपी दमित वासना तथा यौनविकृति का कलात्मक निरूपण किया है ।

मनोवैज्ञानिकों के अनुसार बाल्यावस्था में घटित घटनाओं का प्रभाव मनुष्य पर जीवनभर अक्षुण्ण रहता है । बचपन की हीन भावनाएँ व्यक्ति को सारी जिन्दगी परेशान करती है । उदयन भी हीन भावना का शिकार बनकर समस्यात्मक बच्चा बन जाता है ।

मनुष्य मूलतः वह नहीं है जो ऊपरी सतह पर दिखता है, बल्कि वह है जो अपने भीतर अनभिव्यक्त रूप से छिपा हुआ है । उसका जितना अंश बाहर दिखाई देता है वह भी चेतन की उपज नहीं है उस पर भी परोक्ष रूप से अचेतन का नियंत्रण और प्रभाव होता है । अचेतन में मनुष्य की कुछ आदिम वासनाएँ रहती है । वासना को व्यक्ति जैसे-जैसे दमित करता है वह अपने मूल जगह पर लौट आती है ।

उदयन के संपूर्ण चरित्र का बस यही सार है । प्रत्येक बालक का व्यक्तित्व स्वतंत्र होता है । मनोविज्ञान एक से छः साल तक की अवस्था को प्रारंभिक बाल्यावस्था कहते हैं और छः से बारह साल तक की अवस्था को उत्तर बाल्यकाल अवस्था कहते हैं । इस उम्र में बालक के लिए प्रेरणा, प्रेम तथा प्रोत्साहन आवश्यक होता है । इस संवेदनशील उम्र में बच्चे की इच्छाएँ तथा आवश्यकताएँ ध्यान में रखनी चाहिए । इस उम्र में बच्चे का मन अनेक प्रश्न करता है । यदि ऐसी स्थिति में उसके ऊपर ठीक से ध्यान न दिया गया तो बच्चा असलामती और उपेक्षा भाव महसूस करेगा । आगे जाकर संकोची, एकांकी तथा खामोश बन जाता है या उद्वंड, आवारा और विद्रोही । ऐसी स्थिति बच्चे को समस्यात्मक बना देती है ।

पारिवारिक सरमुखत्याशाही भावना बच्चे को आक्रमक बना देती है, जैसे बच्चे का झूठ बोलना, आवारापन करना, स्कूल से पीछा छुड़ाना, चोरी-छिपे बाजार की चीजें खाना इत्यादि । असामान्य व्यवहार करनेवाले बच्चे को मनोविज्ञान की परिभाषा में समस्यात्मक बालक कहा जाता है । ऐसा नहीं कि समस्यात्मक बालक बुद्धिशाली नहीं होता, वह कभी-कभी उम्र से भी ज्यादा बुद्धिशाली होता है । वह संवेदनशील और चतुर होता है । बालक के व्यक्तित्व निर्माण में पारिवारिक पृष्ठभूमि का बड़ा योगदान होता है ।

उदयन के बचपन की शुरुआत कुछ इस प्रकार हुई थी -“.... वृद्धत्व पिता का मौन स्वाहात्व एवं दीदी की सहज करुणा ये तीनों ही मुझे आरंभ से ही प्राप्त हुए और मैंने जीवन आरंभ ही किया उस बुझती हुई बड़े घर की भट्ठी पर जिसमें एक कप पानी को तपाने की शक्ति शेष नहीं रह गई थी । केवल क्षार, एंठे बुझे कोयले का ढेर अंतिम श्वास लेती हुई आंच ।”⁸⁴

उदयन अपने पिताजी की तीसरी पत्नी की संतान है । वह अपनी माँ को ठीक तरह से जाने-पहचाने, कि माँ की मौत हो जाती है । घर में सौतेली दीदी ने माँ की जगह भरने की कोशिश की, परंतु उदयन का मन उन्हें स्वीकार न सका । उदयन पिता की वृद्ध बुआ को माँ कहता है । उसका बाल मन मित्र की सुंदर युवा माँ को देखकर बार-बार प्रश्न करता है कि “सब की माँ युवान है । मेरी माँ बूढ़ी क्यों है ? मेरी माँ नंदन की माँ की तरह सुंदर क्यों नहीं ? औरों की माँ तो नहीं मरती मेरी माँ क्यों मर गई ।”

उदयन का बचपन मातृस्नेह से वंचित रहा । माँ की तरह प्रेम देनेवाली दीदी की भी जल्दी शादी हो गई । उदयन एकाकी बनकर प्रेम के लिए भटकता है । वह अन्य स्त्रियों में माँ को खोजता है । दूर की रिश्तेदार स्त्रियों ने सहानुभूति तो जताई किन्तु स्नेह नहीं दिया । उपेक्षा के कारण उदयन बचपन में ही हीनताग्रंथि का शिकार हो गया । वह सोचता था कि -“मैं दिनोंदिन हीन-भावना से ग्रस्त रहा जो माँ थी वे अभिभाविका ही थी । बा (दादा) के प्रति मैं स्पष्ट बहुत बाद में हुआ पिताजी कोई संबंध होता है इसे समझने के लिए मुझे पिता की मृत्यु तक रुकना पड़ा ।”⁸⁵

मनोविज्ञान के अनुसार हीनताग्रंथि में से भय और उपेक्षा भाव उत्पन्न होते हैं । उदयन भी भयभीत अवस्था में जीता है । वे बिल्ली के डर के कारण दीदी से सटकर सोता है और उसे डरावने सपने भी आते हैं । उदयन का मन क्रमशः कमजोर हो जाता है । यही बीमारी उसे आगे जाकर प्रलाप और बेहोशी में धकेल देती है । अंधश्रद्धालु परिवारवाले उदयन को एक डॉक्टर के बदले झाड़फूँक के लिए

ओझा के पास ले जाते हैं। ओझा का हवनकुंड, नागदेवता की मूर्ति तथा ओझा की बड़ी-बड़ी लाल आँखें देखकर उदयन भयभीत हो जाता है। वह कहता है कि -“इस दृश्य को देखकर मेरी हड्डियों तक में घिन भर उठती है। मैं चीख पाड़ना चाहता हूँ। देखते-देखते मेरी आँखें क्रमशः अँधी होने लगती है। कनपटियों की नसों की आवाज तक मैं सुन रहा होता हूँ और मैं अपने को खोल की तरह उलट लेता हूँ।”⁸⁶

हृद से ज्यादा अनुशासन बच्चों में विकृतियाँ भर देता है । उदयन भी स्कूल से भाग जाता है, चुपके-चुपके बीड़ी या सिगरेट पीता है, अपने ही घर में चोरी करता है या बवजह हडदंग मचाता रहता है । उदयन को परपीड़न में विशेष आनंद आता है । वह खुश होकर परिवारवालों का जीना हराम कर देता है ।

मनोवैज्ञानिक ह्युंग तथा अलफ्रेड दोनों मानते हैं कि छः साल के बाद बच्चों में कामवासना पैदा होती है । यौन इच्छाएँ बाल मानस में कई प्रश्न पैदा करती है । मने में उठनेवाले प्रश्न कभी-कभी ज्यादा परेशान कर देता है ।

उदयन ने संयुक्त परिवार में ऐसे जातीय दृश्य देखे और मुहल्ले की स्त्रियों से अनेक जातीय जीवन संबंधी बातें सुनी जो उसे नहीं सुननी चाहिए । जब जातीय जीवन संबंधी जिज्ञासा को तृप्त करना चाहा बुजुर्गों, रिश्तेदार और मुहल्ले की स्त्रियों ने यह पाप है, गंदा है कहकर उदयन को टाल दिया । उदयन के प्रश्नों के उत्तर न मिलने पर उसमें छिपी दमित वासना प्रबल बनती है और वह स्त्री शरीर को सूक्ष्म दृष्टि से देखता है । धार्मिक विधि के लिए निर्वस्त्र चाची जब गाय को रोटी देने जाती है, तब उदयन का मन होता है कि वह चाची का स्तन मुँह में ले ले । इतना ही नहीं उदयन जिसे अपनी माँ की तरह मानता है उस मुखिया की बेटी वल्लभा के बारे में सोचता है -“क्या वल्लभा काकी माँ की भाँति निर्वस्त्र नहीं हो सकती ? क्या मैं कभी भी माँ के कत्थई स्तन चन्द्रमाँ मुँह में नहीं ले सकूँगा ? माँ ! ! !... में पुकारना चाहता हूँ कि मुझे अपने में समेट ले ।”⁸⁷

उदयन की ठीक ढंग से परवरिश करने वाली न कोई स्त्री थी, न कोई उसके

सवालों के योग्य उत्तर देनेवाले लोग । दीदी को बच्चा होनेवाला है । इस बात को परिवारवाले पेट में फोड़ा है कहकर टाल देते हैं, जबकि मुहल्ले की औरतें दीदी को आठवा महीना चल रहा है इस प्रकार समझाते हैं । दीदी को बच्चा होनेवाला है इस बात को लेकर मन में सवाल उठता है कि बच्चा पेट में कैसे आता है ? हवेली के मुखिया की विधवा बेटी वल्लभा ने भी पेट से होने के कारण आत्महत्या कर ली थी । उदयन ने सुना तो प्रश्न हो आया कि क्या वल्लभा को भी बच्चा होनेवाला था ? एक ओर उदयन को प्रश्नों का समाधानकारी उत्तर नहीं मिल रहा था तो दूसरी ओर उसकी उम्र के कारण शरीर में हो रहे परिवर्तन से परेशान था । परिणाम यह आता है कि उदयन की काम प्रवृत्ति दमित होकर अचेतन मन में कुंठा का रूप धारण करती है । कुंठा के कारण व्यक्ति हताश और निराश हो जाता है । स्वयं को एकाकी महसूस करता है । कुंठा का प्रबल आवेग स्वप्न बनकर व्यक्ति के दिलो-दिमाग पर छा जाता है ।

प्रस्तुत उपन्यास में नरेश मेहता ने उदयन को परेशान करनेवाले कई स्वप्नों का वर्णन किया है । उदयन के मन में वल्लभा के तीसरे महीने को लेकर जो प्रश्न था वह स्वप्न में डरावना रूप धारण करता है । सपने में मृत वल्लभा अपने तीन महीने के बच्चे के साथ उदयन को दिखाई देती है ।

“मचान पर वही अलवान वाली देह लकड़ी का ठिठरा निर्जीव मुख करवट लेता है । लकड़ी की पलकें उघड़ती है । आँखें दृष्टि पहनती है और तीन माह के बच्चे को लकड़ी का स्तन थमा कर चबर-चबर दूध पीने की आवाज होती है और मैं चीखकर संज्ञाशून्य हो रहा होता हूँ ।”⁸⁸

उदयन के आरंभिक जीवन की साथी दीदी की शादी होने के पश्चात् उदयन उनके घर जाता है । रात के वक्त उदयन को सोता छोड़ दीदी जीजाजी के कमरे में चली जाती है । उस समय तंद्रावस्था में उदयन की स्थिति का वर्णन करते हुए लेखक लिखते हैं कि -“आधी रात है । मैं सपने में शायद अपने को किसी बड़े रेगिस्तान में बिलकुल अकेला पाता हूँ । इधर-उधर दौड़ने लगता हूँ लेकिन कहीं

कुछ नहीं केवल सुनसान रात की अंधेरी दूरियाँ मैं हडबड़ाकर जाग जाता हूँ । बिस्तर पर दीदी नहीं होती है मैं धबरा जाता हूँ ।⁸⁹

प्रस्तुत विधान में सुनसान रात की अंधेरी दूरियाँ उदयन के स्नेहविहीन जीवन का प्रतीक है । जीवन रूपी रेगिस्तान में वह बिलकुल अकेला है । यह अकेलापन उसे सपने में भी चैन से सोने नहीं देता ।

स्वप्न में व्यक्ति अपूर्ण इच्छाओं की पूर्ति करता है । दिनभर में घटित घटनाएँ कभी डरावने रूप में तो कभी सुंदर रूप धारण करके सपने में आती है । बचपन में नंदन की माँ ने बनाये पापड़ उदयन खाने के लिए उठाता है, परंतु चाची पापड़ खाने नहीं देती और छीन लेती है । यह घटना उसे सपने में आती है -“रातभर सपने में आम के पापड़ ही पापड़ । नदी में बहते हुए पेड़ों पर लटके हुए । आकाश में उखड़े हुए देखता हूँ । बादल घिर आते हैं और आम के पापड़ बरसने लगते हैं । मैं उन्हें उठा-उठाकर काकी माँ पर चिल्लाते हुए फेंकता हूँ । ला ये पापड़ एक-दो, चार, सात, दस ले लो और मैं नींद में सुबकने लगता हूँ ।⁹⁰

चेतन अवचेतन के द्वन्द्व के कारण व्यक्ति का व्यक्तित्व विभाजित हो जाता है । मानसिक द्वन्द्व स्वाभाविक विकास में बाधक बनते हैं । व्यक्ति के मन की विभिन्न अवस्थाओं में अवसाद की स्थिति करुण होती है । व्यक्ति कभी-कभी सब कुछ छोड़कर आत्महत्या का विचार करता है या स्वयं को पापी मानता है । उदयन पाप-पुण्य के काल्पनिक भय से व्याकुल हो जाता है । मानों यमदूतों ने उसे बांध दिया हो और उसके सिर पर आरी चल रही है । उसे किसी ने खोलती कढ़ाई में उबलने के लिए फें दिया गया हो ऐसा अनुभव होता है । कीड़ों, जानवरों से भरे एक कुंड में कोई उसके शरीर का मांस नोंच रहा है । उदयन भयानक दृश्य देखकर -“.... और मैं चीख के साथ मुठ्ठियाँ कसे अचेत हो रहा हूँ ।⁹¹

उदयन के संपूर्ण व्यक्तित्व का अभ्यास करने के पश्चात् हम कह सकते हैं कि उदयन को आवारा, उद्बुद्ध, आक्रामक, भयभित, यौनवासना से परेशान, कमजोर बनाने के पीछे अनपढ़, अज्ञानी, अंधश्रद्धालु परिवार तथा आसपास के लोग जिम्मेदार हैं ।

प्रेम से वंचित तथा अच्छी परवरिश न होने के कारण बालक क्रमशः कैसे समस्यात्मक बालक बन जाता है इसका उदाहरण उदयन है । जो सोचता है कि - “वह दिन कब आयेगा कि जब ये लोग बच्चे होंगे और तब मैं बड़ा होकर इन्हें भी ऐसे ही झिड़क दूँगा ।”

उपन्यास के अंत में अच्छे चरित्र की कामना के साथ उदयन को चाचाजी के साथ महु भेज दिया जाता है ।

संवेदनशील, आवारा, उदंड, विद्रोही किशोर उदयन (नदी यशस्वी है):

स्वतंत्रता के पश्चात् लिखे गए उपन्यासों में नायक की परंपरागत धारणाएँ बदलने लगी थी । स्वतंत्रता से आजतक ऐसे अनेक उपन्यास लिखे गये जिससे नायक बालक या किशोर रहे हैं । नरेश मेहता ने अपने दोनों उपन्यास ‘धूमकेतु एक श्रुति’ तथा ‘नदी यशस्वी है’ में क्रमशः बालक उदयन तथा किशोर उदयन को नायक के रूप में प्रतिष्ठित किया है ।

‘नदी यशस्वी है’ का नायक किशोर उदयन है । ‘धूमकेतु एक श्रुति’ का बालक उदयन अच्छी पढ़ाई और संस्कार के लिए अपने चाचा के साथ महु आता है । यहाँ आकर उदयन की समस्या व्यापक रूप धारण करती है । समस्यात्मक बालक उदयन से परिवारवाले भी तंग आ चुके थे । वे चाहते थे कि उदयन चाचा के साथ रहकर चाचा जैसा बन जाए । उदयन गाँव छोड़कर चाचा की बड़ी कोठी में रहने के लिए चला आया । नौकर-चाकर के बीच भी उदयन अकेला पड़ जाता है । ऊपर से चाचा का कड़क अनुशासन और थोपे गए संस्कारों के बीच उदयन का मन कहीं नहीं लगता ।

गाँव का गँवार उदयन आते ही हीनभावना का शिकार होता है । उसके पास न कोट है न हाफपेंट फिर भी अपनी तुलना अंग्रेज बच्चों के साथ करता हुआ सोचता है कि - “मेरे पास सिवाय उदास हो जाने के और क्या रह जाता है और मैं सच ही इतना उदास हो गया कि यदि संभव होता तो अपने ये हाथ-पैर तक अपने में सिमेटे किसी एक समयहीन कालातीत निर्जन में चला जाता जहाँ कभी ऐसे गोरे

चिकने हाथ-पैरवाले बच्चे न दिखते ।’⁹²

स्थानांतरण की समस्या से ग्रस्त व्यक्ति उदास, एकाकी, लघुताग्रंथि के शिकार, जिद्दी, क्रोधी और पूर्व स्मृतियों से परेशान हो जाता है । उदयन भी स्थानांतरण समस्या का भोग बना हुआ है । शहर में आकर भी उदयन गाँव की गलियाँ, स्कूल, दुकानें, गाँव की विशिष्ट व्यक्ति तथा अपने परिवार में घटित करुण घटना को भूल नहीं पाता ।

उदयन पहली बार चाचा के साथ क्लब जाता है, जहाँ उसे सब विचित्र प्राणी की तरह घूरते रहते हैं । अंग्रेज अफसरों के बच्चों से मिलते समय उदयन संकोच तथा लज्जा का अनुभव करता है । उदयन चाचा के कहने पर शहरी बच्चों के साथ दोस्ती तो रखता है परंतु गाँव के आवारा दोस्तों के साथ जो आनंद आता था वह यहाँ कहां था । गाँव की मस्ती साहजिक थी जबकि यहाँ का आनंद थोपा गया अनुभव होता था । शनैः शनैः वह चाचा द्वारा बनाए गए कायदे-कानून का भंग करने लगा । स्कूल से भागकर नर्मदा की ऊँची-नीची भयावह कछारों में घूमना, चोरी-चोरी इमली मंगवाकर खाना, नदी में तैरना, स्मशान में शब के ऊपर रखे कफन और रुपये को उठाना आदि उदयन का शौक बन जाता है । ब्रह्म मूहुर्त में गायत्रीमंत्र का पाठ करना उदयन को अच्छा नहीं लगता । चाचा की गैर-हाजिरी में उदयन को लगता है कि -“आकाश कितना बड़ा गहरा है । दिन अपनी अनंत संभावनाओं के साथ यहाँ से वहाँ तक सुवासित बिखर उठता है । एक नदी का समस्त जल मुझमें प्रवाहित होकर मुझे स्नानानित कर जाता है । अजीब मीठा-मीठा-सा लगने लगता है । कहीं कोई नहीं केवल आप ।’⁹³

उदयन चाचा की निगरानी से निजाद पाकर कबूतर की तरह उड़ना चाहता है । वह सोचता है कि -“एक बार भी यदि मुझे आकाश की इस नीलिमा में तैरने को मिल जाए तो फिर कभी लौटकर यहाँ न आऊँ ।’⁹⁴

महत्वाकांक्षी उदयन अपने वर्तमान से छुटकारा पाने के लिए सिंदबाद की तरह नाव लेकर दूर-दूर निकल जाना चाहता है -“चाहने लगता हूँ कि मछलियों की

गंधवाली एक बड़ी नौका के साथ ऐसे ही भटककर मैं भी किसी निर्जनता में पहुँच जाऊँ जहाँ पहुँचकर यह वर्तमान ही न रहे इसकी स्मृतियाँ तक झुठला जाए ।⁹⁵

फ्रायड के अनुसार कड़े शासन तथा पारिवारिक स्नेहविहीन जीवन बालक को निषेधात्मक प्रवृत्ति करने प्रेरित करता है । चाचा के मना करने पर भी इमली खाता है और कोट पहने बिना स्कूल जाता है । उदयन के पास अच्छी सर्जनात्मक प्रवृत्ति है। वह बाल सखी सुनंदा के साथ चित्र बनाता है। बालसहज जिज्ञासा तथा कुतूहल से किताब पढ़ता है फिर भी जातीय जीवन संबंधी उत्तर न मिलने पर यौनविकृति का शिकार बन जाता है । असामाजिक प्रवृत्तियाँ करने के बाद वह अपराध भाव का अनुभव करता है और पाप धोने के लिए गायत्री मंत्र का सहारा लेता है ।

उदयन को बचपन से बताया गया था कि स्त्री-पुरुष अलग हैं परिणामस्वरूप स्त्री संबंधित कुतूहल उदयन को सीढ़ी पर काम करती हुई मजदूरनी के छीतरे घाघरे में झाँकने के लिए मजबूर होता है । बचपन में एकाद बार चाची को निर्वस्त्र देखा था चूँकि यह शारीरिक रचना का भेद उदयन के बाल मानस पर बहुत कुछ धुँधला-सा था ऊपर से नौकर लछमन उसे काका के कमरे के भीतर कुछ और ही दिखाता है । स्त्री-पुरुष के प्राकृतिक संबंध को सहज ढंग से ले सके उतनी उदयन की उम्र नहीं है । चाचा मडलोई की विधवा के साथ निर्वस्त्र होकर क्यों सोये हैं ? स्त्री-पुरुष में यह सब क्या और क्यों घटित होता है ? लछमन ने दिखाये दोनों दृश्य उदयन भूल नहीं पाता । वह अच्छे-बूरे और पाप-पुण्य के द्वन्द्व में फँस जाता है । मजदूरनी वाला दृश्य देखकर उदयन सोचता है कि -“उस दिन लछमन के बनाये जाने पर मैंने उन फैली टांगों में देखकर अच्छा किया या नहीं । रोज संध्या करते हुए गायत्री मंत्र का जाप करते हुए स्त्रोतपाठ करते हुए वही दृश्य अनेक बार घूम जाता ।⁹⁶

चाचा के कमरे में चोरी-छूपे देखना पाप था । यह बात उदयन का पीछा नहीं छोड़ती । पाप शब्द याद आते ही उसे पसीना आता है । वह कांपते हुए कहता है कि -“लछमन यह सब देखना पाप है और मैं पाप नहीं कर सकता ।⁹⁷

“रोज रात को जब मैं परेशान होकर करवट बदलता हूँ तब वही दो देह आपस में गुंथी हुई फिर आ जाती है लछमन ने मुझे यह क्यों दिखाया ।”⁹⁸

स्त्री-पुरुष के संबंधों को लेकर उदयन के मन में उथल-पुथल मच जाती है । एक रहस्यात्मक जाल गुंथ जाता है । वह इस संबंध से आशंकित होता है -“छोटे-बड़े सब इन चीजों से क्यों कतराते हैं ? लेकिन यदि ये इतनी खराब है तो फिर ये घटती ही क्यों है ?”⁹⁹

योग्य उत्तर न मिलने के कारण उदयन के अंदर यौन इच्छाएँ जागृत होती हैं । बीमार बाल सखी सुनंदा के कमरे में सोया हुआ उदयन सुनंदा से स्पर्श करके इस रहस्य का उत्तर खोजने का प्रयत्न करता है ।

“मेरी आँखों में चेतना में सुनंदा की ठोढ़ की प्रवाहित जल हो जाती है जिसे मैं देखकर संतोष नहीं प्राप्त कर सकता । उसे छू कर स्पर्श बोध के द्वारा अपने भीतर एकांत में अनुभव कर लेना चाहता हूँ । ... और मैं उसे छू लेता हूँ।”¹⁰⁰

स्त्री स्पर्श उदयन को परम शांति देता है । वह सोचता है -“उसकी पीठ से मैंने अपना पेट सटा लिया कितनी घोर शांति थी कि हम अपनी साँस को सुन रहे थे।”¹⁰¹

यौनविकृतियों से परेशान उदयन अपनी परितृप्ति हेतु नौकरानी की विधवा बेटा कावेरी से शारीरिक संबंध बांधता है । उदयन की जिज्ञासा को शांत करने के बहाने युवा कावेरी अपनी उद्दाम प्यास बुझाती है -“वह मेरे ओठों को वैसे ही पीती रही जैसे कि गाय या बैल जल पर अपनी थूथ रख देते हैं और जल पीते रहते हैं।”¹⁰²

उदयन कावेरी से यौन संबंध स्थापित करके कावेरीमय बन जात है । पहले अनुभव के पश्चात् उदयन की यौनवृत्तियाँ तीव्र हो उठती है । अब वह स्त्री संग के बिना रह नहीं सकता । उदयन और कावेरी रात के अंधेरे में अवसर मिलने लगे । उदयन कहता है -“मुझे लगा कि कावेरी मेरी गति है, ओह कावेरी.... स्त्री क्या सच ही यह होती है? झरती कमल की असंख्य पंखड़ियों के बीच एक गौर देह - स्त्री...!

कावेरी ! स्त्री क्या सच ही ऐसी होती है।',¹⁰³

मनोविज्ञान के अनुसार व्यक्ति असामाजिक कार्य करने के बाद स्वयं को दोषी मानकर दंड देता है । दंड देने के दो मार्ग होते हैं प्रथम खंडित प्रवृत्तियाँ और दूसरी सर्जनात्मक । उदयन के चरित्र में दोष के साथ कुछ अच्छे संस्कार भी हैं । ट्यूशन मास्टर लालसिंह ने पढ़ाते समय उदयन को बलिदान देनेवाले वीरों की कथा सुनाई थी जिससे उदयन काफी प्रभावित हुआ और उसके मन में भी कुछ कर गुजरने के भाव जागृत हुए । वह भी देश के लिए कुछ करना चाहता है । चाचा अंग्रेजों के पक्ष में बोलते हुए भारत स्वतंत्रता आंदोलन के खिलाफ बोलते हैं । उदयन ने महात्मा गांधी का नाम सुना था । भगतसिंह, राजगुरु तथा चंद्रशेखर देश के लिए फांसी पर चढ़ गए थे वह भी जानता था । उपन्यास के अंत में क्रमशः सुनंदा से लेकर वल्लभा, कावेरी तथा मित्र की बहन किरण दीदी की ओर आकर्षित होनेवाला उदयन अपना रास्ता बदल लेता है । अब उदयन बागी गज़लें खरीदकर, गांधी टोपी पहनकर, जोरशोर से चिल्लाना चाहता है - वंदे मातरम् ... ।

अंत में उदयन के द्वारा नरेश जी यही संदेश देना चाहते हैं कि - बच्चे बुरे नहीं होते परिवार तथा परिस्थितियाँ और दोस्त उसे राह से भटका देते हैं । समाज तथा परिवार का कर्तव्य है । बच्चा गुमराह हो इससे पहले उसके मन को पढ़कर उसकी योग्य परवरिश करनी चाहिए ।



: संदर्भ :

क्रम	कृति, लेखक	पृ.क्रमांक
1.	डूबते मस्तूल , नरेश मेहता	89
2.	----- वही -----	89
3.	----- वही -----	100
4.	----- वही -----	161
5.	----- वही -----	184
6.	----- वही -----	186
7.	----- वही -----	167
8.	----- वही -----	220
9.	----- वही -----	229
10.	----- वही -----	172
11.	----- वही -----	70
12.	स्वातंत्र्योत्तर उपन्यास में मानव मूल्य और उपलब्धियाँ, डॉ.भगीरथ बड़ौले	3
13.	दो एकान्त, नरेश मेहता	21
14.	----- वही -----	35
15.	----- वही -----	37
16.	----- वही -----	38
17.	----- वही -----	174
18.	----- वही -----	176
19.	----- वही -----	175
20.	----- वही -----	37

क्रम	कृति, लेखक	पृ.क्रमांक
21.	----- वही -----	108
22.	----- वही -----	133
23.	----- वही -----	137
24.	दो एकान्त के परिचय से, सावित्री सिन्हा आवरण पृष्ठ	
25.	प्रथम फाल्गुन, नरेश मेहता	58
26.	----- वही -----	128
27.	----- वही -----	171
28.	----- वही -----	174
29.	----- वही -----	231
30.	----- वही -----	231
31.	यह पथ बन्धु था, नरेश मेहता	324
32.	----- वही -----	328
33.	----- वही -----	170
34.	----- वही -----	172
35.	----- वही -----	591
36.	----- वही -----	464
37.	उत्तरकथा खंड- I, नरेश मेहता	78
38.	----- वही -----	79
39.	----- वही -----	80
40.	----- वही -----	101
41.	----- वही -----	101
42.	----- वही -----	107
43.	----- वही -----	118

क्रम	कृति, लेखक	पृ.क्रमांक
44.	उत्तरकथा खंड-॥, नरेश मेहता	501
45.	डूबते मस्तूल, नरेश मेहता	48
46.	डूबते मस्तूल, नरेश मेहता	73
47.	----- वही -----	81
48.	----- वही -----	66
49.	दो एकान्त, नरेश मेहता	121
50.	----- वही -----	165
51.	----- वही -----	73
52.	----- वही -----	13
53.	----- वही -----	153
54.	----- वही -----	168
55.	----- वही -----	178
56.	प्रथम फाल्गुन, नरेश मेहता	26
57.	----- वही -----	163
58.	----- वही -----	150
59.	----- वही -----	161
60.	----- वही -----	162
61.	----- वही -----	180
62.	----- वही -----	186
63.	----- वही -----	251
64.	यह पथ बन्धु था, नरेश मेहता	47
65.	----- वही -----	445
66.	----- वही -----	427

क्रम	कृति, लेखक	पृ.क्रमांक
67.	----- वही -----	576
68.	आधुनिक हिन्दी उपन्यास, सं. डॉ. नरेन्द्र मोहन	219
69.	----- वही -----	218
70.	यह पथ बन्धु था, नरेश मेहता	103
71.	----- वही -----	513
72.	उत्तरकथा खंड- I, नरेश मेहता	130
73.	----- वही -----	495
74.	----- वही -----	113
75.	----- वही -----	510
76.	----- वही -----	511
77.	उत्तरकथा खंड- II, नरेश मेहता	298
78.	----- वही -----	
79.	धूमकेतु एक श्रुति, नरेश मेहता	101
80.	----- वही -----	67
81.	----- वही -----	101
82.	----- वही -----	201
83.	----- वही -----	319
84.	----- वही -----	47
85.	----- वही -----	29
86.	----- वही -----	102
87.	----- वही -----	18
88.	नदी यशस्वी है, नरेश मेहता	10
89.	----- वही -----	81

क्रम	कृति, लेखक	पृ.क्रमांक
90.	----- वही -----	87
91.	----- वही -----	87
92.	----- वही -----	132
93.	----- वही -----	134
94.	नदी यशस्वी है, नरेश मेहता	135
95.	----- वही -----	137
96.	----- वही -----	102
97.	----- वही -----	146
98.	----- वही -----	165
99.	----- वही -----	165

अध्याय - ५

नरेश मेहता के उपन्यासों में वर्णित कुछ विशिष्ट वर्ग के प्रतिनिधि - गौण तथा गौणातिगौण चरित्र

(क) गौण चरित्र (पुरुष)

- (1) वान निकोलस (डूबते मस्तूल)
- (2) लज्जाशंकर तथा ईच्छाशंकर (धूमकेतु एक श्रुति)
- (3) क्लाइड तथा मेजर आनंद (दो एकान्त)
- (4) देसाई साहब उर्फे राव साहब (नदी यशस्वी है)
- (5) सैकंड मास्टर लालसिंह (धूमकेतु एक श्रुति)
- (6) जज सौरिन्द्रनाथ उर्फे नाथबाबू (प्रथम फाल्गुन)
- (7) महादेव शुक्ल (उत्तर कथा खंड- I - II)
- (8) गिरधर ठक्कर (उत्तर कथा खंड- I - II)

(ख) गौण चरित्र (स्त्री)

- (1) गुणवंती (यह पथ बन्धु था)
- (2) सावित्री (यह पथ बन्धु था)
- (3) श्रीमती कृष्णादेवी शुक्ल (उत्तर कथा खंड - I, II)
- (4) गायत्री देवी (उत्तर कथा खंड - I, II)

कुछ विशिष्ट वर्ग पर आधारित गौण तथा गौणातिगौण चरित्र :

❖ स्त्री चरित्र

⇒ समाज उपेक्षिता वेश्याएँ

⇒ स्त्री जीवन का करुण राग : विधवाएँ

⇒ पति उपेक्षिता स्त्रियाँ

⇒ मानसिक रूप से विक्षिप्त स्त्रियाँ

⇒ संकुचित पारिवारिक भावनावाली झगड़ालु स्त्रियाँ

⇒ अल्हड़ किशोरियाँ समझदार किन्तु लाचार पुत्रियाँ और पुत्रवधूएँ

⇒ स्वतंत्र व्यक्तित्ववाली आधुनिक स्त्रियाँ

❖ पुरुष चरित्र

⇒ राजनीति से जुड़े चरित्र

⇒ क्रांतिकारी चरित्र

⇒ कम्युनिस्ट विचारधारावाले चरित्र

-
- ⇒ जीवनयज्ञ में होम होनेवाले संसारी तथा असंसारी चरित्र
 - ⇒ निठल्लें अविवाहित आलसी जीवनवाले विधुर तथा अन्य तेजस्वी चरित्र
 - ⇒ राजा-रजवाड़े से जुड़े चरित्र
 - ⇒ संकुचित मनोवृत्तिवाले चरित्र
 - ⇒ असद मनोवृत्तिवाले चरित्र
 - ⇒ उदंड, आवारा, साहसी, पराक्रमी ग्राम्य बच्चें
 - ⇒ सौम्य, नम्र, विवेकी, संस्कारी शहरी बच्चें
 - ❖ विविध नौकरियों से जुड़े चरित्र
 - ⇒ प्रेसमालिक प्रकाशक
 - ⇒ कर्मकांडी हवेली तथा मंदिर की पूजा करनेवाले चरित्र
 - ⇒ जमींदारी से जुड़े चरित्र
 - ⇒ नाममात्र के उल्लेखवाले सहायक चरित्र

एक निष्ठ प्रेमी वान निकोलस : (डूबते मस्तूल)

डूबते मस्तूल की नायिका रंजना को परिस्थितिवश कई पुरुषों के साथ जीवन बीताना पड़ता है । उन पुरुषों में 'कर्नल टोमस', 'मेजर जास्टीन', 'वान निकोलस', 'सैयद अकलंक' तथा कुलकर्णी आदि हैं ।

ये सभी पात्र कथा-विकास में मदद करते हैं । उन पात्रों में से सैयद की हत्या रंजना कर देती है । अकलंक क्रांतिकारी होने के कारण जेल चला जाता है । कर्नल टोमस तथा मेजर जास्टीन युद्ध मोरचे पर मारे जाते हैं । उपन्यास के अंत में कुलकर्णी बहुत कम समय के लिए पुरुष के धिनौने रूप में हमारे सामने आता है । उसके साथ का रंजना का वैवाहिक जीवन क्षणिक साबित होता है । उपन्यास के मध्य में आनेवाला चरित्र वान निकोलस का है, जो अपने अनोखे चरित्र के कारण पाठकों के हृदय पर छा जाता है ।

रंजना के साथ शादी करने हेतु मेजर जास्टीन अपने वतन हौलेन्ड में 'आर्म्सटर्डम' आता है । आरंभ में वे दोनों जास्टीन के मित्र 'वान निकोलस' के घर ठहरते हैं । वान धनिक पिता का पुत्र है । वान को राजनीति में भाग लेना अच्छा लगता है । वह एक अच्छे कलाकार के रूप में पूरे हौलेन्ड में प्रसिद्ध हैं । वान संवेदनशील, प्रकृतिप्रेमी और चित्रकार हैं । पियानो बजाने में सिद्धहस्त है ।

वान अपने बंगले में एकाकी जीवन बीता रहा है । संगीत कार्यक्रम में हिस्सा लेने इंग्लैंड, फ्रांस तथा जर्मन तक हो आया है । उनके चित्रों में श्रेष्ठ भावों और सुंदर रंगों का समन्वय है । वान ने भारतीय संगीत, चित्र और शिल्प के बारे में बहुत कुछ पढ़ रखा है । वह भारत जाकर तानसेन की कब्र पर एक ओपेरा तैयार करना चाहता है ।

वान का व्यक्तित्व उमदा और स्मित मोहक है । वह एक पागल प्रेमी है । कला जैसी ही गहराई, प्रेम में भी देखने को मिल जाती है । मित्र-पत्नी रंजना के सौंदर्य पर मुग्ध वान उसे अपनी प्रेरण मानता है । रंजना के साथ का सानिध्य पाकर वह स्वीकार करता है कि किसी अज्ञात में उसे किसी की प्रतीक्षा थी और अब तक

उसकी कला अपूर्ण थी । रंजना का आगमन उसकी कला को पूर्ण बनाता है । रंजना उसके चित्र की नायिका बन जाती है । रंजना समक्ष प्रेम प्रस्ताव रखते हुए कहता है कि -

“मैं किसी चिर प्रतीक्षा कर रहा था जिस दिन ‘जोन’ के साथ तुम हौलेन्ड में उतरी मुझे लगा कि मैं जिन मस्तूलों की प्रतीक्षा कर रहा था वे मस्तूल धीमे-धीमे लौटते हुए मेरे कुहरे भरे तटों पर आ रहे हैं ।”¹

वान का प्रेम दैहिक नहीं दैविक है । उनका प्रेम निःस्वार्थ है । रंजना के जीवन में अनेक पुरुष आये हैं । आज भी वह शादी-शुदा है । शायद रंजना उसकी प्रतीक्षा के सिवा कुछ नहीं हो सकती फिर भी वह रंजना को चाहता है । वह सोचता है -“इससे क्या होता है मैं फिर प्रतीक्षा करूँगा कि वे मस्तूल फिर कभी मेरे तटों पर, मेरे ही बनकर लौटें । प्रतीक्षा करना मेरा धर्म है और प्रतीक्षा कर भी रहा हूँ।”²

वान वफादार और संयमी है । रंजना का पति जास्टिन युद्ध मोरचे पर मारा जाता है उस समय रंजना वान के घर में ही आश्रित थी फिर भी वह न रंजना के एकाकीपन का फायदा उठाता है न उसकी अवस्था पर लाचारी जताता है । रंजना के द्वारा शादी का प्रस्ताव ठुकराये जाने पर भी वह जबरदस्ती नहीं करता ।

“रंजना जो मुझे नहीं मिल सकती मैं उसकी कामना कर सकता हूँ किन्तु अपनी कामना पूर्ति के लिए नीचे स्तर तक उतर जाऊँ तो वह नहीं होगा ।”³

जास्टिन की मौत के बाद मित्र पुत्र आसित को अपने पुत्र की तरह पालता है । आसित की बीमारी में अपने चित्र बेचकर इलाज के रुपये इकठा करता है । वान नास्तिक होते हुए भी आसित की शुभकामना के लिए पहली बार चर्च जाता है । वह आसित को ‘वानगोग’ की तरह महान चित्रकार बनाना चाहता है । आसित भी अपनी माँ रंजना से भी ज्यादा प्रेम वान निकोलस से करता है । इस कारण माँ के साथ भारत आने की बजाय वान के पास ही रुक जाता है ।

वान का प्रेम निर्बाध और गंगा की धारा के समान निर्मल है । उसके प्रेम में

हिमालय-सी पवित्रता और ऊँचाई है । वह रंजना के प्रति कभी आशंकित नहीं हुआ । भारत जाकर कुलकर्णी जैसे बौने पुरुष के साथ शादी करनेवाली रंजना को वह बधाई देता है । कालांतर जब रंजना और कुलकर्णी के बीच झगड़ा होता है और रंजना को घर त्यागना पड़ता है । ऐसे वक्त में भी वान रंजना को हौलेन्ड बुलाता है और शादी का प्रस्ताव रखता है ।

वान कोमल हृदय का व्यक्ति है । उसकी भाषा तथा रंजना को लिखे पत्र में काव्यत्व झलकता है । उसकी अंतिम इच्छा रंजना के साथ समुद्र हवा में घूमने की थी । बीमार वान रंजना को पत्र लिखता है -“इधर बहुत बीमार रहने से लगता है जीवन के तट पर पहुँच चुका हूँ । यदि तुम्हारे हाथ में हाथ डालकर एक बार भी उन्मुक्त होकर समुद्री हवा में अपने केश तथा वस्त्र उड़ाते हुए घूम सकता तो मुझे सदा के लिए गहरा संतोष प्राप्त होता क्योंकि संतोष ही मुक्ति है।”⁴

वान की निष्ठा अखंड और अविचलित है । वान की सेवा करनेवाली नर्स वान से शादी करना चाहती है परंतु वान उससे शादी नहीं करता । हौलेन्ड की अनेक सुंदरियाँ वान को चाहती थीं और शादी करना चाहती थीं परंतु वान की प्रतीक्षा केवल रंजना के लिए थी । रंजना की श्वेत मौन छवि को पलकों में धारण कर मृत्यु की अंतिम क्षण तक वह इंतजार करता है । मरने से पहले वह रंजना को अंतिम पत्र लिखता है -“आज मेरी अंतिम रात्रि है और खिड़कियों के पल्लों के बाहर दूर-दूर तक बरफ जर रही है । कल यही बरफ मेरी कब्र पर उजले ठंडे फूल की तरह हलके-हलके बहुत ही होले-होले झरेगी । यह पत्र मिलने तक मैं कब्र में पहुँच जाऊँगा ।”⁵

अंत में वान की मृत्यु के बाद रंजना कहती है -“वान का वह प्रेम मुझे हमेशा चर्च पर लगे पवित्र क्रॉस की तरह ही दिव्य, महान लगा करता था । चर्च में प्रार्थना करते हुए बच्चों के स्वरों में भी मुझे वान का प्रतीक्षा गान सुनाई देता था ।”⁶

अंत में इतना ही कि प्रस्तुत उपन्यास के अनेक दुष्चरित्र पुरुषों से अलग वान निकोलस का चरित्र यह संदेश दे जाता है कि नारी भोग्या नहीं है बल्कि पुरुष की

प्रेरणा शक्ति है ।

कर्मठ व्यक्ति के प्रतीक लज्जाशंकर (धूमकेतु एक श्रुति) :

लज्जाशंकर जीवन को संघर्ष मानकर अपमान, अवमानना, गरीबी, उपेक्षा आदि का मुकाबला करते हुए अपने बलबुते पर कुछ हासिल करनेवाले व्यक्ति का प्रतीक है । ऐसे व्यक्ति का जीवन मंत्र अविरत कर्म होता है । लज्जाशंकर के पास गीता पढ़ने का समय नहीं था । वह गीता के 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' वाक्य को जीवन में सार्थक करनेवाला योद्धा था ।

लज्जाशंकर के दादाजी और बाद में उसके पिताजी भावनगर राज्य के महाराजा के परंपरित राजगुरु थे । पिताजी के सुखी जीवन के कारण लज्जाशंकर की युवानी लापरवाही में बीती थी । खेतों में जाकर बाँसुरी बजाना उसका शौक था । रासलीला तथा नाचने-गाने में वे पूरे राज्य में प्रसिद्ध थे । लज्जाशंकर किसी पटेल की युवती को चाहता था लेकिन एक राजगोर का बेटा पटेल युवती से शादी करे यह महाराज को मंजूर नहीं था । अगर लज्जाशंकर मना करने पर भी गलत कदम उठाता है तो उसकी राजगोर की गद्दी छीन लिए जाने का डर था । परिणामस्वरूप पटेल युवती को दूसरी जगह ब्याह दिया गया । लज्जाशंकर के सपने टूट गये और आघात के मारे भटकने लगा । अचानक पिताजी की मृत्यु उसके सारे जीवन को बदल देती है ।

पिताजी की मौत के बाद उसके बड़े भाई न केवल पिताजी की गद्दी के हकदार बनते हैं बल्कि पिताजी की सारी संपत्ति छीन लेते हैं । ऐसे वक्त में लज्जाशंकर बिलकुल एकाकी और अनाथ बन जाते हैं । पिताजी ने अपनी मौत से पहले लज्जाशंकर को शादी कर लेने के लिए विवश किया था । पिता के अवसान के बाद लज्जाशंकर अपनी पत्नी और युवा बहन को लेकर राजस्थान में मालवा चले आते हैं ।

लज्जाशंकर ने मालवा आकर कठोर परिश्रम किया । खेतों में मजदूरी और जिन मिल में काम करते-करते दो बीघा जमीन और दो बैल खरीद किए । शनैः

शनैः कठोर परिश्रम करते काफी जमीन खरीदकर समाज में प्रतिष्ठा हासिल कर ली। अब तो तीन बेटे के पिता लज्जाशंकर केवल जमींदार ही नहीं बल्कि जिलाधीश बेटे के पिताजी के रूप में भी जाने लगे थे ।

लज्जाशंकर निराभिमानी एवं विनम्र है । अच्छी-खासी सामाजिकता के बीच भी वे अपने बूरे दिन भूले नहीं हैं । वे मिथ्याभिमानी नहीं हैं फिर भी जब जमींदारी की खरीदी के समय गाँव वाले उसे नीचा दिखाने के लिए किसी अन्य व्यक्ति को बोली बोलकर जमींदारी खरीदने के लिए उकसाते हैं तब वे अपना स्वमान बनाये रखने के लिए चारसौ रुपये की जमीन चार हजार में खरीदते हैं । जमींदारी खरीदने के बाद वे बड़े प्रसन्न होकर संतोष की साँस लेते हुए सोचते हैं कि -“जिस गृहस्थी की गाड़ी को वह छप्पन की अकाल की भूखी, प्यासी, फटी-पथरायी धरती पर से खींचकर लाये थे उसे किसी मजबूत विश्वसनीय भूमि पर खड़ा कर सके ।”⁷

सदासयी, सरल एवं प्रबल आत्मविश्वासी लज्जाशंकर के जीवन के अंतिम दिन पीड़ा में बिते । जीवन में सुख ही सुख था कि अचानक लज्जाशंकर के जीवन में दुःख की शुरुआत हुई । सिंहस्थ के मेले में उसकी पुत्रवधू तथा खुद की पत्नी की हैजे की बीमारी के कारण मृत्यु हो गई । आज तक के संघर्षों ने उसे नहीं ताड़ा था परंतु स्वजनों की मौत ने उसे तोड़ दिया - “लज्जाशंकर बगवई पर बैठकर फूट पड़े। इच्छाशंकर के निकट पिता साक्षात् कर्म, धैर्य और साहस के प्रतीक थे । आज जब उन्हें ही इस प्रकार रोते देखा तो वह जड़ हो गये ।”⁸

लज्जाशंकर जीवन की अंतिम क्षण तक खंडित परिवार के बीच जीते हैं । पुत्र इच्छाशंकर की तीन-तीन बार शादी करने के बावजूद भी पुत्र को विवाह सुख नहीं मिला । लज्जाशंकर की तीसरी पुत्रवधू की अपने ही बेटे के हाथों मार-पीट करने से मौत होती है । अंतिम दिनों में उन्हें बहुत कुछ देखना पड़ा । बड़े पुत्र इच्छाशंकर का कोठे पर जाना, दूसरे पुत्र सूर्यशंकर द्वारा सारी संपत्ति हड़पना, तीसरे पुत्र रत्नशंकर की दरिया में बह जाने से मौत होना आदि घटनाएँ लज्जाशंकर को जीते जी मार देती हैं । अंत में दिल का दौरा पड़ने से उसकी मृत्यु हो जाती है ।

अंत में इतना ही कह सकते हैं कि लज्जाशंकर बीसवीं सदी के कर्मठ, संघर्षशील पुरुषों का प्रतिनिधित्व करते हैं ।

असंग, अनासक्त योगी इच्छाशंकर (धूमकेतु एक श्रुति) :

उदयन के पिताजी इच्छाशंकर प्रस्तुत उपन्यास का अत्यधिक करुण पात्र है । असंग, अनासक्त, आज्ञाकारी, निर्मोही, कर्तव्यनिष्ठ, सीधे-सादे, सरल, परिवार के लिए चुपचाप होम होनेवाले, धीर-गंभीर और प्रौढ़ इच्छाशंकर का पूरा जीवन दुःख में ही बीतता है ।

संघर्षी, कर्मठ पिता से प्रेरणा पाकर बचपन से इच्छाशंकर ने अपने जीवन को संवारा था । बचपन से ही छोटे भाई बहन का खयाल रखना, गाय-भेंस को सानी-पानी देना, खेतों में बैल हांकना आदि कामों में इच्छाशंकर माता-पिता की मदद करते थे ।

इच्छाशंकर अपने छोटे दोनो भाइयों को पढ़ाने हेतु स्वयं अपनी पढ़ाई-लिखाई बंद करके पटवारीगीरी की नौकरी स्वीकार लेते हैं ।

इच्छाशंकर अलग ही मिट्टी के बने हुए थे । कोई उसे हद से ज्यादा महत्त्व दे इन्हें अच्छा नहीं लगता है । सब्जी में नमक कम हो या खाना ठीक न बना हो तो भी चुपचाप खा लेते । औरों की छोटी-सी मदद को भी कृपा समझकर नतमस्तक हो जाते थे । “वह किसी के द्वारा एक गिला जल दिए जाने पर भी वैसे ही भारवत् हो जाते जैसे देव कृपा हो ।”⁹

दुःखद, खंडित वैवाहिक जीवन उसको जड़ बना देता है । वे कोमल स्वभाव के इन्सान थे परंतु असंगभाव के कारण लोग उसे कठोर मानते थे । वास्तव में देखे तो -“इच्छाशंकर जड़भरत नहीं थे पर एक अव्यक्त विवशता उनमें हमेशा के लिए घर किए हुए थी ।”¹⁰

इच्छाशंकर परिवार में उपेक्षित-सा रहे । उसके मौन हाहाकर को कभी किसीने नहीं सुना । कर्तव्य की वेदी पर उसकी निजी इच्छाएँ होम होती चली गई । इच्छाशंकर पहली पत्नी को बहुत चाहते थे इस कारण दूसरी शादी ही नहीं करना

चाहते थे । परंतु परिस्थितिवश उसे और दो शादी करनी पड़ी तब भीतर-ही-भीतर टूट गये । चालीस साल की उम्र में अठारह साल की लड़की के साथ ब्याह करना उसे ठीक नहीं लगा । पिताजी की आज्ञा को शिरोधार्य मानकर वे शादी करते हैं । वे सोचते हैं -“उनका संसार सदा के लिए निष्प्रभ हो चुका है। अब केवल कर्तव्य है। उन्होंने जो एक मौन स्वप्न बुना था कि वह अत्यन्त स्नेह एवं शांति भाव से परिवार को समर्पित करते जाएंगे जिसमें स्वतः उनकी कोई महत्त्वकांक्षा नहीं होगी वरन समर्पण होगा ताकि शेष परिवार फल-फूल सके।”¹¹

इच्छाशंकर तीसरे विवाह को कर्तव्य समझकर कर तो लेते हैं परंतु अपनी युवान पत्नी को हृदय से कभी न स्वीकार पाया । अपनी व्यथा को भूलने के लिए वे शराब पीने लगे और कोठे पे जाकर वेश्या कालिन्दी में अपना सुख ढूँढ़ने की कोशिश करने लगे । वेश्या के साथ के संबंधों को लेकर अंतर्द्वन्द्व पैदा होता है -

“कालिन्दी तो मात्र नारी ही नहीं वेश्या भी तो है । तो क्या वेश्या नारी नहीं होती ? क्या वेश्या किसी अभाव की पूर्ति नहीं कर सकती है ? लेकिन उनका धर्म, संस्कार, परिवार, लोकलाज क्या इसके लिए आज्ञा देता है ?”¹²

इच्छाशंकर अपनी पत्नी को ठीक से रखते थे और सारी जिम्मेदारियाँ अदा करते थे फिर भी कौन-सी ग्रंथि बंध जाती है कि वे कालिन्दी में प्रेम खोजने का प्रयास करते हैं । उसे समाज, दुनियादारी और अपनी प्रतिष्ठा का खयाल था फिर भी कालिन्दी का प्रवेश उसे एक प्रकार की परितृप्ति का अनुभव करवाता है। अपने और कालिन्दी के संबंध को लेकर वे उलझ जाते हैं । कभी उसे कालिन्दी का स्नेह अशरीरी लगता है तो कभी वासनामय ।

“कालिन्दी जब गुनगुनाती है उस वक्त देह उतारे हुए वस्त्रों की भाँति गिरी होती है । केवल अशरीरी भाव उस विराट में संतरित प्रवाहित लगता है । कालिन्दी तृप्तिमूर्ति लगती है ।”¹³

इच्छाशंकर अंजाने में पत्नी की मौत के निमित्त बनते हैं । कालिन्दी के साथ के संबंध से परेशान उसकी तीसरी पत्नी दोनों के नाजायज़ संबंध का विरोध करती

है । सारी जिन्दगी खामोश रहनेवाले इच्छाशंकर ने क्रोध में पत्नी को इतना पीटा कि बेहोशी में ही पत्नी की मौत हो गई । मृत्यु का आघात भूलाने कालिन्दी के पास जाते हैं और शराब के नशे में धूत होकर कहते हैं कि -“कालिन्दी तुम्हारे बारे में मेरे मन में बड़ी से बड़ी वासना है । मैं कायर हूँ । कभी उसे न व्यक्त कर सका न तुम्हें बाँहों में पाकर वैसा कर ही सका जैसा चाहता रहा ।”¹⁴

अंत में कालिन्दी के सामने अपने संकोची व्यक्तित्व का इकरार करते हुए कहते हैं कि -“मैंने कितनी बार कहना चाहा कि कहीं कालिन्दी, मैं तुम्हें प्रेम करता हूँ । किन्तु बताओ क्या कभी कह पाया ? क्योंकि एक गहरा संकोची अपनी पात्रता का बोध अनुक्षण घेरता रहता है कि मैं पिता की भाँति न पुरुषार्थी हूँ न शंकर की भाँति मेरी अपनी विशिष्ट सामाजिक उपलब्धि । बस बराबर यही लगता है कि ग्वाल के यहाँ साँड की जो उपयोगिता है संभवतः वह मेरी भी है ।”¹⁵

अतः इच्छाशंकर प्रस्तुत उपन्यास का करुण राग है जो नरेश जी की लेखनी से निसृत होकर और करुण बन गया है ।

क्लोइड (दो एकान्त) :

प्रस्तुत उपन्यास में क्लोइड का आगमन डॉ. विवेक के मरीज के रूप में होता है । क्लोइड डिब्रुगढ़ में चाय का बड़ा व्यापारी है । क्लोइड व्यावसायिक हेतु जगन्नाथपुरी जाता है, वहाँ बीमार पड़ जाता है । होटल के मैनेजर उसकी देखभाल के लिए डॉ. विवेक को बुलाते हैं ।

क्लोइड किसी को भी मित्र बनाने में माहिर है । अपने वाक्चातुर्य और धनाढ्य व्यक्तित्व के कारण वह डॉ. विवेक को अपना मित्र बना लेता है । उसकी अदा और अंदाज से डॉ. विवेक की पत्नी वानीरा भी आकर्षित होकर मित्र बन जाती है । धीरे-धीरे क्लोइड विवेक-वानीरा के घर में ही नहीं वानीरा के हृदय में भी विशेष स्थान बना लेता है । क्लोइड निःसंतान विधुर है । एकाकी जीवन जीनेवाला छह फीट का गोरा क्लोइड खुले मन और हाथ का उदार व्यक्ति है ।

क्लोइड हँसमुख व्यक्ति है। भात-माछ, बीयर तथा भारतीय संगीत का चाहक

है। जंगल में जाकर शिकार करना, मछलियाँ पकड़ना, ताश खेलना उन्हें पसंद था। वह बीयर की बोतल को औरतों से भी वजनी मानता है। शराबों के इतिहास पर एक ग्रंथ तैयार करना उसका सपना है। क्लोइड के कमरे की सजावट में उसके समग्र व्यक्तित्व की झलक साफ नज़र आती है। लेखक ने वर्णन में लिखा है - “क्लोइड के कमरे में उन्नीसवीं शती के फैशन के अनुरूप बच्चों, कुत्ते आदि से फ्रेमित चित्र सजे हुए थे। बारहसिंघों शैरों के दो-चार मुँह तख्ती पर जड़े, दीवारों पर जबड़े फाड़े डरावने बनने की चेष्टा में बड़े ही दयनीय लग रहे थे। फायर प्लस पर ईसा की एक बड़ी-सी कांसे की मूर्ति संध्या धूप में चमक रही थी। एक तरफ कोने में नक्काशीदार स्टैण्ड में साफ की हुई चमकती चार बंदुके खड़ी हुई थी।”¹⁶

क्लोइड आंतरिक सौन्दर्य का चाहक है। आम व्यक्ति में जो गुण होने चाहिए वे तमाम गुण क्लोइड में हैं। बंगला भाषा पर उसका अच्छा-खासा प्रभुत्व है। मित्रों को पार्टी देना, भेंट-सौगाद देना उन्हें अच्छा लगता है। क्लोइड अंग्रेज होने के कारण वानीरा के सथ खुले दिन की मैत्री स्वीकारने में संकोच नहीं रखता। उसके एकाकी जीवन में वानीरा की मैत्री कुछ स्पंदन जगाती है। वह वानीरा को मन ही मन चाहता है। वानीरा के एकांत को भरने के लिए वानीरा का संगीत सुनता है, समुद्रस्नान के लिए जाता है, समुद्रतट पर शंख और घोंघे इकठ्ठा करता है, बंगाली उत्सवों में शरीक होता है। इस प्रकार वानीरा के एकांत जीवन में खुशियाँ भरने का प्रयत्न करता है।

क्लोइड की मैत्री अतूट है। समाजसेवी डॉ. विवेक जब बीमार होता है और आर्थिक सहायता की आवश्यकता होती है तब संपूर्ण मदद करके अपना मित्र धर्म निभाता है। क्लोइड वानीरा को मिली स्वतंत्रता का फायदा जरूर उठाता है। क्लोइड की मैत्री वानीरा को डिब्रूगढ़ खींच लाती है। डिब्रूगढ़ में क्लोइड विवेक की डिस्पेन्सरी खुलवाने से लेकर तमाम प्रकार की सहायता करके उदार व्यक्तित्व का परिचय देता है।

क्लोइड वानीरा पर सब कुछ निछावर करने के लिए व्याकुल है। वह वानीरा

को फँसाने का प्रयत्न कभी नहीं करता । यही कारण है कि वानीरा भी क्लोइड के साथ अपने आप को निरापद अनुभव करती है । वानीरा को भी क्लोइड की शालीनता पर नाज़ है ।

“दो-चार पैग शैम्पैन के पीने के बाद मधुर संगीत के वातावरण में भी क्लोइड ने उसे उतना ही शालीन छुआ होगा, जितना कि कोई अत्यन्त सतर्कता में किसी कोमल पाटल दमवाले फूलों को छूता है । स्वयं विवश हो जाता रहा हो पर वानीरा को न तो कभी अवश, न विषम परिस्थिति में खड़ा किया होगा । तभी तो वह क्लोइड के निकट दुर्भेद्य विश्वास अनुभव करती रही है ।”¹⁷

क्लोइड के प्रेम में समुद्री उफान नहीं है । उसका प्रेम धीर-गंभीर और मौन है। उसके प्रेम में न अपेक्षा है, न आग्रह, न विवश करने का भाव न फँसाने की चेष्टा। वानीरा जब उन्हें छोड़कर आनंद के मोहपाश में फँसती है तो वह चुपचाप किसी भी शिकायत के बिना वानीरा के जीवन में से चला जाता है । न कोई आक्षेप न आरोप । वानीरा की मैत्री छूट जाने पर भी क्लोइड के मन में वानीरा को लेकर कोई शंका नहीं है ।

अंत में क्लोइड अपने इन्हीं गुणों के कारण ही पाठकों का आदर और अनुकरणीय चरित्र बन जाता है । वह पाठक के दिलों-दिमाग पर अपने व्यक्तित्व की अमिट छाप छोड़ जाता है ।

मेजर आनंद (दो एकान्त) :

आनंद का प्रथम परिचय मेजरदास के घर आयोजित पार्टी में होता है । वह क्लोइड का मित्र है । आनंद अपनी प्रथम मुलाकात में ही वानीरा और विवेक को अपनी तरफ आकर्षित कर लेता है और वानीरा तथा विवेक मेजर आनंद का दोस्त बन जाते हैं ।

आनंद अत्यन्त सुंदर और आकर्षक व्यक्ति है । उसका बाह्य दिखावा समुद्रगुप्त की सेना के सेनापति जैसा है । आर्य देहवाले आनंद की मुस्कान मूर्तिवत होते हुए भी उसमें सारे भुवन को मोहने की ताकत है । बातें करने का उसका ढंग

मंद गंभीर किन्तु संयमित आवेशवाला है । आनंद को यदि हाफपेंट पहना दिया जाए तो बिलकुल किशोर दिखें । आइसक्रीम से लेकर शराब पीने तक का शौकीन इन्सान है । सबके सामने गंभीर दिखनेवाला आनंद औरों की नकल करने में माहिर है ।

मेजर आनंद एक अच्छा इतिहासविद् है । प्रागैतिहासिक युग से लेकर वैदिक युग के बारे में उसके पास काफी अच्छी जानकारी है । अशोक के आक्रमण से लेकर पुनःजागरण तक की बातें वह मित्रों के सामने करता है ।

आनंद में सबको अपनी तरफ खींचने की कला है । डॉ. विवेक के साथ दोस्ती का हाथ बढ़ाकर वह वानीरा को अपनी तरफ खींचता ही नहीं बल्कि वानीरा को मदहोश बना देता है । स्त्रियों को मुग्ध करने के लिए उसके पास विभिन्न अभिनय कला है । वानीरा के साथ उसकी दोस्ती योजनाबद्ध थी । वह वानीरा को अलंकार तथा कपड़े भेंट में देकर वानीरा के आर्थिक अभाव को भरने का प्रयत्न करते हैं। क्लोइड और वानीरा की मैत्री को खामोश रहकर तोड़ने का प्रयत्न करता है।

आनंद का व्यक्तित्व उन्मुक्त और गंभीर है । वह शिकार खेलने के लिए विवेक तथा वानीरा को अपने साथ जंगल में आने का निमंत्रण भेजता है परंतु डॉ.विवेक किसी गंभीर मरीज़ में उलज जाता है और शिकार पर अकेली वानीरा चल पड़ती है। आनंद विवेक की मित्रता के साथ धोखा करता है । उसके मन में वानीरा को भोगने की तीव्र लालसा जागृत होती है । वह वानीरा को रात्रि के समय गेस्टहाउस के बरामदे में ग्रह-नक्षत्र तथा आकश में स्थित कालपुरुष दिखाने के बहाने बुलाता है। धीरे-धीरे मोहक वाणी और मादक स्पर्श से वानीरा को समर्पण के लिए विवश करता है । उसके स्पर्श में किसी भी स्त्री को मदहोश कर देने की अपूर्व क्षमता है । वानीरा खुद आनंद के बारे में बताती है - “आनंद अपनी सारी आत्म स्वस्थता के बावजूद भी उस पशुराज की तरह लग रहा था जो शिकार हस्तगत करने के बाद उससे अंतिम बार के लिए खोलता है । उसका भारी जबड़ोंवाला सुंदर मुख वानीरा आँखों की राह अपने भीतर बल्कि पेट तक पी गयी थी । ऐसा ही सुंदर जबड़ोंवाला

मुख अपने भीतर चलते हुए अनुभव होने लगा था । और उसे अच्छी तरह से याद है कि दाढ़ी की नीली झाईवाला आनंद का गोरा मुख डूबते चन्द्रमाँ-सा उस पर झुकता ही आया था । उसका पुरुष उसकी नारी से स्वीकृति चाहता था ।¹⁸

आनंद उपन्यास के उत्तरार्द्ध में आता है फिर भी पाठक के दिमाग पर अपनी छाप छोड़ जाता है । उसका उन्मुक्त, स्वच्छंद रोमान्टिक व्यक्तित्व विवेक-वानीरा की वैवाहिक जिन्दगी में आग लगा देता है । वह वानीरा को माँ बना देता है और वापस आने का वादा करके लदाख मोरचे पर चला जाता है । वानीरा और विवेक के बीच आजीवन दरार उत्पन्न करके दोनों की जिन्दगी छिन्न-भिन्न कर देता है । विवेक-वानीरा के खण्डित दाम्पत्य जीवन का खलनायक मेजर आनंद बनता है । जितना पाठक क्लोइड की दोस्ती के सामने नतमस्तक होता है, उतना ही पाठक आनंद की बेवफाई तथा लंपटता पर घृणा करता है । इस प्रकार 'दो एकान्त' उपन्यास के शीर्षक की सार्थकता मेजर आनंद के द्वारा ही सिद्ध हो पायी है ।

देसाई साहब उर्फ़े राव साहब - उदयन के चाचा (नदी यशस्वी है) :

'नदी यशस्वी है' उपन्यास के प्रमुख चरित्र उदयन के समांतर चलनेवाला पात्र उदयन के चाचा का है । किशोर उदयन को आवारा, उदंड और साहसी बनाने में जाने-अनजाने में राव साहब का कड़ा अनुशासन ही जिम्मेदार था । वे उदयन को अच्छे संस्कार दिलाने हेतु गाँव से शहर ले आये थे । देसाई साहब अपने बड़े भाई उदयन के पिताजी से बिलकुल विरुद्ध स्वभाव के व्यक्ति थे । अंग्रेज सरकार के वकील होने के कारण अनुशासनप्रिय तथा वैभवी जीवन स्पष्ट झलकता है ।

एडवर्ड लम्बा कोट, जार्जियन पतलून, पाँव में पंप शू, हाथ में नक्काशीदार छड़ी और इटालियन गोल टोपी के कारण वे अंग्रेज अफसर जैसे दिखते थे । उनका रहन-सहन भी अंग्रेजी ढंग का था । अंग्रेज ढंग की बहुत बड़ी कोठी में ढेर-सारे नौकरों के हाजी, जी हज़ूर के बीच वे शान से रहते थे । केरम तथा चेस खेलना उन्हें ज्यादा पसंद था । वे क्लब, पार्टी तथा पिकनिक के शौकीन थे । फोटोग्राफी उनका विशेष शौक था । उनके पास विभिन्न प्रकार के पाँच कैमरे थे । फोटोग्राफी

पर उन्होंने एक सुंदर पुस्तक भी लिखी थी । उनको ब्रजभाषा अधिक प्रिय थी । उन्होंने ब्रजभाषा के दो संकलन 'कविता कुसुम' नाम से निकाले थे जो स्कूल के पाठ्यक्रम में चलते थे । वे कभी-कभी विद्यार्थियों को फोटोग्राफी तथा विद्वान ब्राह्मणों से पोथी लिखवाकर आर्थिक उपार्जन में मदद भी करते थे ।

राव साहब कला रसिक थे । अपने हाथों चटाई बुनकर अफसरों और मित्रों को भेंट देते थे । उनका रहन-सहन अंग्रेजी ढंग का था फिर भी ब्राह्मण के संस्कार भूले नहीं थे । बड़े सवेरे उठकर, स्नान करके गायत्री मंत्र का पाठ करना और दिन में एक ही बार भोजन करना उसके जीवन का क्रम था । विधुर होते हुए भी उनकी कोठी साफ-सुथरी नज़र आती थी । वे वैश्विक धर्म के हिमायती थे फिर भी धर्म में दंभ और संकुचितता के विरोधी रहे । वे गणेश उत्सव, दशहरे की दुर्गा पूजा तथा ताजिये के जूलुस सभी उत्सवों में शरीक होते थे ।

वे समाज में सम्मानित एवं प्रतिष्ठित व्यक्ति थे । नौकरी के अतिरिक्त कई संस्थानों के साथ जुड़े हुए थे । अपने घोड़े पर सवार होकर पूर्व सूचना दिए बिना कचहरी पहुँच जाते । राव साहब का जीवन बिल्कुल बेदाग था । अपना काम बड़ी ईमानदारी के साथ निभाते । यदि कोई रिश्तत की लालच देता तो उसे दुगुनी सजा करने में संकोच न करते । वे बड़े नीडर, निर्भीक और स्पष्टवक्ता थे । उन्हें सरदार, मडलोई, ठाकुर तथा राजा-महाराजाओं के साथ उठना-बैठना तथा काम करना पड़ता था फिर भी वे कभी किसी से डरे नहीं थे ।

वे किसी भी प्रकार के रूढ़ जीवन के आग्रही नहीं थे । जीव हिंसा से घृणा थी फिर भी अनिवार्यता आने पर सरकार के साथ शिकार करने जंगल में चले जाते थे । उसे अवसर देखकर बदलने में देर नहीं लगती । वे त्रिपुण्ड भी लगाते थे और टाई भी बांधते थे । उनका मानना था कि मुसलमान को आदाब करते और अंग्रेजों को गुडमोर्निंग करते शर्म नहीं आती तो हमें नमस्कार करने में क्यों संकोच हो ।

उनके कपड़ों में विविधता रहती थी । ऋतु अनुसार तथा समयानुसार अपनी वेशभूषा बदलते रहते थे । घूमने के वक्त अलीगढ़ी या किंचित पाजामा तथा घर पर

सदा धोती पहनते थे । जाड़े के दिन तथा यात्रा के दौरान एडवर्ड कोट और जर्जियन पतलून तथा ऑफिस जाते समय अक्सर ऊपर साफा बांधते थे । सरकार या दरबार के आगमन के समय राजाशाही पगड़ी लगाते थे और गर्मियों के दिनों में अचकन तथा शेरवानी पहनते थे ।

देसाई साहब बिन विवादास्पद पात्र है फिर भी विधवा मंडलोई के साथ के उनके संबंध को लेकर समाज में चर्चा होती थी लेकिन राव साहब की हाजरी में किसी का साहस नहीं था कि लोग उनके चरित्र के बारे में कुछ भी कहें ।

वे तेजस्वी ब्राह्मण थे । उनके व्यक्तित्व में एक प्रकार का खास रोब नज़र आता है । अंग्रेज सरकार की कचहरी में नौकरी करते हुए भी अंग्रेजों के पक्षधर नहीं है । उनकी विचारधारा कुछ अलग ही बात बयान करती है -“वैसे मैं गांधीबाबा तथा क्रांतिकारियों की लड़ाई के साथ नहीं हूँ । अरे अंग्रेज सरकार के सामने हमारे राजा-महाराजा तक चूँ नहीं बोल सकते उससे लड़ने ये लोग चले हैं । सिख, मराठा, मुसलमान किसी की भी नहीं चली । उसे बमों के धमाकों से तथा सभी और खादी के द्वारा तुम हटाओगे ? खैर, देखा जाएगा ।”¹⁹

उदयन की नज़र में उसे कठोर अनुशासन में जीने के लिए बाध्य करनेवाले चाचा अभेद व्यक्ति थे । वे बाहर से कठोर मालूम पड़ते थे किन्तु उनके भीतर प्रेम और करुणा का स्त्रोत बहता था ।

अंत में कहे तो उपन्यास में देसाई साहब आदि से अंत तक अदृश्य रहते हैं । उदयन के द्वारा चाचा के चरित्र को उभारने का प्रयास लेखक ने किया । रावसाहब के चरित्र में भले ही अप्रत्यक्ष शैली का सहारा लिया हो परंतु रावसाहब इस उपन्यास का सबसे जीवंत पात्र है ।

सैंकड मास्टर लालसिंह (धूमकेतु एक श्रुति) :

सैंकड मास्टर लालसिंह उपन्यास का गौण चरित्र है । लालसिंह अच्छे शिक्षक और देशभक्त इंसान है । उदयन को सही राह दिखाकर देशसेवा के लिए प्रेरित करने का कार्य सैंकड मास्टर लालसिंह ने ही किया था । लालसिंह उदयन की

नज़रों में मसीहा थे ।

लालसिंह क्रांतिकारी दल के सक्रिय सदस्य थे । वे खाली समय में छात्रों को पढ़ाते थे । विद्यार्थियों में राष्ट्रीय भावना जगाना उनकी शिक्षा का मुख्य ध्येय था । उनके घर भले डाबर एजेंसी का बोर्ड लटकता हो या विद्यार्थियों को ट्यूशन पर बुलाते हो परंतु इसके पीछे चाल थी । लालसिंह इन सब की आड़ में बंगाल में कार्यरत क्रांतिकारियों को खुफिया जानकारी पहुँचाते थे ।

गांधीजी तथा गांधी विचारधारा से प्रभावित थे । इस कारण हमेशा खादी पहनते थे । सादगीपूर्ण जीवन एवं उच्च विचार उसका जीवनमंत्र था । कुर्ता-पाजामा, खादी की टोपी, सांवला वर्ण और इकहरा बदन उसके बाह्य व्यक्तित्व की पहचान थी । वे इतिहासविद थे । इतिहास और भूगोल के साथ-साथ रूस की क्रांति, गांधी, गोखले, तीलक, भगतसिंह जैसे महापुरुषों तथा देशभक्तों के जीवन संबंधी कहानियाँ सुनाते थे ।

लालसिंह की करनी-कथनी समान थी । वे छात्रों को अक्सर कहते रहते थे कि हमारे देशवासियों के पास तन ढंकने के लिए वस्त्र नहीं और हम आवश्यकता से अधिक चीजें रखते हैं । उनका कहना था कि -“उदयन हमारा देश बड़ा गरीब है । हमें कोई अधिकार नहीं कि दो कुर्ते, दो पाजामों से अधिक कपड़े रखें और जरूरत का इतना कपड़ा भी सबको अपने हाथ से कांतना चाहिए।”²⁰

लालसिंह एक कर्मनिष्ठ एवं सिद्धांतवादी इन्सान थे । गांधी विचारों का अपने जीवन में अक्षरशः पालन करनेवाले लालसिंह का घर देखकर कोई भी व्यक्ति कह सकता है कि वे खरे अर्थ में गांधीभक्त व्यक्ति हैं । लेखक वर्णन करते हुए लिखते हैं कि -“लालसिंह जी का घर क्या था जैसे खजूर की चटाई । एकदम धुला-पुंछा अलंकारहीन ! कमरे में एक डोरी पर एक कुरता-पाजामा, बनियाइन तथा तौलिया सुखते रहते । भीतर रसोई घर में दो-एक बर्तन का बक्सा, अखबारों के ढेर तथा एक दरी का टुकड़ा । बिस्तर के नाम पर कोने में एक खाट खड़ी रहती जिस पर गोल तकिया और नाम मात्र का एक बिस्तर था । यही उनकी कुल जमा-जसा थी।”²¹

लालसिंह वैश्विक विचारधारावाले राष्ट्रभक्त थे । उनकी दृष्टि में गांधीजी शांतिदेवता थे तो भगतसिंह उग्रदेवता । उनकी विचारधारा को लेखक ने इस प्रकार स्पष्ट किया है -“उदयन मैं क्रांतिकारी व्यक्तियों को जानता हूँ । उनका मार्ग ठीक है या नहीं इसका निर्णय करनेवाले हम जैसे छोटे लोग नहीं कह सकते । हम तो केवल भक्त बन सकते हैं ।”²²

लालसिंह में देश-प्रेम की भावना इतनी तीव्र थी कि एक जगह उदयन को मातृभूमि के वीर जवानों का चित्र बताते हुए वे रो पड़ते हैं । वे उदयन को कहते हैं -“माँ की आवाज सुनते हो उदयन एक दिन सब को बेड़ियों में जकड़ी भारतमाता की आवाज सुननी होगी ।”²³

अंत में लालसिंह अंग्रेज पुलिस के हाथों गिरफ्तार होकर अपनी मातृभूमि के प्रति अपना ऋण चुकाते हैं । इस प्रकार लालसिंह गांधीयुगीन आदर्श पुरुष के प्रतिनिधि पात्र बनकर हमारे सामने आते हैं ।

जज सौरीन्द्रनाथ उर्फे नाथबाबू (प्रथम फाल्गुन) :

सौरीन्द्रनाथ अवकाश प्राप्त जज तथा गोपा के पिताजी हैं । वे खुद भी धनाढ्य थे और उनका उठना-बैठना भी ऐसे लोगों के साथ ही था । नाथबाबू सामाजिक संस्थाएँ, सार्वजनिक सभाएँ, नगरपालिका तथा वाचनालय जैसी संस्थाओं में कार्यरत है ।

नाथबाबू पढ़े लिखे आधुनिक विचारधारावाले हैं । शादी के पाँच साल बाद प्रथम पत्नी को संतान न होने पर वे दूसरी शादी करते हैं । उनके जीवन की करुणा यह रही कि दूसरी शादी के दिन पहली पत्नी ने पुत्री गोपा को जन्म दिया । अनेक लोगों ने गोपा नाथबाबू की संतान न होने की अफवाह फैलाई । समाज में भी बातें होती थी कि नाथबाबू की प्रथम पत्नी का अन्य पुरुष के साथ संबंध है । नाथबाबू भी अज्ञात में मानते हैं कि गोपा उसकी संतान नहीं है ।

उपन्यास में नाथबाबू और प्रथम पत्नी के बीच का मनमुटाव और श्रीमती नाथ के अन्य पुरुष के साथ संबंधों का उल्लेख कहीं नहीं है । केवल गोपा ने रात के अंधेरे

में पापा और मम्मी के कमरे से चीखने-चिल्लाने की आवाज़ सुनी थी या कभी-कभार साँझ के वक्त घर आ-जानेवाले पापा को देर रात लौटते देखा था। इसके अतिरिक्त लेखक ने नाथबाबू के दाम्पत्य जीवन के सुंदर-असुंदर कोई चित्र नहीं खींचे।

नाथबाबू कर्तव्यनिष्ठ हैं। दूसरी शादी के बाद भी प्रथम पत्नी और पुत्री की जिम्मेदारी अंत तक निभाते हैं। दो पत्नी और उसकी संतान में संपत्ति को लेकर कोई झगड़ा न हो इसका ध्यान पहले से ही रखा था। प्रथम पत्नी और पुत्री को पुरानी कोठी में तथा दूसरी पत्नी और उसकी संतान को नये बंगले में रहने की व्यवस्था कर दी गई थी। नाथबाबू का झुकाव दूसरी पत्नी की ओर अधिक रहा। परिणामस्वरूप उनकी प्रथम पत्नी और पुत्री को न्याय के रक्षक होकर भी न्याय नहीं दे पाते।

नाथबाबू में जुठा दंभ और दिखावेपन की भावना ज्यादा थी। वे अपने ऐश्वर्य को प्रदर्शन हेतु पुत्री गोपा का जन्मदिन मनाते हैं। जन्मदिन पर बड़े-बड़े प्रतिष्ठित व्यक्तियों को आमंत्रित करना तथा जलसे का आयोजन करना आदि के पीछे प्रदर्शन वृत्ति ही नज़र आती है।

नाथबाबू का प्रत्येक कदम सोच-समझकर पड़ता था। वे अपनी दोनों पत्नियों से सतर्क रहते हैं। उसकी दृष्टि में पत्नी गहरा जलाशय थी जिसमें पैठना ठीक नहीं। जब कोई विवाद होता, वे उठकर बैठक रूप में चले जाते। उनका जीवन दो पत्नियों के बीच उलझकर रह गया था। उनकी उलझनों लेखक ने इस प्रकार वाचा दी है -“दोनों घरों के बीच घोड़ागाड़ी की अनंत यात्राएँ कर लेने के बाद भी नाथबाबू यह तय नहीं कर पाये होंगे कि वस्तुतः उन्हें संपूर्ण कहाँ होना चाहिए था।”²⁴

नाथबाबू ने अपनी प्रथम पत्नी के लिए सबकुछ किया फिर भी पत्नी ने उपेक्षिता नारी मानकर नाथबाबू को कभी माफ नहीं किया। दो पत्नी, दो घर और दो परिवार के बीच वे घोड़ागाड़ी लेकर आजीवन भटकते रहे।

“वृंदाधाम और नववृंदा के बीच केवल गोमती ही नहीं थी जिसे नाथबाबू घोड़ागाड़ी से रोज पार कर लिया करते थे पर श्रीमती नाथ का चॉट खाया हुआ

व्यक्तित्व भी था जिसे पार कर सकना नाथबाबू के लिए सर्वथा असंभव था ।²⁵

नाथबाबू परिवार के शोरगुल से दूर रहना पसंद करते थे । उन्होंने सारे संबंधों को धर्म और कर्तव्य के नाते स्वीकारे और निभाये । इस प्रकार नाथबाबू के चरित्र में एक सीधे-सादे धनाढ्य गृहस्थ पुरुष के दर्शन होते हैं ।

महादेव शुक्ल (उत्तरकथा खण्ड - I, II) :

महादेव शुक्ल त्र्यम्बक के पिताजी और दुर्गा के ससुर हैं । वे उज्जैन के सुखी संपन्न ब्राह्मण परिवार के थे । मलमल का अंगरखा, गोल पगड़ी, चौड़े लाल पाट की धोती, गले में दुपट्टा, कान में मोती की बाली, गोरा रंग, भरी मूंछे आदि बाह्य दिखावे से वे कर्मकाण्डी ब्राह्मण ही लगते थे ।

महादेव शुक्ल का व्यवसाय कर्मकांड था । परंतु पीढ़ियों से उनके दादा-परदादा राजगोर का काम करते आये थे । अतः वे राजपुरोहित ब्राह्मणों में धनाढ्य ब्राह्मण माने जाते थे । महादेव शुक्ल के परिवार में लक्ष्मी और सरस्वती की कृपा पितामह के समय से रही है । शायद उनका एक मात्र ऐसा परिवार था जिसे पैरों में सोना पहनने का सम्मान राज्य की ओर से प्रदत्त था । वह भी महाराज के जन्मदिन तथा दशहरे दरबार में सरदारों की पंक्ति में बिठाये जाते थे । सभी श्रीमंत सरदार उनका सम्मान करते थे ।

महादेव शुक्ल विलासी इन्सान थे । उनकी जवानी ऐयासी करने में ही गुजर गई । ऐश्वर्य ने उसे जड़, निष्ठुर, संवेदनविहीन, स्वार्थी, संकुचित बना दिया था । उसने अपनी सौतेली माँ तथा भाइयों को पिता की संपत्ति में से फूटी कोड़ी तक न देकर आजीवन निर्धन रखा था । उसने छल-कपट से संपत्ति इकठ्ठी की थी । वे कपटी और अमानुषी व्यक्ति थे ।

महादेव शुक्ल औरों के सामने बहादुर बने घुमते हैं परंतु पत्नी के सामने बिल्ली बन जाते हैं । प्रथम पुत्रवधू की हत्या करनेवाली और दूसरी पुत्रवधू को त्रास देनेवाली स्वयं पत्नी को चुपचाप सहन करते हैं । उसमें दया या मानवता नाममात्र की भी नहीं थी । पुत्र के दूसरे विवाह के वक्त उसके समधी और उसके दोनों बेटों

की हैजा फैलने से मृत्यु होती है । लाश अभी घर में थी कि वे धाम-धूम से विवाह करने की जिद्द करते हैं । अपनी समधिन और पुत्रवधू के बड़े भाई को धमकाते हुए कहते हैं कि -“सुन लीजिए इस प्रकार ब्याह नहीं होगा ।”²⁶

उपन्यास के अंत में महादेव शुक्ल के चरित्र में परिवर्तन नज़र आता है । वे मानते हैं कि लक्ष्मीस्वरूपा पुत्रवधू को उन्होंने अन्याय किया है । सौतेली माँ तथा भाइयों के साथ अछूता व्यवहार किया है । अपनी सगी बहन-बहनोई के साथ संबंध काट दिए हैं । एक जगह पर खुद बहन के सामने प्रकट करते हुए कहते हैं कि उसके विवश व्यक्तित्व का कारण उसकी पत्नी थी । अपना दुःख प्रकट करते हुए कहते हैं कि -“यह पिशाच व्यवहार शिव ! शिव ! बस यह तेरी भाभी ही ऐसी गांठ है जिसे खोलने में अंगुलियाँ दुःख गयी । यमुना, नहीं तो मैं इतना बुरा नहीं था । अमानवीय भी नहीं था ।”²⁷

अंत में पुत्रवधू दुर्गा से प्रेरणा ग्रहण करके अपनी सौतेली माँ की मृत्यु के बाद सारा क्रिया-कर्म स्वयं करते हैं । कालान्तर महादेव शुक्ल वैभवी जीवन त्यागकर वैरागी बन जाते हैं । उनका कहना था कि -“देख रही हो न संसार का यह मायावी खेल जिसका जो कुछ है अब सब दे देना चाहता हूँ । यमुना, अब कोई स्वाद नहीं रह गया ।”²⁸

उत्तरकथा खंड दो के आरंभ में ही पत्नी के भतीजे द्वारा महादेव शुक्ल की हत्या होती है । इस तरह महादेव शुक्ल एक परंपरित कर्मकांडी संपन्न ब्राह्मण के रूप में अपना अलग व्यक्तित्व छोड़ जाते हैं ।

गिरधर ठक्कर (उत्तरकथा खण्ड - I, II) :

गिरधर ठक्कर गांधीयुगीन, मूल्यनिष्ठ, सरल, ईमानदार व्यक्ति है। वे काँग्रेसी सार्वजनिक सभी के मंत्री हैं। घने घुँघराले बाल, पैरों में कोल्हापुरी चप्पल, तीक्ष्ण आंखों में सदाशयता और सद्भावना का भाव नज़र आता है। वे अत्यंत व्यस्त कामकाजी इन्सान है। वे अपने कार्य के प्रति संपूर्ण समर्पित थे। वे शांत और मितभाषी इन्सान थे। मिजाज़ और तेवर से गिरधर जी चरखा कांतनेवाले नेताओं से

भिन्न थे।

गिरधर ठक्कर दुर्भाग्यशाली व्यक्ति है। उसके पिता की बचपन में मृत्यु हो गई। माँ के साथ रहते हुए भी माँ के सामने खामोश नज़र आते हैं। किसी भी व्यक्ति के साथ संबंधों को लेकर कोई विशेष आग्रह नहीं था। न उसका कोई मित्र था न कोई आत्मीय। माँ के साथ भी उसका व्यवहार औपचारिक था। जब भी वे घर में होते उसकी हालत दयनीय हो जाती। अपने ही घर में उसकी स्थिति को लेखक ने इस तरह प्रकट किया है - “गिरधर ठक्कर अंधेरे कमरे में घिरी अबाबील से विवश यहाँ-वहाँ मुक्ति का द्वार खोजने के लिए टक्कर मारते हैं पर ये काली अंधी दीवारें हैं कि भूलकर भी कभी किसी खिड़की या दरवाजे तक नहीं पहुंचती है। जहाँ से प्रसन्न खुला नीला आकाश न केवल देखने लगता है बल्कि आरंभ भी होता है।”²⁹

गिरधर ठक्कर ने अपनी सारी जिन्दगी देश के लिए समर्पित कर दी थी। वे कांग्रेसियों के साथ मिलकर स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय रूप से भाग ले रहे थे। वे गांधीजी की अहिंसावादी प्रवृत्ति के समर्थक थे परंतु वक्त आने पर हिंसात्मक क्रांतिकारियों की सराहना भी करते। उनका विचार था कि - “गांधीजी का रास्ता दिखने में सीधा है पर इस पर संकल्पवान ही चल सकता है, जबकि क्रांति का रास्ता दिखता मुश्किल है पर कठिन नहीं है, दुस्साहस चाहिए बस!”³⁰

गिरधर ठक्कर स्पष्ट वक्ता थे। उनकी वैचारिक खिड़कियाँ खुली थी। वे किसी भी विचारधारा को जड़ता से स्वीकारने के पक्ष में नहीं थे। गांधीजी को सम्मान से देखनेवाले गिरधर ठक्कर कहते हैं - “गांधीजी देश को भरमा रहे हैं, वे हमारे राष्ट्रीय आलेख को दूर करने के लिए, स्वावलंबी बनाने के लिए अपने देश को परंपरा और स्वदेशी चीजों पर गर्व करने का भाव सब लोगों के मन में भर देना चाहते हैं इसीलिए उनके ये सारे कार्यक्रम हैं।”³¹

गिरधर ठक्कर एक सच्चे देशभक्त इन्सान थे। वे नहीं चाहते कि सुखदेव, भगतसिंह और राजगुरु को फांसी मिले। गिरधर ठक्कर मानते थे कि गांधीजी ने इन लोगों की फांसी रूकवाने की सिफारिश वाईसरोय से न करके बड़ी गलती की

है। वे व्यथित हृदय से कहते हैं कि -“.... क्या देशभक्ति से बड़ा है कोई सिद्धांत । दिनभर बैठकर चरखा कांता तो यह देशभक्ति हुई और किसी अंग्रेज पर बम्ब फेंक दो तो वह हिंसा हो गई । भाईजान गांधीजी का यह धापल्या समझ में नहीं आया । देशभक्ति का एक ही प्रकार कैसे हो सकता है ।”³²

गिरधर ठक्कर गरीबों के पक्षधर थे । मजदूरों का शोषण करनेवाले मिल-मालिकों के विरुद्ध उन्होंने कई बार भूख हड़ताल की थी । वे कई जगह गांधीजी के विचारों से सम्मत नहीं थे फिर भी 1942 में आंदोलन का नारा गुँजते ही चौराहे पर भाषण देते और प्रजा को आंदोलन में कूद पड़ने की प्रेरणा देते हैं । वे आम जनता को कहते हैं कि -“सरकार न चले इसके लिए जो भी, जैसा भी काम करना पड़े करना होगा । इस आंदोलन में हिंसा-अहिंसा का प्रश्न नहीं है । यह सत्याग्रह भी नहीं है बल्कि एक प्रकार से अब देश को दुराग्रह ही करना होगा । देश हमारा है तो सरकार भी हमारी ही होनी चाहिए ।”³³

उपन्यास के उत्तरार्द्ध में अंग्रेज सरकार गिरधर ठक्कर की धरपकड़ करती है और वे जेल चले जाते हैं । इस तरह, गिरधर ठक्कर गांधीयुगीन देशभक्त के रूप में उपन्यास की गरिमा बढ़ाते हैं ।

गुणवंती (यह पथ बन्धु था) :

‘यह पथ बंधु था’ नरेश मेहता का महाकाव्यात्मक उपन्यास है । पात्रों की दृष्टि से प्रस्तुत उपन्यास में पात्रों की भरमार है । नरेश मेहता के उपन्यास का गुण कहे या दोष कभी-कभी वे एक साथ अनेक पात्र ऐसे निर्मित करते हैं जो गौण होते हुए भी पूरे वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं ।

‘यह पथ बन्धु था’ में श्रीधर के पिताजी, उसकी माँ, श्रीधर के भाई-भाभी आदि परोक्ष रूप में कथा विकास में सहायक होते हैं, परंतु खामोश बनकर चुपचाप दृष्टा बनकर भुगतनेवाली गुणवंती के चरित्र का महत्त्व विशेष बढ़ जाता है । प्रथम दृष्टि में गुणवंती की कोई विशेष भूमिका नहीं है फिर भी जिस ढंग से पिता के गृहत्याग के बाद दादा-दादी और माँ की विवशता को वह समझती है तथा जिस ढंग

से चुपचाप जलती है यह विवशता कम नहीं है । फलतः अन्य गौण पात्रों को छोड़कर समस्या और नारी विवशता के संदर्भ में गुणवंती प्रस्तुत उपन्यास का अत्यधिक करुण गौण पात्र है ।

गुणवंती, श्रीधर और सरस्वती की बड़ी बेटी है । वह पिता के वात्सल्य का अनुभव करे इससे पहले पिता के गृहत्याग के कारण उसके ऊपर से पिता की छाया उठ जाती है । पिता का गृहत्याग, तारु और तारु का उपेक्षित व्यवहार, माँ की विवशता तथा परिवार की गरीबी उसका बचपन छीन लेती है । गुणवंती कम उम्र में गंभीर बन जाती है ।

गुणवंती एक समझदार एवं संवेदनशील नारी है । घर की परिस्थितियों को खामोश बनकर देखनेवाली गुणवंती मन ही मन घुटती रहती है । पारिवारिक कलह गुणवंती की वाणी ही छीन लेता है । अपनी व्यथा प्रकट करती हुई कहती है - “असल में मुझे बोलना आता ही नहीं रोज जाने कितना कैसा-कैसा देखते-देखते बस देखने की आदत पड़ गयी है ।”³⁴

तारु और तारु का अन्याय उससे सहा नहीं जाता । माँ पूरे दिन घर के काम में रहती है । काम में थोड़ी देरी होने पर तारु गुणवंती को जली-कटी सुनाती है और ताने मारती है । इतना सबकुछ करते हुए भी उसे बासी खाना मिलता है । उसके सारे भाई-बहन को अनाथ मानकर उपेक्षित व्यवहार किया जाता है । घर की ऐसी विषम परिस्थितियों में गुणवंती हँसना भी भूल जाती है । वह कहती है -“सच, मैं भी हँसना चाहती हूँ । खूब जोरों से हँसना चाहती हूँ लेकिन पता नहीं क्यों रो पड़ती हूँ। जैसे इस जर्जर घर की शहवीरों में जिजी, बापू, माँ और देवव्रत दब गये हैं । वे हमें सहायता के लिए पुकार रहे हैं और हम अपने-अपने घरों में ।”³⁵

गुणवंती उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध की विवश युवती का प्रतीक है, जिस युग में लड़की को पढ़ने का अधिकार नहीं था और कम उम्र में उसकी शादी कर दी जाती थी । गुणवंती मन ही मन उस विवशता को व्यक्त करती हुई कहती है कि - “काश वह लड़का होती तो किसी काम आती । डॉक्टर, काकाजी को बता देती कि

वे लोग अभी इतने अनाथ नहीं है ।”³⁶

घरवालों को गुणवंती की शादी और उसे दिए जानेवाले दहेज की चिंता सता रही है । वह चुपचाप घर में दादाजी और दादी तथा माँ की चर्चा सुनती है। उस चर्चा के बाद गुणवंती का मन कहता है कि -“यह नहीं हो सकता कि वह अनब्याही रहकर जिजी की, माँ की, बापू की और भाई-बहन की सेवा कर सके ।”³⁷

दहेज के बिना शादी नहीं होगी और दहेज का विरोध करना दोनों स्थिति उसके भीतर आक्रोश जगाती है। “जैसे वे दोनों बहने लूटने के लिए ही तो बनी है कि बिना यहाँ से लूट का माल लेकर ब्याहता नहीं हो सकती ।”³⁸

परिवारवाले जैसे-तैसे दहेज इकठ्ठे करके उसकी शादी तो कर देते हैं, परंतु ससुराल जाते ही सारे सपने खण्डित हो जाते हैं । ससुरालवालों ने कम दहेज के कारण गुणवंती को खाट से बांधकर इतना पीटा, इतना पीटा कि वह दोनों पैरों से अपाहिज हो गई । अपाहिज बहू का क्या काम यही समझकर ससुरालवालों ने उसे हमेशा के लिए त्याग दिया । परित्यक्ता गुणवंती सोचती है कि -“न भूख, न मार, न गालियाँ, न लाँछन कुछ भी तो उसके तोड़ न सके थे। वह स्वीकृता ही कब हुई थी जो आज परित्यक्ता हो गयी ? वह तो दूध का एक थन थी जो दूध आने की संभावना में निचोड़ी गयी थी बस ।”³⁹

अंत में दुःख गुणवंती को बैरागी बना देता है । वह समझती है कि इस दुनिया में आँसुओं का कोई मूल्य नहीं । सहन करना ही जीवन है । किसी को कहने से दुःख कम नहीं हो सकता । दुःख वाणीहीन होता है ।

“दुःख वह परमपद है जिजी जिसे स्वतः भोगना होता है। सब व्यर्थ है यहाँ ।”⁴⁰

अंत में इतना ही कह सकते हैं कि गुणवंती नारी जीवन की विवशता और व्यथा का प्रतीक बनकर उपन्यास में उभरी है ।

झगडालु और स्वार्थी सावित्री :

सावित्री श्रीधर के भाई श्री मोहन की पत्नी है । वह झगडालु, इर्ष्याखोर,

संवेदनहीन, निष्ठुर, स्वार्थी, चुगलीखोर, अभिमानी तथा पति की भौतिकता के कारण पूरे घर पर वर्चस्व जमाकर हुक्म चलानेवाली बदतमीज औरत है । श्रीधर के गृहत्याग के बाद उसकी पत्नी सरस्वती को नौकरानी की तरह रखती है । उसके बच्चों को बासी भोजन खिलाती है, सास-ससुर के प्रति कोई हमदर्दी नहीं है । सरस्वती की बीमारी को ढोंग में खपाकर उसे मदद करने के बदले ताने मारती है - “हड्डियों में बुखार !। हाय, हाय कुरबान जाऊ ऐसी नजाकत पर ! इस देहात में जैसे लखनऊ की बेगमसाहबा आय गयी । बेचारी इलायची न छील ना डाली हमारी देवरानी जी को हड्डियों का जुकाम हो जाएगा । हा... हा.. हा...! ! बायने बेगम तो भेज दी लेकिन लौंडिया और खवसिनें क्यों रख ली।”⁴¹

सावित्री श्रीधर के बच्चे को भी ताना मारने नहीं भूलती । गुणवंती को काम में देरी होने पर कहती है -“मुफ्त का खा-खाकर भैंस होती जा रही है । दो रोटियों का जब सहारा नहीं इन लोगों का तो फिर क्या फायदा इन मुस्टडों को पालने-पोसने से ?”⁴²

सावित्री ढोंग रचके दूसरों के साथ बेवजह झगड़ा करती है । अपनी बात मनाने के लिए ऊँची-ऊँची आवाज में शोर मचाती है । वह बार-बार नैहर जाने की धमकी देती हुई कहती है -“जो मर्जी आये करो बाद में मुझसे कुछ मत कहना मैं कल ही बाबूजी के पास चली जाऊँगी ।”⁴³

सावित्री ने विचित्र और जड़ स्वभाव के कारण उसकी पुत्री कांता उसे नफरत करती है। चाची और उसके बच्चों को परेशान करनेवाली अपनी माँ को वह कहती है -“तुम किसी का अगर भला नहीं सोच सकती तो दूसरों को बुरा क्यों कहती हो।”⁴⁴

अंत में इतना ही कह सकते हैं कि सावित्री की स्वभावगत विशेषता के परिणामस्वरूप पाठक की नज़रों से गिर जाती है ।

श्रीमती कृष्णादेवी शुक्ल (उत्तरकथा खंड-I) :

श्रीमती कृष्णादेवी त्र्यम्बक की माँ और दुर्गा की सास है । वह साक्षात चंडिका का रूप है । वह भारतीय सास का वह परंपरित रूप है जो अपनी पुत्रवधू पर

अमानवीय अत्याचार गुजारने के बाद संतोष का अनुभव करती है । चतुर, झगडालु, ढोंगी, दंभी, अभिनय में माहिर कृष्णादेवी स्त्री नाम पर कलंक है । अपनी पहली पुत्रवधू को कम दहेज के कारण कुएँ में धकेलकर सारी घटना को अकस्मात में खपा देती है । दूसरी पुत्रवधू दुर्गा को भी त्रास देने में कृष्णादेवी ने कोई कसर नहीं छोड़ी थी । दुर्गा जो अभी अपने पिताजी और भाइयों की मौत का सदमा भूली नहीं है और कृष्णादेवी उसके दुःख को हलका करने के बजाय जले पर नमक छिड़कती है । बड़े सवेरे से लेकर देर रात काम करनेवाली दुर्गा उसे कभी कुलक्षणी लगती तो कभी चरित्रहीन । एक जगह दुर्गा को कहती है कि -“पहली तो खैर अब रही नहीं पर यह जो दूसरी आयी है पूरी सीतामाता का अवतार लगती है । आते ही कैसे चंडीरूप दिखलाया । पिता और भाइयों को खाकर आयी है । भगवान जाने अब किसे खायेगी । माता-पिता ने भी कैसा सार्थक नाम रखा है दुर्गा ! जय हो भगवती यथा नाम तथा गुण ।”⁴⁵

कृष्णादेवी बिलकुल दकियानुसी, देहाती तथा रुढ़ियों की आग्रही औरत है । पुत्रवधू के साथ अमानवीय व्यवहार करना, उसे मारना-पीटना तथा धमकाना उसका स्वभाव नहीं बल्कि अपना अधिकार मानती थी । वह ईर्षालु औरत है । अपने खुद के पुत्र और पुत्रवधू के प्रेम को बरदास्त नहीं कर पाई । पुत्रवधू का पक्ष लेनेवाले पुत्र को भी खरी-खोटी सुना देती है । वह दुर्गा को धमकीभरे स्वर में कहती है -“कान खोलकर सुन लो पति को लेकर अगर फिर कभी इतरायी तो गरम-गरम चीमटे से ऐसा दाग दूँगी तेरी जीभ को कि बोलने के लिए तरस जाएगी । बड़ी पतिवाली बनती है, हरामजादी ।”⁴⁶

दुर्गा का कोई दोष न होते हुए भी उसे आये दिन किसी न किसी बहाने पीटती रहती थी -“कृष्णादेवी ने दुर्गा को इतनी जोर का झटका दिया कि वह तुलसी क्यारे की पाल से टकरायी और चौखंडी के पत्थरों पर जोरों से गिरी । हाथों की चुड़ियाँ तड़क गयी । कलाई से खूब खून बहने लगा ।”⁴⁷

त्र्यम्बक जब दुर्गा की बीमारी पर वैद्यराज को बुलाता है तब शादी-शुदा युवान

पुत्र को अनाप-शनाप सुनाते हुए कहती है कि -“इसने जरा-सा कान में कुछ फूंक दिया तो तू निर्लज्ज की भाँति जूते पहनकर दौड़ आया । मैं पूछती हूँ किससे पूछकर तू गया था । वैद्यजी के यहाँ । अपने मुँह की मक्खियाँ तो उड़ा नहीं पाया और चला है वैद्य-डॉक्टरों के पास ।”⁴⁸

बात का बतंगड़ बनाना, माथा पिटना, विलाप करना, जोर-जोर से रोना, झूठ को सच साबित करने के लिए औरों के सामने बड़ी आवाज निकालकर रोना इत्यादि कृष्णादेवी के स्वभाव की खास विशेषता है । पुत्रवधू माँ बननेवाली है इस घटना से आनंदित होने की बजाय, दुर्गा को चेतावनी देती हुई कहती है -“मेरे बेटे को उल्लू बना रखा है तूने । पर याद रख एक भी वशीकरण तेरी नहीं चलने दूंगी । उलटी मूँठ ऐसी चलवा दूंगी कि तू भी याद करेगी ... । अगर तू मेरा बेटा छीनेगी तो याद रख मैं भी तेरा बेटा ।”⁴⁹

कृष्णादेवी खुद संपत्तिवान औरत है फिर भी ननद को असली जेवर के बदले नकली जेवर थमा देती है । अपने ही पुत्रवधू को चरित्रहीन साबित करने के लिए अपने भतीजे बिशु को बलात्कार करने पर उकसाती है । पति को जब बिशुवाली घटना का पता चलता है तब वह नाराज होकर कृष्णादेवी पर खूब गुस्सा निकालते हैं । उस बात से नाराज कृष्णादेवी अपने आवशे में बहुत कुछ कह देती है जो उसके चरित्र में नज़र आता है -

“मैंने दुर्गा की इज्जत लुटवाने के लिए बिशु को पैसा दिया ? मैं चुडैल हूँ । डाकिन हूँ । पिशाचिनी हूँ । अपने ही बेटे का घर उजाड़ूंगी । मुझे क्यों नहीं पुलिस में दे देता ... इन विचारों ने तेरा क्या बिगाड़ा है । वह महारानी तेरी सगी हो गयी और तेरी माँ परायी है न ? हे भगवान !”⁵⁰

वह अपने बुरे स्वभाव के कारण पति और पुत्र की नज़रों से गिर जाती है । ज्ञाति की स्त्रियाँ उस पर थू-थू करती है । वह स्वयं महसूस करती है -“कल तक वह किस तरह महत्त्वपूर्ण अविभाज्य अंग थी । परंतु आज वह जैसे कटा अंग है ।”⁵¹

उत्तरकथा खंड - II के पूर्वार्ध में कृष्णादेवी का हृदय परिवर्तन होता है ।

कृष्णादेवी का पैर फिसलने के कारण तालाब में गिरकर डूबकी खाने लगती है और मगर के पंजे में फँस जाती है । तब उसकी बहू दुर्गा उसे बाहर खींच लाती है और सेवा करती है । फिर भी अपनी मूल वृत्ति के अनुसार समय-समय पर दुर्गा को नीचा दिखाने का प्रयत्न करती है ।

“कृष्णादेवी को दुर्गा बहू से अधिक चुनौती लगती थी । वह प्रत्येक क्षण दुर्गा की आज्ञाकारिता से भी आहत होती इसीलिए मौके-बेमौके का अपमान या अवमानना करने से चूकती न थी ।”⁵²

उत्तरकथा खंड - II उपन्यास के उत्तरार्ध में कृष्णादेवी को कोमल आत्मीय व्यवहार का परिचय होता है । अपने सौतेले वृद्ध देवर का खूब खयाल रखती है । अंत में सांड द्वारा घायल कृष्णादेवी की मौत हो जाती है । इस प्रकार कह सकते हैं कि कृष्णादेवी परंपरित साँस का प्रतिनिधि पात्र है ।

गायत्री देवी :

‘उत्तरकथा’ उपन्यास के सभी नारी पात्रों में सबसे अधिक करुण नारी पात्र गायत्री देवी का है । गायत्री के माध्यम से पति उपेक्षित स्त्री की व्यथा का निरूपण हुआ है । समाज की दृष्टि में कामदार साहब की वह नाम मात्र की पत्नी थी । गायत्री देवी किसी की पत्नी और माँ होते हुए भी पत्नी के सारे अधिकार से वंचित रखा गया । पति की विलासिता तथा वेश्या के साथ नाजायज़ संबंध के कारण गायत्रीदेवी प्रथम रात्रि से ही पति की नज़रों से तिरस्कृत हो जाती है । उसके पति ने गायत्रीदेवी के सामने ही एक वेश्या के साथ सुहागरात मनाई थी । बाह्य सुख-संपत्ति आदि सबकुछ होते हुए भी गायत्री भीतर से अतृप्त और अपूर्ण स्त्री थी । ससुराल में पति का व्यवहार देखकर व्यथित गायत्रीदेवी सोचती है -“जिसे वह एकांत मंदिर समझकर आयी थी वह तो बाजार निकला । जिस संबंध के बारे में उनकी अवधारणा समर्पण की थी वह रमण से अधिक न था ।”⁵³

पति की नज़रों में गायत्री देवी एक दासी या वेश्या से अतिरिक्त कुछ नहीं थी । कामदार साहब आजीवन गायत्री के लिए पति नहीं पुरुष बनकर ही रहे । वह

पति-पत्नी के पवित्र संबंध को लेकर प्रश्न करती है कि -“कहने को वह पत्नी बनकर आयी है परंतु दासियों और कमला से भिन्न उसकी क्या कोई गरिमा है ... क्या पत्नी होना इसीको कहते हैं ?”⁵⁴

पिता के घर का आध्यात्मिक वातावरण और विरासत में मिले संस्कार के कारण पति के कलुषित घर में अपने आपको असंगत पाती है। पति की लाख उपेक्षा के बाद भी गायत्री अपना आत्मसम्मान नहीं गँवाती। जब गायत्री को शराब का प्याला भरने को कहा जाता है तब साफ शब्दों में कहती है कि -“आप नीचेवाले अपने जलसाघर में नहीं बैठे हैं । यह घर है और घर की एक पवित्रता होती है।”⁵⁵

गायत्री अन्य औरतों की तरह अनेक आशा-अपेक्षा के साथ ससुराल आयी थी। शादी के आरंभिक दिनों में वह साज-शृंगार करके पति का इंतजार करती थी परंतु लगातार पति की उपेक्षा ने उसे धार्मिक बना दिया । वह पति के सारे अंतरंग रिश्तों से दूर होती चली गई । जब गायत्री को पता चलता है कि वेश्या के भाई ने उनके पति की हत्या कर दी है तब वह सोचती है कि पति की हत्या नहीं थी जीवन के आधारभूत मूल्यों की हत्या थी । पति के अनैतिक संबंध ने उसे कोमल हृदय को ठेस पहुँचायी थी ।

“उनके व्यक्तित्व की श्वेत-भूषा जैसे संपूर्ण कलुषित हो गई थी । इस स्थिति ने उनके पत्नीत्व को अपूर्ण सिद्ध कर दिया था । पत्नी का गौरव तक लांछित हो गया था ।”⁵⁶

गायत्री देवी का पति के साथ रागात्मक संबंध कभी स्थापित ही नहीं हो पाया। उसकी नारी सहज इच्छाओं को अकाल दबाना पड़ा । गायत्री देवी पूरी तरह से आध्यात्मिक हो चुकी थी ऐसे वक्त में उसके जीवन में ब्रह्मचर्य जीवन जी रहे शिवशंकर का प्रवेश होता है जो गायत्री की अतृप्त इच्छाओं को जागृत करता है । अपने पार्श्व में खड़े शिवशंकर का सानिध्य उसे कोई दूसरे ही लोक में ले जाता है । वह अपने भाव को व्यक्त करते हुए कहती है -“संपूर्ण देह जैसे कसी हुई सितार हो गई थी और वादक ने अभी उस वाद्य को मात्र देखा भर कि मन का निषाद पंचम-

षडज सब अपने स्थान से बज उठने को आकुल लगे ।⁵⁷

एक विधवा प्रौढ़ा के दिल में ऐसे भाव उत्पन्न नहीं होने चाहिए और अगर होते हैं तो किसी को इसका पता न लग जाए इसका खयाल भी रखती है । गायत्री देवी का नींद में चौंकना बिलकुल स्वाभाविक था क्योंकि -“शिवशंकर का स्मरण करते नेत्रों की यह माया ऐसी घोषित थी कि पलकें क्या यदि दोनों हथेलियों से ढाँपकर भी छुपाती तब भी सम्भव नहीं था ।⁵⁸

युवावस्था में गायत्रीदेवी ने स्वयं को अखंड रखा था । बड़े भाई के सुंदर विचारों से प्रेरणा प्राप्त करके उसने अपने आपको अक्षुण्ण बनाये रखा था । गायत्री देवी का प्रेम शिवशंकर के प्रति अशरीरी था । उसने अपने प्रेम को संयम की सीमा में बांध दिया था, कभी बाहर प्रकट नहीं होने दिया था । गायत्री देवी को अपने कर्तव्य का एहसास होते ही कहती है कि -“.... और मन छिः छिः कर उठा । एकदम निढाल भाव से आकर दीवान पर बैठ गई । सारी देह कसकर निचोयी गयी धोती सी ऐंठ रही थी । वह वैसे ही बैठे हुए अनुपस्थित हो गयी और जब अवन्ती ने बताया कि पालकी कल की तैयार है तो वह मात्र इतना कह सकीं अवन्ती कहारों को छुट्टी दे दो कहीं नहीं जाना है ।⁵⁹

गायत्रीदेवी ने रात्रि के अंधकार में शिवशंकर के स्पर्श को महसूस किया था । उस वक्त शिवशंकर उसे पर-पुरुष नहीं मात्र पुरुष लगे थे । उस क्षण को वह भूल नहीं पाई थी । उस स्पर्श ने उसके रोमरोम को भिगो दिया था फिर भी शिवशंकर को लेकर उसके हृदय में वासना नहीं थी । शिवशंकर उसके स्वत्व की आवश्यकता थे । चारोंधाम की यात्रा पर गये शिवशंकर की मौत की खबर मिलते ही गायत्री का नारी मन हाहाकार कर उठता है । वह मन ही मन सोचती है कि -“जिसे कभी नहीं पुकारा । कभी भर आँखे नहीं देखा । संपूर्ण गहना चाहा उसे सिवाय कंधे के स्पर्श से अधिक नहीं जाना । वह रोम-रोम से पुकार रहा है क्या ? कौन है वह ? क्या था वह तुम्हारा गायत्री ?⁶⁰

शिवशंकर के यात्रा जाने के बाद भी वह उसे भूल नहीं पायी । अज्ञातवश वह

उसकी प्रतीक्षा करती है । गायत्री देवी चाहती है कि शिवशंकर के कंधे पर सर रखकर खूब रो ले । शिवशंकर की मृत्यु के बाद भी उसे लगता है कि -“जैसे पीछे से आकर उन्होंने दोनों कंधे थाम लिये हैं और उनका मन हुआ कि इन हाथों की पुष्ट अंगुलियों पर जिन्होंने उनके कंधे थाम लिए हैं वहाँ अपने गाल रखकर खूब रो उठें कि क्या इतना प्रतीक्षा करायी जाती है ।”⁶¹

अंत में गायत्री देवी का आत्मिक प्रेम शिवशंकर के मृत्यु के आघात को सहन नहीं कर पाया । वह भी शिवशंकर के पीछे महायात्रा के पथ पर निकल पड़ती है ।

संक्षेप में कहें तो गायत्री देवी दया, प्रेम, करुणा, मानवता, सदाशयता, सहिष्णुता की मूर्ति थी । वह एक सौन्दर्यशालिनी और संभ्रान्त औरत थी । वह भारतीय आर्य नारी के रूप में प्रस्तुत होकर अपने चरित्र को सार्थक कर जाती है ।

कुछ विशिष्ट गौण तथा गौणातिगौण चरित्र

अ. स्त्री चरित्र

1. समाज उपेक्षिता वेश्याएँ :

डूबते मस्तूल - रंजना

यह पथ बंधु था - मालिनी

धूमकेतु एक श्रुति - कालिन्दी, गुलशन

उत्तरकथा खंड - I, II - कमला

नदी यशस्वी है - वहीदा

2. स्त्री जीवन का करुण राग विधवाएँ :

यह पथ बन्धु था - इन्दुदीदी

धूमकेतु एक श्रुति - वल्लभा

नदी यशस्वी है - कावेरी

उत्तरकथा खंड - II - सविता याज्ञिक

3. पति उपेक्षिता स्त्रियाँ :

प्रथम फाल्गुन - श्रीमती नाथ

नदी यशस्वी है - किरणदीदी

उत्तरकथा खंड - I, II - गायत्री

4. विवश मातृत्व से अभिशप्त स्त्रियाँ :

यह पथ बन्धु था - श्रीधर की माँ, श्रीमती ठाकुर

उत्तरकथा खंड - II - गिरधर ठक्कर की माँ सरोजबाला

उत्तरकथा खंड - I, II - शिवशंकर दुर्गा की माँ गोदावरीदेवी

उत्तरकथा खंड - I, II - बिशू की माँ गंगादेवी

5. मानसिक रूप से विक्षिप्त स्त्रियाँ :

उत्तरकथा खंड - I, II - गंगादेवी

धूमकेतु एक श्रुति - मनुमाँ

धूमकेतु एक श्रुति - अवन्ती पगली

धूमकेतु एक श्रुति - उदयन की माँ

6. संकुचित पारिवारिक भावनावाली झगडालु स्त्रियाँ :

यह पथ बंधु था - श्रीधर की भाभी सावित्रीदेवी

उत्तरकथा खंड - I, II - धुर्जरी की पत्नी शारदा

7. अल्हड़ किशोरियाँ, समझदार किन्तु लाचार पुत्रियाँ, पुत्रवधूँ :

यह पथ बंधु था - अल्हड़ किशोरी सुशीला

यह पथ बंधु था - कांता

नदी यशस्वी है - सुनंदा

उत्तरकथा खंड - II - गोरा

उत्तरकथा खंड - II - प्रेमिला

8. स्वतंत्र व्यक्तित्ववाली आधुनिक स्त्रियाँ :

डूबते मस्तूल - रंजना

दो एकान्त - वानीरा

प्रथम फाल्गुन - श्रीमती लीला साहनी

ब. पुरुष चरित्र :

1. राजनीति से जुड़े चरित्र :

महात्मा गांधी, गोखले, गोविंद जोशी,
बड़े गुरुजी, श्री पुस्तके साहब, सकलदीप नारायण

2. क्रांतिकारी चरित्र :

बिशन बाबू, मालिनी, अक्लंक,
रत्ना, नारायण सिंह

3. कम्यूनिस्ट विचारधारा के चरित्र :

पंचानन, पुणेतांबेकर,
चन्द्रशेखर, देवालीकर

4. जीवन यज्ञ में होम होनेवाले संसारी तथा असंसारी चरित्र :

त्र्यम्बक, उत्सवलाल जोशी, गोवर्धन व्यास
लोकनाथ रावल, आनंदशंकर दवे, नारायण पंड्या

5. निठल्ले, अविवाहित, विधुर तथा तेजस्वी चरित्र :

बड़े गुरुजी, पुरा जीबा, वैकुण्ठनंदन त्रिपाठी
जटाशंकर, रामनारायण, फून्दीलाल,
अवन्तीलाल, तारबाबू, स्टेट कमिश्नर साहब

6. राजा तथा रजवाड़े से जुड़े तमाम चरित्र :

बालासाहब, वामनराव, वीरसिंह,
नरेन्द्रसिंह, मंडलोई रामलालसिंह,
मंडलोई यशवंतराव, मरहठा सरदार शिंदेवारव की रखैल
- रजवाड़े के नौकर चौकीदार, पहरेदार, घुडसवार चरित्र :
घुडसवारी शिक्षक मुनीखाँ, चौकीदार श्यामराव
गुलाम हीरासिंह

7. संकुचित पारिवारिक भावनावाले चरित्र :

सूर्यशंकर, श्री मोहन, श्री वल्लभ

8. असद मनोवृत्तिवाले चरित्र :

बिशू, कामदार साहब, मेढ़की महाराज,
सैयद, मिस्टर रेनाल्ड, मेजर कुलकर्णी

9. बाल चरित्र :

(क) उदंड, आवारा, साहसी, पराक्रमी ग्राम्य बच्चें-भवानी, गंपू, जूगल
(ख) शिष्ट, सौम्य, विनम्र शहरी बच्चे -बैजू, आलोक, सुमंत, सुनंदा

10. विविध नौकरियाँ से जुड़े चरित्र :

शिक्षक, अध्यापक, हेड मास्टर, पोस्ट मास्टर, ग्रंथपाल,
जिलाधीश, पटवारी, कामदार साहब, तारबाबू
स्त्री चरित्र और नौकरी - रत्नी, रंजना, गोपा

11. प्रेस मालिक, प्रकाशक :

महादेव गुप्त, रामखेलावन जी, वंशदीप नारायणजी

12. कर्मकांडी, हवेली तथा मंदिर की पूजा करनेवाला :

महादेव शुक्ल, त्र्यम्बक शुक्ल, रमण आचार्य, श्रीनाथ ठाकुर,
गोवर्धन व्यास

जमींदारी से जुड़े चरित्र : लज्जाशंकर

13. विविध व्यापार उद्योग से जुड़े चरित्र :

झालानी परिवार, रंजना के पिताजी, शेखर के पिताजी तथा अन्य

14. निम्नवर्ग से जुड़े चरित्र :

नौकर, नौकरानी, महेतरानी, मजदूर, इत्यादि
हरखचंद फेरीवाला, रघुनाथ, मातादीन
लछमन-शारदा, कावेरी, करमा, रति

उपसंहार :

स्त्री चरित्र

समाज उपेक्षिता वेश्याएँ :

भारतीय समाज में समय-समय पर नारी की स्थिति में उतार-चढ़ाव आते रहे हैं । वैदिक युग में नारी को प्रतिष्ठित पद प्राप्त था । मध्ययुग में नारी को पाप की खाई तथा भक्ति में बाधा मानी गई । तुलसी ने 'ढोर, गँवार, शुद्र, पशु अरु नारी ये सब ताड़न के अधिकारी' कहकर नारी के एक अलग रूप की ओर संकेत किया । रीतिकाल की नारी भोग्या बनकर आई तथा देह चित्रण तक सीमित रह गई ।

साहित्य में नारी माँ, बहन, पत्नी, प्रेयसी, सौतन, रखैल तथा वेश्या जैसे विविध रूप में चित्रित हुई । साहित्य में नारी के पूजनीय तथा तिरस्कृत दोनों रूप की महिमा हुई ।

नरेश मेहता के उपन्यासों में नारी के तमाम स्वरूप का विशद एवं विस्तृत उल्लेख मिलता है । नरेश जी ने नारी जीवन के विडम्बनापूर्ण जीवन के समूचे युग को रूपायतित किया है । उन्होंने नारी को सम्माननीय स्थान पर प्रतिष्ठित किया । उनका कहना था कि नारी में कुछ अवगुण है तो वह समाज की उपज है ।

नारी का सबसे निंदनीय तिरस्कृत, उपेक्षित, घृणित स्वरूप वेश्या का है । कोई भी साहित्यकार अपने युग से अछूता नहीं रह सकता । प्रेमचंद जी ने जिस सनातन समस्या को वाणी दी वही समस्या नरेश जी ने अपने उपन्यासों में दोहराई । नरेश मानते हैं कि पुरुष के साथ के सारे संबंधों के बीच नारी देहमात्र बनी रहती है। चाहे वह प्रेमी से चुपचाप ब्याहकर भाग जानेवाली नारी हो या पिता के द्वारा किसी व्यक्ति के साथ ब्याही गयी नारी हो अथवा अपरिचित को परिचित मानकर सर्वस्व सौंपनेवाली नारी हो । नारी की यही नियति है कि पुरुष केवल उसके देह तक पहुँचता है ।

रंजना :

डूबते मस्तूल की रंजना अनेक पुरुषों के साथ शादी करने के बाद सोचती है

कि उसके सुंदर शरीर को देखकर सबको वासना ही जगी, कभी किसीने उसके भीतर की नारी को जानने की कोशिश तक नहीं की ।

“सब रंजना के पास ऐसे आये जैसे रंजना का शरीर उनका पुरुष शरीर का ऋण था । कुछ ब्याज लेकर चले गये । कुछ लोगों ने मूल धन के आधार पर कुछ दिनों व्यापार किया ओर रंजना ने विद्रोह नहीं किया बल्कि समझौता किया ।”⁶²

रंजना जिन्हें अपना पूर्व प्रेमी अक्लंक मानकर अपने जीवन की कथा सुनाती है वह उपन्यास का नायक स्वामीनाथन उर्फ अक्लंक भी सोचता है कि -“उसका वह हाथी दाँत की तरह चिकना गोरा शरीर इस गाऊन में बंद है । उस शरीर की लालसा इस समय मेरे मनमें जाग उठी है ।”⁶³

नरेश जी के उपन्यास में निरूपित तमाम वेश्या चरित्र की खोज नारीत्व की खोज है ।

मालिनी :

‘यह पथ बन्धु था’ की वेश्या मालिनी किसी गुंडे के द्वारा दिघेसाहब नाम के सरदार को बेच दी जाती है । मालिनी आजीवन दिघेसाहब की रखैल बनकर रही । उसकी मृत्यु के बाद दिघेसाहब की संतानों ने उसे धक्के मारकर घर से निकाल दिया । मालिनी के पास आत्महत्या के सिवा और कोई मार्ग नहीं बचा । क्रांतिकारी किशनबाबू उसे आत्महत्या करने से पहले बचा लेते हैं। बाद में मालिनी अंतिम जीवन वेश्या की आड़ में क्रांतिकारी दल को मदद करने में व्यतीत करती है। स्त्री के इस शाश्वत शोषणयुक्त स्वरूप को लेकर बिशन श्रीधर बाबू को कहता है कि “समाज में ऐसा कोई पुरुष नहीं जो नारी को इस अंधकारपूर्ण जीवन से बचाये। मालिनी का हाथ जिस पुरुष ने पकड़ा वह इतना कामी, विलासी तथा देहलोलुप था कि उसने मालिनी को नारी नहीं वेश्या बनाकर छोड़ा। मालिनी को इस नर्क में से मुक्त करने के लिए बिशन उसका भाई या बेटा बनकर नहीं पुरुष बनकर उसके पार्श्व में खड़ा होना चाहता है ताकि मालिनी नारी होने के भाव को महसूस कर सके।”

कालिन्दी :

‘धूमकेतु एक श्रुति’ की वेश्या कालिन्दी जो इच्छाशंकर की पहली शादी में नाचने आयी थी वह बरसों बाद मंदिर के जिर्णोद्धार के लिए रुपये देने हेतु इच्छाशंकर को मिलती है । दो-दो पत्नी की मृत्यु और बिन चाहे तीसरे ब्याह इच्छाशंकर को कालिन्दी के कोठे पर ले जाते हैं । कालिन्दी इच्छाशंकर के सामने मुज़रा करने से इन्कार करती है क्योंकि कालिन्दी इच्छाशंकर से नारी प्रतिष्ठा की अपेक्षा रखती है । वह इच्छाशंकर की परिस्थिति का फायदा नहीं उठाती । उसे रूपयों से कोई तोले इससे अच्छा है कि कोई उसे नारी की दृष्टि से देखें ।

“आप मेरे लिए संयम हैं, भोग नहीं। भोग होते तो कभी का भोग लिया होता।”⁶⁴

नारी उसी पुरुष की ओर प्रभावित होती है जो उसे मात्र देह नहीं मानता किन्तु संकट भरे क्षणों में उसके पार्श्व में खड़ा रहता है । नारी उसी पुरुष को पसंद करती है जो देह से गुजरता हुआ उसकी आत्मा तक पहुँचे । शायद यही कारण रहा होगा कि इच्छाशंकर की सज्जनता जानकर कालिन्दी उसके सानिध्य में एक स्त्री होने का अहसास महसूस करती है । वह इच्छाशंकर को कहती है -“मैं नारी होना चाहती हूँ तभी तो प्रभु से पाया व्यक्ति को उतना ही प्राप्त करना चाहती हूँ कि कभी वह जो मुझे नारी का पद दे जाया करता है कहीं अधिक लोभ करने पर यह पद भी न छीन जाए ।”⁶⁵

कमला :

वेश्या समस्या के मूल में गरीबी जिम्मेदार है तथा दूसरा स्त्री के पास कोई आर्थिक अवलंबन न होना । उत्तरकथा खंड -I,II की वेश्या कमला अपने ही भाइयों द्वारा शोषित है । उसके भाइयों के लिए कमला कमाने का साधन थी। नाटक कंपनी में काम करनेवाली कमला के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर मनोहरलाल उपाध्याय उर्फ कामदार साहब उसे रखैल बनाकर अपनी कोठी पर ले आते हैं । कामदार साहब के पाँव की जूती बनकर आजीवन उसके चरणों में रहनेवाली कमला आर्थिक असुरक्षा

को लेकर परेशान है । कमला सोचती है कि -“आज उसके हुजूर भले ही एकांत में उसके तलुए सहलाए पर उसका उन पर कोई अधिकार नहीं है । केवल रुचि है किसी भी दिन यह रुचि अरुचि में बदल सकती है ।”⁶⁶

नरेश जी ने यह भी चित्रित करने का प्रयत्न किया है कि बुरा करनेवाले का बुरा ही होता है। कमला के भाई कामदार साहब की संपत्ति हड़पना चाहते थे, जब सीधे तरीके से नहीं मिला तो भाइयों ने कमला तथा कामदार साहब की हत्या कर दी।

वहीदा :

‘नदी यशस्वी है’ में मंडलोई यशवंतराव किसी वहीदा नामकी वेश्या के साथ शादी करने के लिए अपनी पत्नी काशीबाई की हत्या कर देते हैं । परिणामस्वरूप उसे हवेली और गाँव छोड़ना पड़ता है ।

गुलशन :

वेश्या सौन्दर्यशालिनी ही होती है फिर भी कभी-कभी निम्नवर्ग के पुरुष मात्र देह लालसा के कारण कुरूप स्त्रियों के पास भी जाते हैं। ‘धूमकेतु एक श्रुति’ की ‘गुलशन’ काली और चेचक के दागवाली औरत थी। कत्था से घिनौना होठों के कारण वह और वितृष्ण जान पड़ती थी। उसकी दुकान पर अक्सर ड्राइवर लोग पान खाने आते थे। वह एक वेश्या थी। पान के गल्ले पर बैठी गुलशन को आते-जाते पुरुष भ्रष्ट निगाहों से देखते थे। बच्चे गुलशन एक रात का क्या भाव लेगी कहकर चिढ़ाते थे।

नरेश जी यही बताना चाहते हैं कि सदियों से नारी पुरुष की नज़रों में विलास का साधन तथा प्रसाधन की प्रतिमा ही बनी रही । नारी के इस अधम जीवन के लिए समाज, परिवार तथा पुरुष का दृष्टिकोण जिम्मेदार है । वेश्या जीवन का त्याग मालिनी तथा कालिन्दी के माध्यम से प्रकट किया है ।

2. स्त्री जीवन का करुण राग विधवा स्त्रियाँ :

आज से पचास-साठ साल पहले जो विधवा-विवाह की समस्या थी वह आज

इतनी प्रभावी नहीं है । नरेश जी के युग में लड़कियों के बालविवाह होते थे। बेमेल विवाह भी अस्तित्व में था । विधवा के दूसरा विवाह पाप माना जाता था और लड़की आजीवन अपनी स्त्री सहज इच्छाओं का दमन करके घुट-घुट कर कुंठित जीवन बिताती थी ।

इन्दुदीदी :

‘यह पथ बन्धु था’ में बालासाहब जैसे राजवी अपनी कुँवरी इन्दु की शादी एक संपत्तिवान बुढ़े से कर देते हैं । इन्दु थोड़े ही दिनों में विधवा हो कर घर चली आती है । इन्दु ने ससुराल में रहते हुए भी पत्नी का सुख नहीं भोगा । अत्यन्त सुंदर, संगीतज्ञ, किताबों की शौकीन इन्दु शादी के बाद बहुत कुछ प्राप्त करती है, परंतु पति-प्रेम वह कभी न पा सकी । वह अपनी पीड़ा को व्यक्त करती हुई एक खत श्रीधर को लिखती है -“यहाँ तुम तुम्हारी दीदी वह तालाब, वे पुस्तकें, वे सपने, वह शैशव, वह खुलापन नहीं है और संभवतः सदा के लिए बीत गया रे तू अभी कुछ नहीं समझ सकेगा ।”⁶⁷

इन्दु घर आने के बाद कुछ दिनों सांसारिक जिम्मेदारी निभाती है, पश्चात् सौतेले भाई वामनराय के पुत्र के नाम सारी संपत्ति करके काशीनिवास के लिए चली जाती है ।

हिन्दु समाज में विधवा का दूहरा शोषण होता है । एक ओर वह समस्त मानवीय अधिकारों से वंचित कर दी जाती है तो दूसरी तरफ अपने ही घर में असुरक्षित जीवन जीती है । समाज उसके साथ अशोभनीय व्यवहार करता है । युवा स्त्रियों की सहज प्राकृतिक इच्छाएँ धर्म और अध्यात्म के नाम पर दबा दी जाती है । उसकी सहज इच्छाओं का दमन किया जाता है । धर्म की आड़ में ऐसी विधवाएँ कुंठित जीवन तो जीती हैं साथ-साथ अपनी दमित इच्छाओं की पूर्ति के मार्ग भी खोज लेती है ।

वल्लभा :

‘धूमकेतु एक श्रुति’ की बाल विधवा वल्लभा मातृस्नेह से वंचित बालक उदयन

को भले ही अपना बेटा मानकर सबके सामने स्नेह करती हो, परंतु एकांत मिलने पर वह उदयन के मुंह में अपना स्तन देती है, उदयन को बार-बार अपने शरीर से सटाना, उसे चुमना यह सिद्ध करता है कि वल्लभा यौन समस्या का शिकार है । उदयन वल्लभा के साथ के संबंधों जिस तरह चित्रित करता है उससे पता चलता है कि वह मातृप्रेम नहीं है । उदयन कहता है कि -“वल्लभा संध्या आकाश की तरह ढीली पड़ती गयी और मैं देर तक सूर्यास्त की तरह होता चला गया, होता चला गया ।”⁶⁸

वल्लभा हवेली के मुखिया की बेटी है । हवेली में ही विधुर पिता द्वारा जातीय शोषण का भोग बनती है । पिता के पास भी वह सुरक्षित नहीं है । अंत में पिता से गर्भवती होकर लोकलाज से बचने के लिए वल्लभा आत्महत्या कर लेती है ।

कावेरी :

‘नदी यशस्वी है’ की बाल विधवा कावेरी किशोर उदयन के साथ शारीरिक संबंध स्थापित करती है । निम्नजाति में संस्कारों को लेकर जितना डर नहीं होता इसमें कई गुना ज्यादा उच्चकुल में होता है । कावेरी विधवा जीवन को चुनौति देती है और किसी पहरेदार के साथ शादी कर लेती है ।

नरेश जी के प्रत्येक उपन्यास में एकाद स्त्री विधवा जीवन के अभिशाप को भोगती है । ‘धूमकेतु एक श्रुति’ के लज्जाशंकर की बहन युवानी में विधवा होती है । उत्तरकथा में गिरधर ठक्कर की माँ सरोजबाला, शिवशंकर तथा दुर्गा की माँ गोदावरी देवी तथा कामदार साहब की पत्नी गायत्री देवी, गोरा की माँ सविता याज्ञिक तथा प्रथम फाल्गुन में गोपा की माँ श्रीमती नाथ भी प्रौढ़ावस्था में विधवा बनती है । ये सारी विधवाएँ संसार में रहकर धार्मिक जीवन जीती हैं । उनका एकाकीपन और व्यथा नरेश जी ने मनोवैज्ञानिक धरातल पर वर्णित किया है ।

सविता याज्ञिक :

वैधव्य जीवन और संतान की परवरिश निश्चित आय के बिना कठिन होती है । ‘उत्तरकथा खंड-11’ में गोरा की माँ सविता याज्ञिक इन तमाम प्रौढ़ विधवाओं में

सबसे दुःखी स्त्री है । पुत्री गोरा की चिंता और असुरक्षा उसे सताती है ।

“प्रत्येक क्षण, असुरक्षा भय सभी कुछ उनके व्यक्तित्व में थरथराते रहते थे। कोई भी तो ऐसा आत्मीय दरवाजा नहीं था जिसकी साँकल जाकर बजायी जा सकती होती । क्या उन्हें कभी विश्वास था कि नंगे पैरों चलकर इस प्रकार की अगम जलाशयता को पार किया जा सकेगा ।”⁶⁹

पति के चले जाने के बाद वह अपने शरीर को कष्ट देती है । व्रत, उपवास, एकासना करते हुए घर-घर के बरतन कपड़े करती है । किसी के कपड़े बेलना, किसी की सिलाई करना, निरंतर संघर्ष उसे तोड़ देता है ।

“इस संघर्ष का क्या अन्त था ? निरंतर ठंडे पसीने और हताश भाव में रगे फट पड़ती रही होगी। पर वह किससे कहे। किसके आगे अपनी भरी आँखें निचोये।”⁷⁰

अविरत संघर्ष के कारण वह हड्डियों के बुखार का भोग बनती है और अंत में उम्र से पहले सारी चिंताएँ साथ लेकर सविता याज्ञिक की मृत्यु होती है ।

पति उपेक्षिता स्त्रियाँ :

सृष्टि की उत्पत्ति से लेकर आज तक स्त्री किसी न किसी प्रकार पति की उपेक्षा का भोग बनी है । कभी निःसंतान होने के कारण, तो कभी दहेज, अनैतिक संबंध, विलासिता और झुठी इज्जत के कारण असंख्या स्त्रियाँ परिवार में रहकर भी नाम मात्र की पत्नी बनकर लग्न की वेदी में होम हो जाती है । इन स्त्रियों में से कई स्त्रियों की हत्या, आत्महत्या या घर से निकाल दी जाती है ।

‘नदी यशस्वी है’ में यशवंतराव पत के की पत्नी काशीबाई की हत्या के पीछे यशवंतराव के वेश्या के साथ के संबंध ही कारणभूत थे । ‘उत्तरकथा खंड-1’ में दुर्गा की बुआ की बेटी वसुंधरा के पति नपुंसक थे फिर भी बच्चा न होने पर वसुंधरा को ताने मारे जाते हैं । आखिर तंग आकर वसुंधरा आत्महत्या कर लेती है ।

श्रीमती नाथ :

‘प्रथम फाल्गुन’ की गोपा की माँ श्रीमती नाथ संतान देने के लिए सक्षम थी

परंतु फिर भी जज सौरिन्द्रनाथ संतान का बहाना बनाकर दूसरी शादी करता है । शादी के दिन ही प्रथम पत्नी जिन्हें वंध्या कहकर उपेक्षित किया गया था वह श्रीमती नाथ गोपा को जन्म देती है । परिणामस्वरूप नाजायज संतान की माँ के रूप में श्रीमती नाथ बदनाम हो जाती है ।

श्रीमती नाथ पति से अपना आधा हिस्सा लेकर गोपा को अकेली बड़ी करती है । एकाकी, उपेक्षिता, श्रीमती नाथ स्वाभिमान के साथ पूरा जीवन जीती है ।

किरण दीदी :

‘नदी यशस्वी है’ की किरणदीदी का पति उसे छोड़कर इंग्लैंड जाकर किसी अंग्रेज महिला से शादी कर लेता है । युवान किरण दीदी अपने उपेक्षित जीवन पूजा-अर्चना, धार्मिक ग्रंथ पढ़ने में तथा जैन साध्वी की सेवा करने में व्यतीत करती है । किरणदीदी किशोर उदयन को मन ही मन प्रेम करती है । अपनी स्त्री सहज इच्छाओं को धार्मिकता की आड़ में छिपाती है । वह उदयन के सामने इकरार करती है कि - “उदू... ! मैं तुम्हें बहुत प्यार करती हूँ । इसलिए चाहती हूँ कि तुम शीघ्र चले जाओ लेकिन एक बात बताते जाओ कि क्या... क्या.... कावेरी ने तुम्हें ...?”⁷¹

कावेरी के साथ उदयन के संबंध को लेकर वह स्त्री सहज ईर्ष्या करती है । उदयन किरणदीदी की भावना से परिचित था इसलिए किरणदीदी की ऐसी धार्मिकता से नफरत करता हुआ कहता है कि - “मुझे तुम्हारी धार्मिकता से दुर्गंध आती है । तुम धर्म ग्रंथों में अपना स्त्रीत्व छुपाना चाहती हो कुछ नहीं स्त्री चाहे वस्त्र धारण करे या धर्मग्रंथों को धारे वह स्त्री ही रहेगी ।”⁷²

गायत्री :

‘यह पथ बन्धु था’ की गुणवंती हो या उत्तरकथा की गायत्री, स्त्री जन्म ही मानो विवशता है । उत्तरकथा खंड-1,11 के कामदार साहब का स्त्री संबंधी दृष्टिकोण समग्र पुरुष जाति का दृष्टिकोण है । गायत्री को छोड़कर वेश्या कमला में देहसुख खोजने वाले कामदार साहब मानते थे कि - “पुरुष घर के बाहर क्या करता है इससे स्त्रियों का कोई संबंध नहीं होना चाहिए । पति का विलास पति का पुरुषार्थ

यह पति की अपनी व्यक्तिगत वस्तु है ।''⁷³

कामदार साहब की पत्नी भली-भोली सबकुछ स्वीकार लेने में विश्वास रखती है । उनका मानना था कि -''स्त्री की यही मजाल कि वह चुनौतीभरा व्यक्तित्व बनकर सामने खड़ी हो। वह वाद्य है। उसे पुरुष के क्रोड में समर्पित होकर ही बजना होता है ।''⁷⁴

उपेक्षिता स्त्रियों की विवशता के द्वारा लेखक इस ओर संकेत करते हैं कि आज भी स्त्रियों को देखने के रवैये को लेकर पुरुष आदिम ही है । क्या स्त्री केवल पति अधीन ही रहे ? उसका समग्र जीवन पति की इच्छाओं, अपेक्षाओं तथा भावनाओं को पूर्ण करने में ही बीत जाये ? क्या स्त्री का अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं हो सकता ?

विवश मातृत्ववाली स्त्रियाँ :

नारी का सर्वश्रेष्ठ ईश्वरीय स्वरूप मातृत्व है । संतान का व्यवहार चाहे कैसा भी क्यों न हो किन्तु उसके स्नेह में कभी कमी नहीं आती । नरेश के उपन्यासों में मातृत्व के विवश रूप का करुण चित्रण हुआ है । माँ मौन रहकर उसकी उपेक्षा को सहती है । माँ संतान के व्यक्तिगत आदर्शों के लिए आध्यात्मिक जीवन के लिए अपने सारे सपनों का बलिदान दे देती है । नरेश के उपन्यासों में पुत्र की मृत्यु के आघात में अर्धपागल जीवन जीनेवाली पेमेनबाबू की पत्नी (यह पथ बन्धु था), 'धूमकेतु एक श्रुति' की मनुमाँ तथा पुत्र के लिए घृणित से घृणित कार्य करनेवाली 'उत्तरकथा खंड-। तथा ।।' की गंगादेवी इत्यादि स्त्रियाँ मातृत्व की पराकाष्ठा है ।

श्रीधर की माँ :

'यह पथ बन्धु था' में श्रीधर की माँ स्वार्थी पुत्रों को माफ कर देती है । उत्तरकथा खंड-। तथा ।। की पार्वतीदेवी अपने दोनों अविवाहित पुत्र अवंतिलाल तथा फून्दीलाल का मानसिक सहारा है । त्रिलोचन शुक्ल की दूसरी पत्नी बनकर वह उपेक्षिता बनती है । दूसरी शादी के कारण दोनों पुत्रों को आजीवन अविवाहित रहना पड़ता है । पार्वती देवी सबसे दुःखी माँ के रूप में हमारे सामने आती है ।

सरोजबाला ठक्कर :

उत्तरकथा खंड-। तथा ।। की सरोजबाला गिरधर ठक्कर की माँ है । वन विभाग में नौकरी करनेवाले पति की रहस्यमय हत्या होती है और पुत्र देशभक्ति के रंग में रंगे हुए होने के कारण शादी से इन्कार कर देता है । घर के अकेलेपन में अपनी ही प्रतिच्छाया से डरनेवाली सरोजबाला की मौन व्यथा और हाहाकार को विद्वान पुत्र भी कभी समझ नहीं पाया ।

“ऐसी क्या विवशता है वह जो वर्षों से गले की हड्डी-सा अटका हुआ है कि मुंह से किसी भी प्रकार के राग या क्रोध का कोई बोल नहीं फुटता । घर माँ का बोलना होता है । शिकायत होती है । माँ उनकी उपस्थिति में ऐसे पैर दबाकर निःशब्द क्यों चलती है जैसे पुत्र नहीं कोई अन्य है । जिससे वह अपना चलना चुराकर चलती है ।”⁷⁵

गोदावरी देवी :

उत्तरकथा की दूसरी दुःखी स्त्री गोदावरी देवी है । ‘आंचल में दूध और आँखों में पानी’ की उक्ति सार्थक करनेवाली करुण रागिणी । गोदावरी देवी अपनी पुत्री दुर्गा की शादी के समय ही हैजे की बीमारी में पति और दो युवान पुत्र खो देती है । आँगन में पुत्री की बारात खड़ी है और भीतर कमरे में तीन-तीन अर्थियाँ पड़ी है । पुत्री को बिदा करने के लिए स्वस्थता धारण करती है । उसकी स्वस्थता का चित्रण करते हुए लेखक लिखते हैं –“उनमें इस समय किसी भी प्रकार की सम्पुक्तता नहीं थी । करुणा मिश्रित ऐसा वैराग्य उनके मुख पर लिखा था जो किसी परम साध्वी के मुख पर ही संभव है ।”⁷⁶

पति और पुत्र की मौत ने उसके जीवन को सूखा बना दिया । गोदावरी देवी एक पुत्र शिवशंकर के कारण जी रही थी । पुत्र के विवाह के लिए अनेक मनौतियाँ मांगती है । रामेश्वर का जल केदारनाथ के मंदिर में चढ़ायेगी । चारधामों की यात्रा पैदल करेगी । उसका मातृत्व चाहता था कि घर में पुत्रवधू की रंगीन धोती सुखायी जाये । बच्चे दादी कहकर पुकारे परंतु बेटा वैरागी बन जाता है । गोदावरी संन्यासी

पुत्र के रास्ते में बाधा बनना नहीं चाहती । छुट्टियों में पुत्री दुर्गा के बच्चों को बुलाकर अपना मन मनाती है । बच्चों की गैरहाजिरी में वह फिर उदास हो जाती, जैसे कुछ काम ही नहीं है । एकाकी गोदावरी स्वयं से बात करती हुई कहती है कि -“अब किसके लिए दूध गरम करें । आटा किससे लिए मँडे ? किसके लिए आम के पापड़ सहजकर रखें कौन बैठा है जिसके लिए बड़ियाँ-चुंटी जाएँ ? उस साधु महाराज के लिए ?”⁷⁷

संसारविहीन संसार में रहते हुए गोदावरी का जीवन रिक्त बन जाता है । शिवशंकर सारा दिन आश्रम में व्यतीत करते हैं । गोदावरी देवी अपनी ही परछाई से चौंकती है । जब भी वह शिवशंकर के पास बैठकर उन्हें खाना खिलाती तब लगता है कि मानो वह किसी संन्यासी को खाना खिला रही है । अंत में सांसारिक प्रपंच से मुक्ति पाने शेष जीवन उज्जैन में बिताने का निर्णय करती है । गाँव छोड़ते समय की मानसिक स्थिति बयान करते हुए नरेश जी लिखते हैं कि -“वह विरक्त मन से नहीं बल्कि हताश आसक्ति से गाँव से पृथक हुई जैसे दूध पीता बछड़ा गाय से अलग किया जाता है । जिस समय घर पर ताला लगाया वह फफककर रो पड़ी । उन्हें लगा कि वह अपने ही हाथों अपना श्राद्ध कर रही है ।”⁷⁸

गोदावरी देवी अपना अंतिम जीवन अध्यात्म के मार्ग पर स्थिर कर देती है और एक दिन इस पृथ्वी को प्रणाम करके महाप्रयाण के पंथ पर निकल पड़ती है । अतः आत्मविश्वास, श्रद्धालु, मातृत्व का दुःखद राग थी । गोदावरी देवी जो परंपरित भारतीय नारी के शक्तिशाली रूप को प्रकट करती है ।

गंगादेवी :

उत्तरकथा में गंगादेवी अंध मातृस्नेह को व्यक्त करने वाला सशक्त पात्र है । गंगादेवी के सारे अवगुण उसके मातृस्नेह के सामने नगण्य लगते हैं । गंगादेवी अपने पुत्र विशु के प्रति ज्यादा ही आसक्त है परिणामस्वरूप बेटा बिगड़ जाता है । बीड़ी, सिगरेट, शराब पीना, मांस खाना और आवारा की तरह घूमना उसके जीवन के अनचाहे पहलू हैं । गंगादेवी को अपने बिगड़े बेटे की चिंता थी परंतु राह-भटके पुत्र

के बारे में पति अथवा अन्य लोग कुछ भी बोले यह वह नहीं सकती । गंगादेवी पुत्र की तरफदारी करते हुए चण्डीरूप धारण कर लेती ।

पुत्र बिशु मोटर की मांग करता है जिसे पूरा करने के लिए गंगादेवी बिशु को ननद कृष्णादेवी द्वारा रचाये गये षडयंत्र में शामिल करती है । बुआ के इशारे पर वह अपनी ही भाभी दुर्गा पर बलात्कार करने की कोशिश करता है । पकड़े जाने पर फूफा तथा सौतेले भाई की हत्या कर देता है । अंत में पुत्र का आवारापन ही उसकी मौत का कारण बनता है । बिशु को फाँसी की सजा मिलती है । पुत्र की मृत्यु गंगादेवी को अर्धपागल बना देती है । वह अपनी ननद के संपूर्ण परिवार को तथा बहू दुर्गा को मार देने के लिए जादू-टोना का सहारा लेती है ।

अंध पुत्र-प्रेम के कारण पति ने गंगादेवी को त्याग दिया था । वह एक मात्र पुत्र के सहारे जीती थी । पुत्र की मौत उसे अर्धपागल बना देती है । अंत में वह फाँसी लगाकर आत्महत्या कर लेती है ।

मानसिक, विक्षिप्त अर्धपागल, पागल स्त्रियाँ :

मैं नीर भरी दुःख की बदली
सारे नभ का कोई कोना
मेरा न कभी अपना होना
पश्चिम इतना इतिहास यही
उमड़ी थी कल मिट आज चली ।

-महादेवी वर्मा

महादेवी की काव्य-पंक्तियों में जो व्यथा प्रकट हुई है ऐसे अनेक नारी चरित्र नरेश जी के उपन्यास में मौजूद हैं । स्त्री और पुरुष के बीच न केवल शारीरिक ढाँचे में अंतर है बल्कि उन दोनों की संवेदनशीलता में भी काफी अंतर है । दुःख को पचाने की जितनी ताकत पुरुषों में होती है शायद स्त्रियों में उतनी ताकत नहीं होती । पुत्र की मौत दोनों को आहत कर देती है परंतु स्त्री को ज्यादा आघात लगता है । 'यह पथ बन्धु था' में पैमेनबाबू की पत्नी, 'धूमकेतु एक श्रुति' में रघुबा की पत्नी

मनुमाँ तथा 'उत्तरकथा' की गंगादेवी पुत्र के मौत को बर्दाश्त नहीं कर पायी । बिशु की मौत के बाद गंगादेवी कभी चिल्लाती है, तो कभी अनाप-शनाप बोलती है ।

मानसिक रूप से विक्षिप्त स्त्रियों को समाज तथा परिवारवाले धुत्कारते हैं । कभी चिढ़ाते हैं, तो कभी डाकिन कहकर मज़ाक करते हैं । कभी पीछे दौड़ते हैं, तो कभी पिटते हैं । घरवाले भी उसका ठीक से ध्यान नहीं रख पाते ।

मनुमाँ :

'धूमकेतु एक श्रुति' के रघुबा जानते हुए भी अपनी पत्नी मनुमाँ को पीटते हैं । मनुमाँ का रोना-चिल्लाना, बड़बड़ाना, खुले बाल करके फटी आँखों से टक-टकी लगाना इत्यादि चेष्टाएँ उसके पागलपन को स्पष्ट करती है । मनुमाँ का स्मशानवत् जीवन देखकर लगता था मानो उसके पुत्र की कल ही मौत हुई है ।

अर्धपागल अवस्था से भी दयनीय है पूर्ण पागल अवस्था । इस अवस्था में व्यक्ति अपना संपूर्ण नियंत्रण खो बैठता है । वह क्या करता है उन्हें खुद पता नहीं होता ।

अवन्ती पगली :

'धूमकेतु एक श्रुति' में बालक उदयन अवन्ती पगली से डरता है । यह पगली उसके सपने में आती है । उदयन के शब्दों में - "अवन्ती पगली नंग-घडंग हँसती हुई खड़ी हो जाती है । उसकी जाँघे घुटनों तक रगड़ खाती है । तिनका दाँतों में दबाये वह दिन भर सड़क पर घुमती है और हठात् एक चीख मारकर अपने बालों से दोनों हाथों से खुजलाते हुए जोरों से थूँकने लगती है तथा भद्दी गालियाँ देने लगती है ।"⁷⁹

उदयन की माँ :

'धूमकेतु एक श्रुति' में इच्छाशंकर के वेश्या के साथ संबंध को लेकर उदयन की माँ मानसिक संतुलन खोती है । उसकी मानसिक अवस्था ही मौत का कारण बनती है । पति द्वार पीटे जाने पर उसकी मौत हो जाती है ।

नरेश जी ने अंधश्रद्धालु स्त्रियों के अन्तर्गत एक मात्र गंगादेवी को चित्रित किया है । वह अर्धपागल तो है ही साथ में अंधश्रद्धालु भी । बिशु की मौत के बाद

वह दुर्गा के विनाश के लिए मंत्र-तंत्र का सहारा लेती है । पूरे दिन हवनकुंड के सामने बैठकर दुर्गा का पुतला बनाकर उस पर मंत्र फूंकती है । वह दुर्गा के पुतले के सामने बड़बड़ाती हुई कहती है -“बोल तू डायन है न ? मेरे बेटे को खा गयी ? पर अब तेरी बारी है ! ! देख रही है ? यह तेरा पुतला है । देख रही है!! पास में रखा यह सूया आज रात बस आज की रात ।”⁸⁰

अतः गंगादेवी का अंधश्रद्धालु होने का कारण मात्र पुत्र स्नेह नहीं तत्कालीन समाज भी था जो मानसिक रोग का इलाज डॉक्टर के पास नहीं ओझा के पास करवाते थे ।

स्वार्थी, संकुचित पारिवारिक भावनावाली झगडालु स्त्रियाँ :

स्त्री परिवार का केन्द्र बिन्दु है । वह परिवार के लोगों की अपेक्षाएँ एवं आकांक्षाएँ पूर्ण करती है । उनका त्यागी और क्षमाशील व्यक्तित्व ही परिवार को प्रेम की एक डोरी में बाँधता है ।

स्वतंत्रता पूर्व जो संयुक्त परिवार की भावना थी वह स्वतंत्रता के बाद शिथिल पड़ गई । परिवार में स्वार्थ, संकुचितता तथा ईर्ष्या ने प्रवेश किया । भाई-भाई तथा पिता-पुत्र के बीच दरार पड़ गई । इस दरार के पीछे स्त्री की भूमिका अहम रही । स्त्री संयुक्त परिवार से दूर अपना छोटा-सा विभक्त परिवार चाहती थी जहाँ सास-जिठानी या ननद का हुक्म न हो ।

नरेश के उपन्यासों में त्यागी, क्षमाशील, करुणाशील, सहनशील तथा परिवार के लिए सर्वस्व समर्पित करनेवाले नारी चरित्र अधिक है । नरेश जी ने इन गुणों से विपरित गुणोंवाली नारी स्वभाव को चित्रित किया है । ईर्ष्यालु, झगडालु, स्वार्थी, मुँहफट स्त्री स्वभाव का भी सूक्ष्म वर्णन नरेशजी ने किया है । ऐसे नारी चरित्रों में ‘उत्तरकथा’ की कृष्णादेवी, गंगादेवी तथा दुर्गा की पुत्रवधू शारदा, ‘यह पथ बन्धु था’ की सावित्रीदेवी की गिनती कर सकते हैं ।

शारदा :

उत्तरकथा खंड-1,11 की शारदा अति झगडालु स्त्री है । वह घमण्डी तथा

ईर्ष्यालु नारी है । बड़े बुजुर्गों के प्रति उसके दिल में कोई सम्मान नहीं है । वह झगड़ा करने के लिए पति के कान भरती रहती है । वह कहती है कि -“कर्कशा हूँ ना ... ! जनाब आपकी माताजी को सबके सामने मेरी कोई स्थिति नहीं रहने देना चाहती उसे मैं कभी बर्दाश्त नहीं कर सकती ।”⁸¹

शादी के बाद तुरंत वह अलग हो जाती है । पति को पैतृक संपत्ति में से हिस्सा लेने के लिए आये दिन उकसाती रहती है ।

उल्हड़ किशोरियाँ, समझदार पुत्रियाँ तथा पुत्रवधू :

नरेश जी के उपन्यासों में कुछ पात्र अल्पकाल के लिए ही आये हैं, किन्तु फिर भी अपने व्यक्तित्व की सुगंध फैलाकर अविस्मरणीय हो गये हैं ।

नरेश जी के उपन्यासों में कुछ माँ-बाप की चिंता करनेवाली समझदार पुत्रियाँ हैं तो कुछ किशोरावस्था के मुग्धजीवन से तरबतर, निर्दोष और चहचहाती किशोरियाँ ।

सुशीला :

‘यह पथ बन्धु था’ में श्रीधर की बड़ी बेटी गुणवंती का जीवन जितना दुःखी और वेदना से भरा है उतना ही उसकी छोटी बहन सुशीला का जीवन किशोरकालीन सपनों से भरा है । सुशीला जीवन संघर्षों से अनजान अपनी ही दुनिया में मस्त है । गुणवंती के शब्दों में -“सुशीला ही जाने कहाँ से और कैसे जलती दोपहरी में सुखी गुलमहोर-सी ईंगी पड़ रही थी । उसे नख से शिख तक आयुमती देख किसी का साहस नहीं होता कि कुछ भी कहकर या बरजकर इस समस्त रंगमय जलते फूल को मलिन कर दे ।”⁸²

“सुशीला जाने किस अन्तस सुख में सुखी अपने ओठों में जैसे बीड़ा दाबे हुए हैं । सुशीला अपने देह में ही नहीं बल्कि इस घर में नहीं समा पा रही थी ।”⁸³

सुनंदा :

‘नदी यशस्वी है’ उपन्यास की बंगाली परिवार की किशोरी सुनंदा इकलौती संतान है । उसे संगीत, सिलाई तथा किताबों में गहरी रुचि है । उदयन उसके बारे

में कहता है -“सुनंदा अपने लंबे गीले बालों में सिर के ऊपर लाल रिबन की तितली बाँधे हुए थी । झाग-सी खूब फूली-फूली सी । सफेद फ़ोक वाली सुनंदा बड़ी सुषमामय लगती थी ।”⁸⁴

किशोरी होते हुए भी उम्र से ज्यादा समझदार अपने बालसखा उदयन के शारीरिक स्पर्श का उत्तर वैसे ही उष्मामय स्पर्श से देती है । उदयन के चले जाने के बाद स्वयं भी शादी करके ससुराल चली जाती है ।

कांता :

‘यह पथ बंधु था’ में सावित्री की बेटी कांता अपने माता-पिता से बिल्कुल विपरित स्वभाव की परदुःखभंजन, पारिवारिक भावनावाली, निःस्वाधी और संवेदनशील युवती है । कांता अपने चाचा श्रीधर के गृहत्याग के बाद चाची तथा बच्चों का खयाल रखती है । अपने दादा-दादी का ध्यान रखती है और चाचा के बच्चों को माता-पिता के दुर्व्यवहार से बचाती है । कांता स्वयं ससुराल में दुःखी है । वह गुणवंती के सामने अपनी व्यथा प्रकट करती हुई कहती है -“अजीब दकियानुसी से पाला पड़ा है कि क्या बताऊँ । अपनी पढ़ाई-लिखाई तो चौपट हुई है । गुनी पता नहीं पंडितजी ने पढ़ लिखकर क्या हासिल किया ।”⁸⁵

गोरा :

‘उत्तरकथा’ उपन्यास की गोरा एक ऐसे युग में जी रही थी जहाँ युवती का नौकरी करना संभव नहीं था । स्नातक गोरा नौकरी करना चाहती है किन्तु विधवा माँ के लिए यह एक चिंता का विषय बन जाता है । माँ जब दूसरों के घर बर्तन साफ करने जाती तब युवान गोरा की मनःस्थिति अजीब हो जाती -“माँ के चले जाने के बाद दीया जल जाने पर गोरा अपनी आयु को जैसे खुंटी पर टांगकर फिर डरी सहमी आँखों फाड़कर सूनी दिवालों में कांपती चिमनी के आलोक में लटकती चीजों की छायाओं में न जाने कौन-कौन-सी आकृतियाँ देखती थी ।”⁸⁶

गोरा एकाकीपन की इतनी आदी हो जाती है कि लोगों की उपस्थिति का उसे भय लगने लगा था । गोरा की शादी एक युवा वकिल एवं गांधी विचारक के साथ

होती है । परिणामस्वरूप गोरा का उत्तरार्ध का जीवन ठीक-ठाक और सुखमय बितता है । पति-पत्नी गाँव में जाकर सादगीपूर्ण जीवन जीते हैं और ग्रामोद्धार के लिए काम करते हैं ।

प्रेमिला :

‘उत्तरकथा खंड-11’ उपन्यास में दुर्गा के दूसरे बेटे पंचानन की पत्नी प्रेमिला शहरी युवती होते हुए भी अपने परिवार में घुलमिल जाती है । प्रेमिला संस्कारी युवती है । उसका विवेकपूर्ण व्यवहार पाठकों का दिल जीत लेता है ।

आधुनिक स्त्रियाँ :

नरेश जी ने परंपरित भारतीय आर्य नारी के समर्थक होते हुए भी कुछ स्वतंत्र और स्वच्छंद नारी चरित्र को भी चित्रित किया है । इन चरित्रों में प्रथम फाल्गुन की गोपा, डूबते मस्तूल की रंजना, दो एकान्त की वानीरा तथा प्रथम फाल्गुन की श्रीमती लीला साहनी को ले सकते हैं ।

श्रीमती लीला साहनी :

श्रीमती लीला आधुनिक नारी का प्रतिनिधित्व करती है । ‘‘मौतिया रंग की रेशमी साड़ी पर सोने का बाँच तथा दो तिहाई बाँहोवाला उसी रंग तथा कपड़े का उनका फिलवाला ब्लाउज तथा फूगगे निकाले हुए बाल से स्पष्ट था कि श्रीमती साहनी अत्यंत सुरुचिपूर्ण महिला थी ।’’⁸⁷

वह साहित्यिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्र में कार्यरत महिला थी । वह कभी फ्लावर शो, तो कभी चित्र प्रदर्शनी, तो कभी-कभी म्युजिक शो का कार्यक्रम आयोजित करती थी । वह तमाम कला में निपुण, बहुश्रुत महिला थी । वह पढ़ने की शौकीन थी । उसकी निजी लाईब्रेरी में रामकृष्ण परमहंस, श्री अरविंद तथा विवेकानंद के पुस्तक पड़े थे ।

वह खुले स्वभाव की धनाढ्य महिला थी । उसे अपरिचित पुरुषों के साथ उठने-बैठने में संकोच नहीं होता । वह विवाहिता होते हुए भी महिम के सामने प्रेम का इजहार करती है – ‘‘तुम जानते हो मैं भी तुम्हें स्नेह करती हूँ । नहीं जानते हो?

इसीलिए कि मुझे तुम अच्छे कलाकार लगे । मैं तुम्हारे संपर्क में आना चाहती रही पर तुमने सदा मेरा तिरस्कार किया ।”⁸⁸

अतः नरेश जी के नारी चरित्र का यही संदेश है कि नारी एक शक्ति है । अपनी क्षमा सहनशीलता, दया-प्रेम, त्याग आदि के द्वारा पुरुष को मनुष्य बनाती है । नरेश जी के शब्दों में कहें तो -“स्त्री तो एक ऐसा इत्र है जिससे मन सुवासित होता है वस्त्र नहीं । वस्त्रोंवाला इत्र तो उड़ जाता है परंतु मन को सुवासित करनेवाला यह स्त्री इत्र शायद कभी नहीं छूटता, जन्म-जन्मांतर तक नहीं ।”⁸⁹

पुरुष चरित्र :

राजनीति से जुड़े चरित्र :

नरेश जी पारिवारिक उपन्यासकार हैं । उनके उपन्यासों को शुद्ध राजनीतिक उपन्यास नहीं कहा जा सकता । फिर भी युगीन वातावरण से प्रभावित हुए बिना नरेश जी नहीं रह पाये । उन्होंने ब्रिटिश शासित प्रदेशों की राजनैतिक हलचल का विस्तृत परिचय दिया है । 1942 में महात्मा गांधी प्रेरित असहयोग आंदोलन, सत्याग्रह, जलियावाला हत्याकांड, विदेशी वस्त्रों की होली, सभाएँ, चरखा कांतन, अंग्रेजों के अत्याचार, क्रांतिकारी दल की गतिविधियाँ, जेलयात्रा, शहीदों की फाँसी आदि का वर्णन ‘यह पथ बन्धु था’ तथा ‘उत्तरकथा खण्ड - I, II’ दोनों में मिलता है ।

राजनीति से जुड़े उपर्युक्त चरित्रों में महात्मा गांधी, लोकमान्य तिलक, गोपाल कृष्ण गोखले, जवाहरलाल नेहरू आदि के नाम आते हैं । एक तरफ सत्यनिष्ठ देशभक्त और राजनीतिज्ञ है तो दूसरी तरफ स्वार्थी, दंभी, धिनौने, सत्तालोलुप, गांधी विचारों का दुरुपयोग करनेवाले गुण्डे प्रधान है । इन लोगों की अवसरवादिता, विलासिता, सत्ता की खींचातानी आदि वर्णनों द्वारा युगीन वातावरण को जीवंत बना दिया है ।

‘उत्तरकथा खंड-II’ में नवजागरण प्रकरण के अंतर्गत गांधी प्रेरित राजनीतिक बहस का विशद वर्णन किया गया है । मालवा में युवराज जनरल लाईब्रेरी बुद्धिजीवियों का अड़्डा माना जाता था। वहाँ अवकाश-प्राप्त अफसर तारबाबू, पोस्ट

मास्टर, शिक्षक, वकील, कवि और लेखक इकट्ठे होते थे जिन्होंने गांधी और गोखले के चरित्र को वर्णित किया है ।

तिलक में ऋषियोंवाली आर्ष ऋजुता थी तो गांधीजी में वैष्णवी विदुरता । दोनों वकील थे पर दोनों की व्याख्याएँ भिन्न थी । गांधी वैष्णवी आध्यात्मिक थे तो तिलक धार्मिक कर्मकाण्डी । दोनों को कृष्ण उपदेश गीता ग्रंथ अच्छा लगता था परंतु एक व्यक्ति को कर्म में आस्था थी, दूसरे को चरखा में । तिलक 'केसरी' के माध्यम से गर्जना करते थे और गांधीजी 'हरिजन' के माध्यम से । तिलक के लिए राजनीति केवल राजनीति थी जबकि गांधी के लिए राजनीति मूल्य थी । तिलक प्रखर राजनीतिज्ञ गांधी विनम्र नीतिज्ञ । तिलक नारियल की भाँति ऊपर से कठोर अन्दर से रसमय थे। गांधी खजूर की तरह ऊपर से लाख मीठे थे अन्दर से न झुकनेवाले। तिलक में ब्राह्मणत्व था गांधी में सहज ग्रामीणत्व । तिलक ने आंदोलन करनेवाले विचार दिए। गांधी ने रचनात्मक कार्यक्रम। तिलक गीता के कर्म पर ठहर गये। गांधी गीता के योग तक पहुँचे। तिलक ओजस्वी वक्ता और गांधीजी निराभिमानी प्रवक्ता थे। गांधीजी के लिए देश एक पूजाघर है जबकि तिलक के लिए केवल एक राज्य।

उत्तरकथा में कुछ चरित्र सुबोत साहब, सूर्यवंशी, रावजली, पन्नालाल, आजाद, जमनालाल चोरसीया, माधोप्रसाद, हनुमानप्रसाद, राजेन्द्र सोनी, गिरधर ठक्कर तथा गोविंद जोशी जैसे कांग्रेस के सक्रिय कार्यकर्ता थे जिनका ध्येय स्वतंत्रता प्राप्ति का है सत्ता प्राप्ति का नहीं ।

गोविंद जोशी :

गोविंद जी देशभक्त और गांधी विचारधारा के समर्थक थे। वे रोज आधे घण्टे तक चरखा कांतते। उनका मानना था कि गांधीजी के बलिदान को देश भूलने लगा है। जब गांधीजी को कोई नहीं पूछता तो भला उसे कोई क्यों पूछे। उसने स्वयं को सक्रिय राजनीति से अलग करके गांधीवादी विचारधारा को जीवित रखने हेतु ग्रामनिवास के लिए प्रयाण किया। अतः गांधी के विचार आत्मसात् करनेवाले मूल्यनिष्ठ आदर्श कार्यकर के रूप में गोविंद उत्तरकथा के महत्त्वपूर्ण चरित्र बन जाते हैं।

बड़े गुरुजी :

‘उत्तरकथा’ के गिरधर ठक्कर तथा ‘नदी यशस्वी है’ के सैंकड मास्टर लालसिंह, उदयन के बड़े गुरुजी शिक्षक होते हुए भी सिर से पैर तक गांधीवादी नज़र आते थे । खदर की धोती, लम्बा कुर्ता, चंदन का सफेद तिलक तथा सिर से पैर तक दिखावे और विचारों में गांधीवादी थे। उत्तरकथा के मनोहर उपाध्याय गांधी-विचार के हिमायती थे। खादी भंडार चलाते थे तथा स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय कार्यकर थे। ‘यह पथ बन्धु था’ के मालवीया जी स्वदेशी चीजों के आग्रही थे।

उपर्युक्त तमाम चरित्रों में कोई न कोई मूल्य है जबकि कुछ ढोंगी, दंभी, संकुचित विचारधारा के सत्तालालचु प्रधान भी हैं ।

श्री पुस्तके साहब :

मझला कद, गेहुँआ वर्ण, लम्बा कोट, धोती ऊपर दुपट्टा, माथे पर त्रिपुण्ड, चेहरे पर चतुराई देखकर मालूम पड़ता है कि श्री पुस्तके साहब पक्के नेता हैं । वे शोषक हैं । देश सेवा के नाम पर अपना घर भरते हैं । उसके चरित्र का अंश देखें - “यह पुस्तके ढोंगी व्यक्ति है । हरिजन-फंड, खादी फंड, चरखा फंड, महिला फंड जाने किन-किन फंडों का चंदा खाये बैठे हैं ।”⁹⁰

श्री पुस्तके दकियानुसी खयालों के इन्सान है । अपनी पुत्री कमला क्रांतिकारी बिशनबाबू को चाहती है और शादी करना चाहती है किन्तु श्री पुस्तके कमला को शादी से इन्कार कर देते हैं और बिशनबाबू को भी धाक-धमकी देते हैं।

बड़े स्वार्थी और तकवादी नेता हैं । श्रीधर से ढेर सारा काम करवाते हैं और वक्त निकल जाने पर उसकी उपेक्षा करते हैं । ऐसे शोषणखोर, ढोंगी नेता के कारनामों देखकर बिशनबाबू दुःखी होकर श्रीधर से कहते हैं कि - “मैं भी एक आदर्श के कारण राजनीति में आया था, दुःख या परिताप इस बात का है श्रीधर कि अंग्रेजों के शोषण को तो हम शोषण कह कर सब उसके विरुद्ध सत्याग्रह करेंगे लेकिन इन पुस्तके साहब जैसे लोगों के शोषण को आप त्याग, तपस्या, देशसेवा आदि कहने के लिए बाध्य है । आज पाँच बरस से घुट रहा हूँ कोई उत्तर नहीं मिलता ।”⁹¹

सकलदीप नारायण :

सकलदीप नारायण नेता के वेश में छिपा भेड़िया है, जिसका अपना कोई चरित्र नहीं है । सत्ता के लिए किसी की हत्या कराने वाला सत्तालोलुप इन्सान है । अपने भाई वंशदीप के अखबार में झुठमुठ के जेल-संस्मरण छपवाकर सस्ती प्रसिद्धि प्राप्त करता है । लोगों के सामने देशभक्ति दंभ करते हुए मुख्यमंत्री बन जाता है । मुख्यमंत्री बनने के बाद अपने भाई की सामान्य पत्रिका चलाने के लिए श्रीधर की सत्य उगलनेवाली 'शंखनाद' पत्रिका बंद करवाता है ।

अन्य राजनैतिक चरित्रों में पाठशाला के महंत शास्त्री जी हैं, जो बड़े नेताओं के काम में हाथ बंटाते हैं तथा जी-हजुरी करते हैं । अतः राजनीति से जुड़े सक्रिय बुद्धिजीवीवर्ग भी है और अनपढ़ भी । संक्षेप में कहें तो हर चरित्र गुटबंधी में शामिल है जिसका ध्येय सत्ता तक पहुँचने के अलावा कुछ भी नहीं है ।

क्रांतिकारी चरित्र :

राष्ट्रीय आंदोलन दो भागों में बंटा था एक अहिंसक और दूसरा हिंसक । एक का शस्त्र असहाकर था और दूसरे का बंब । सुभाषचन्द्र बोझ हिंसक आंदोलन के समर्थक थे । 'यह पथ बन्धु था', 'डूबते मस्तूल' तथा 'नदी यशस्वी है' उपन्यासों में क्रांतिकारियों की गतिविधियों का कम किन्तु प्रभावशाली वर्णन पाया जाता है । ये क्रांतिकारी सभा और भाषण की भाषा नहीं जानते । वे सीधा अपने कार्य को अन्जाम देते हैं । ये सभी चरित्रों में निष्ठा, वफादारी, कर्मठता तथा देशभक्ति के गुण मौजूद हैं । वे सारे गुप्त रूप से बंब बनाकर अंग्रेज अफसरों पर दाग ने वाले सच्चे वीर और देश समर्थक लोग हैं ।

बिशनबाबू :

'यह पथ बन्धु था' के बिशनबाबू क्रांतिकारी दल के युवा नेता हैं । सुता हुआ मुंह, तेज नाक-नक्श, सटे पतले होठ तथा घुंघराले बाल, इकहरे बदन, बड़ी हुई दाढ़ी तथा खदर का कुर्ता-पाजामा पहने हुए बिशनबाबू तेजस्वी दिखाई देते थे ।

बिशनबाबू को पादरियों की बकवास पसंद नहीं फिर भी प्रार्थना तथा संगीत

सुनने गिरजाघर अवश्य जाते । बिशनबाबू के बारे में अनेक धारणाएँ फैली हुई थी । वे अनेक नाम-धारी व्यक्ति हैं । अपना वेश बदलकर खुफिया जानकारी हासिल करते हैं । वे कभी आग्रा, उड़िसा तो कभी इंदौर में दिखाई देते थे । उसे पुलिस भी आज तक नहीं पकड़ सकी थी ।

कवि हृदय बिशनबाबू मालिनी नामक वेश्या को आत्महत्या करने से बचा लेते हैं । बाद में मालिनी वेश्या की आड़ में क्रांतिकारी दल को सहयोग देती है। उस वेश्या के प्रति सहानुभूति अनुभव करते हुए स्वयं से प्रश्न करते हैं कि -“क्या मैं इसे माँ या दीदी कहकर इस महा दुःख से मुक्त कर सकता हूँ ? क्या यह मिथ्या प्रदर्शन भर नहीं है ? क्योंकि माँ या दीदी बनाकर उसके व्यक्तित्व के सुख-दुःख से हम अपने को असंपृक्त कर लेते हैं ।”⁹²

बिशन के मन में सवाल उठता है कि औरों की तरह वह भी मालिनी को दीदी ही बना सका क्या उसे पत्नी या प्रिया नहीं बनाया जा सकता ? पूरे समाज पर कटाक्ष करते हुए बिशन कहता है कि -“हममें साहस नहीं कि बढ़कर हम उसका हाथ पकड़ ले और कहें कि आओ, मेरे पार्श्व में खड़ी हो और मैं तुम्हारा पुरुष !!”⁹³

बिशन परंपरित ढांचे का विरोधी है । वे कुछ अलग करना चाहता है । श्रीधर के साथ के संवाद में उनके स्वतंत्र व्यक्ति का परिचय मिलता है । ‘जीवन, परिवार, गृहस्थी, कुटुंब ऐसे बने-बनाये साँचे होते हैं श्रीधरबाबू कि उनमें बद्ध रहकर मूर्खों की पीढ़ियाँ दर पीढ़ियाँ जीवित रहती आती है और सामाजिकता भी बनाये रखती है । लेकिन आपने एकबार भी उस साँचे से बाहर पैर निकाला तो कोई आपको नहीं स्वीकारते ।’⁹⁴

अंत में बिशनबाबू मालवा हाऊस के अंग्रेज अधिकारी पर हमला करने की योजना में निष्फल रहते हैं और पुलिस के हाथों शहीद हो जाते हैं ।

रत्ना :

रत्ना बिशनबाबू के दल में काम करनेवाली क्रांतिकारी नारी है । दिखने में सीधी-सादी लगनेवाली रत्ना चतुर, निर्भीक, निष्ठावान तथा आत्मविश्वासु नारी है।

वह दिनभर रोजी बनकर ईसाई स्कूल में पढ़ाती है और गतिविधियों पर नज़र रखती है । जो सूचना मिलती है वह प्रत्येक रविवार को बिशनबाबू को पहुंचा दी जाती है । भूगर्भ में रहकर बंब बनाना तथा क्रांतिकारियों तक पहुंचाने का काम बड़ी होशियारी के साथ करती थी । श्रीधरबाबू को चाहते हुए भी इजहार नहीं करती क्योंकि देश सेवा उसके जीवन का लक्ष्य था । क्रांतिकारी दल के किसी युवक की आपसी फूट के कारण वह गिरफ्तार होती है और उसे फाँसी मिलती है ।

मालिनी :

मालिनी क्रांतिकारियों को सहयोग देकर अपने वेश्या जीवन का प्रायश्चित्त करती है । क्रांतिकारियों को बुलाना और छिपाना, तमाम कार्यों की आपसी जानकारी पहुँचाने का कार्य मालिनी करती थी ।

‘नदी यशस्वी है’ उपन्यास में नारायणसिंह, शांतीदीदी के पति तथा कॉलेज के छात्र क्रांतिकारी दल के सदस्य हैं । वे दूकान, बैंक आदि पर डाका डालते हैं और इकट्ठे किए रुपयों का आंदोलन के लिए उपयोग करते हैं । ‘तारनाद कांड’ नामक डाका डालने की घटना में उदयन के जीजाजी और उसके मित्रों को जेल की सजा होती है । श्रीधर राजनीति से जुड़ा हुआ होते हुए भी हृदय से क्रांतिकारियों के साथ था । रत्ना द्वारा दिया गया बंब किसी अन्य जगह पहुंचाते समय श्रीधर को पुलिस पकड़ लेती है और उसे दस साल की जेल होती है ।

अकलंक :

‘डूबते मस्तूल’ उपन्यास का अकलंक एक क्रांतिकारी युवक है । झंडा लेकर जुलूस का प्रतिनिधित्व करनेवाले लड़के को देखकर रंजना के दिल में प्रेम उमड़ आता है । अकलंक का मार्ग विद्रोह और विध्वंस का मार्ग था । अकलंक पुलिस की नज़रों से भागता फिरता था । हिंसा उसका मार्ग है । बंदूक और बंब चलाता है । अंत में वाइसरोय की ट्रेन पर बंब फेंकने के जुर्म में उन्हें आजीवन कारावास मिलता है ।

कम्यूनिस्ट विचारधारावाले चरित्र :

उत्तरकथा खंड-११ उपन्यास की पूरी की पूरी युवा पीढ़ी कम्यूनिस्ट विचारधारा

से रंगी हुई है । त्र्यम्बक, दुर्गा के दो पुत्र चन्द्रशेखर तथा पंचानन दोनों इस विचारधारा के युवक हैं । इन गुटों के अंदर वकील, अध्यापक, डॉक्टर तथा साहित्यकार इकट्ठे होकर कम्युनिस्टों के कार्य की चर्चा करते और होनेवाली गलतियों को सुधारते थे ।

त्र्यम्बक :

उत्तरकथा खंड-1,11 में दुर्गा का पति त्र्यम्बक सुखी एवं संपन्न व्यक्ति है । त्र्यम्बक और दुर्गा शिव-पार्वती के समान आदर्श दांपत्य जीवन के प्रतीक हैं । त्र्यम्बक सरल, दयालु और निःस्वार्थी व्यक्ति है जबकि उसके माता-पिता झगडालु, क्रूर तथा स्वार्थी हैं । उसकी प्रथम पत्नी को उसकी माँ ने कुँए में धकेल कर मार दिया था । दुर्गा उसकी दूसरी पत्नी है जिसे वह बहुत चाहता है ।

त्र्यम्बक सहृदयी, सज्जन इन्सान है । पिताजी ने चाचाजी से जो दुर्व्यवहार किया था इससे त्र्यम्बक आहत होकर चाचा को आर्थिक मदद करता है। उनके मरने के बाद सबका श्राद्धकर्म भी करता है । भौतिकता के पीछे दौड़ते त्र्यम्बक थक कर अपनी वेदना इस प्रकार प्रकट करता है -“घर, गृहस्थी, जमीन-जायदाद या लौकिकता बसाने को बहुत अच्छा लगता है । व्यक्ति को ये सारी चीजें सामाजिक प्रतिष्ठा, मान सम्मान एवं विशिष्टता भी देती है परंतु उनमें निसृत या जुड़ी हुई झंझटें हैं बल्कि कहना चाहिए अमानवीयताएँ हैं वे किसी भी संस्कारी मानस को अन्तरतम पीड़ा, दुःख और संत्रास ही देती है ।”⁹⁵

त्र्यम्बक एक अच्छे पति के साथ अच्छा पिता भी है । अपनी संतानों को अच्छी शिक्षा दिलाकर एक को अध्यापक और दूसरे को वकील बनाया है । लड़कियों को संस्कारी परिवार में ब्याह दी है । त्र्यम्बक निःसंतान फूफा-फूफी की संपत्ति को हाथ तक नहीं लगाता । सारी संपत्ति सामाजिक कार्यों में लगाने का सुझाव देता है । उन दोनों की मौत के बाद स्वयं क्रिया-कर्म पूर्ण करता है । संक्षेप में कहें तो त्र्यम्बक एक परम सुखी, संतोषी पुरुष के रूप में अपनी अमिट छाप पाठक के दिलों-दिमाग पर छोड़ जाता है ।

लोकनाथ रावल :

‘धूमकेतु एक श्रुति’ उपन्यास में नंदन के पिता लोकनाथ जी संपन्न ब्राह्मण थे। वे मुनिम थे परंतु जब सड़क पर से गुजरते तो सेठ से कम नहीं लगते। मधुर और संतोषी व्यक्तित्व है। वे पुष्टिमार्गीय वैष्णव थे। घर में अनुशासन रहता था। किसी भी पुत्र को भटकने नहीं दिया जाता। रात्रि-भोजन के बाद घर के वयस्क सदस्यों के साथ पारिवारिक संबंधों का विश्लेषण किया जाता। इस तरह लोकनाथ रावल एक सफल पुरुष रहे।

उत्सवलाल जोशी :

संसार के महादुःख को शिवजी के जहर की भांति पीनेवाले उत्सवलाल एक विधुर पुरुष थे। उसकी पत्नी को किसी पागल कुत्ते के काटने के बाद आये दिन भयानक दौरे पड़ने लगे थे। उत्सवलाल उसे एक कमरे में बंद करके छोटे बालक को घर अकेला छोड़कर कचहरी में स्टैम्प बेचने जाते। पत्नी की मृत्यु के बाद वे बिलकुल टूट जाते हैं। पत्नी की मृत्यु के बाद वे अनुभव करते थे कि उसका जन्म स्मशान में हुआ है और घर भी स्मशान में बसाया है। उसे न चाहते हुए भी अपने एक मात्र पुत्र को गरीबी और एकाकी जीवन के कारण दत्तक देना पड़ा।

उत्सवलाल अपने पुत्र को खूब चाहते थे। पुत्र के घर आने की खबर मात्र से घर को साफ कर देते हैं। सुगंधी साबुन ले आते हैं, पुत्र को गरमी न लग जाये इस कारण खिड़की पर परदे लगाते हैं। अज्ञात में वे हमेशा आशंकित रहते थे कि कहीं पत्नी की तरह पुत्र भी खोना न पड़े। वे अपने आपको अशुभ मानते थे। अपने पुत्र के होते हुए भी शेष जीवन ठाकुर जी की सेवा में बिताते हुए इस दुनिया से विदा लेते हैं।

आनंदशंकर दवे :

दुर्गा और शिवशंकर के मामा पुत्र जन्म के साथ आजीवन बीमार पत्नी की सेवा में जिन्दगी गुजार देते हैं। स्कूल के हेडमास्टर होते हुए भी घर का सारा कामकाज यहाँ तक कि रसोई भी खुद बना लेते थे। पत्नी की मृत्यु के बाद

इकलौती संतान भी उसे छोड़कर शहर चली जाती है । शहर में पुत्र की हत्या हो जाती है । अकेले पुत्रवधू और पौत्री की जिम्मेदारी निभाते हैं । उसका सारा जीवन दूसरों की सेवा में गुजर जाता है ।

गोवर्धन व्यास :

गोवर्धन का पुत्र आवारा और पत्नी कर्कशा तथा विचित्र स्वभाववाली है जिससे तंग आकर वे नाथद्वारा चले जाते हैं । पुत्र और पत्नी के साथ उसका मन और हृदय मिला ही नहीं । परिस्थितियों ने उसे अन्तर्मुखी बना दिया । गृहस्थ जीवन त्यागने के बाद भी पुत्र और पत्नी की चिंता करते रहते । उन्हें आजीवन अफसोस रहा कि वे अपनी पत्नी और पुत्र को सुधार नहीं सके । पुत्र ने अपने ही फूफा की हत्या कर दी । अदालत में मुकद्दमा चला और उसे फाँसी की सजा हुई । पुत्र को फाँसी की सजा सुनाने पर लोग गोवर्धन जी पर थू - थू करने लगे । आखिर मजबूर, विवश और अकेलेपन की जिन्दगी जिते हुए इस संसार से बिदा लेते हैं ।

नारायण पंड्या :

उत्तरकथा की यमुना देवी और नारायण पंड्या संतानविहीन वितरागी जीवन बीताते हैं। नारायण कर्मकांडी ब्राह्मण होने के कारण कंधे पर गमछा डालकर क्षिप्रा नदी के किनारे यजमान ढूँढ़ने के लिए टहलते हैं। भस्म का त्रिपुण्ड, ताम्रवर्णी देह और विशाल नेत्र देखकर वे मानव नहीं अभिमानव लगते थे। वे देवी के सच्चे उपासक थे और तांत्रिक साधना में उनको अटूट विश्वास था। उनका मानना था कि तांत्रिक साधना से व्यक्ति सब भयों से मुक्त हो जाता है। अंत में सारी संपत्ति और उत्तरक्रिया की सारी जिम्मेदारी त्र्यम्बक और दुर्गा को सौंपकर इस दुनिया से विदा लेते हैं।

नरेश जी के उपन्यासों में ऐसे कई चरित्र हैं, जो सांसारिक जिम्मेदारी पूर्ण करने के बाद ईश्वर की सेवा में स्वयं को समर्पित कर देते हैं । 'यह पथ बन्धु था' की इन्दुदीदी संपूर्ण जिम्मेदारी पूर्ण होने के बाद काशीवास के लिए निकल पड़ती है। 'प्रथम फाल्गुन' की श्रीमती नाथ भी सारी भौतिकता को त्यागकर तीर्थक्षेत्र में अंतिम

जीवन बिताती है । 'दो एकान्त' के 'प्रथमचन्द्र मुखर्जी' अध्यापन कार्य से निवृत्त होकर महाप्रभुजी की सेवा के लिए निकल पड़ते हैं ।

अविवाहित, निठल्ले तथा तेजस्वी चरित्र :

नरेश जी के उपन्यासों में आधे से ज्यादा चरित्र संसार से व्यथित होकर धार्मिक जीवन जीते हैं । कुछ चरित्र ऐसे हैं जो परिस्थितिवश अविवाहित हैं अथवा जिनको अविवाहित रहना पड़ा है ।

बड़े गुरुजी :

'नदी यशस्वी है' उपन्यास के बड़े गुरुजी अविवाहित हैं । वे उदयन को गायत्री पाठ सिखाने आते थे । पाँच फीट की ताम्रवर्ण देह, ललाट पर भस्म, विशाल त्रिपुण्ड्र, भरी देह, बड़ी-सी तोंद, वस्त्र के नाम पर पीतवर्णी रेशमी सोला, कंधे पर लाल किनारे का उपवस्त्र, हाथ में तांबे का पंचपात्र लिए महादेव की पूजा करने जाते । वे रुद्रपाठ, चण्डीपाठ, गायत्री की मालाएँ सस्वर करते थे ।

पुराजी बा :

'धूमकेतु एक श्रुति' उपन्यास में तेजस्वी, स्वाभिमानी, विधुर पुरुष के रूप में पुराजी बा का व्यक्तित्व अलग किस्म का था । पुराजी बा संसार में रहकर भी संन्यासी थे । वे राजा-महाराजाओं का ज्योतिष देखने का काम करते थे । वे तपस्वी, विनम्र, मृदुभाषी और शतरंज के शौकीन व्यक्ति थे । वे स्वाभिमानी व्यक्ति हैं इसकी प्रतीति तब होती है जब राजपंडित के लिए राज से आमंत्रण मिलता है । "ब्राह्मण का धन उसका तेज है जिसे वह त्याग से तपस्या से प्राप्त करता है । मुझे न राज-सम्मान चाहिए, न राज्याश्रय जितने का पात्र हूँ भगवान उतना दे देता है । सिद्धनाथ आचार्य ने भगवान को समर्पण किया है अब भला इन राजा-महाराजाओं की क्या चिंता ।"⁹⁶

वैकुण्ठनंदन त्रिपाठी :

वैकुण्ठनंदन ने ब्राह्मण के शरीर में बनिये की चतुराई लेकर जन्म लिया था । उसकी पहुंच राजा-महाराजाओं तक थी । सामनेवाले व्यक्तित्व को दबाने में माहिर

थे। वे दुर्गा की सगाई करते वक्त बड़ी चतुराई से बिना दहेज विवाह तय कर लेते हैं। वे दुर्गा के ससुर को अपने कारनामे सुनाकर उसकी बोलती बंद कर देते हैं । वे महादेव शुक्ल को कहते हैं कि -“त्र्यम्बक के वास्ते दूसरी लड़की यहाँ मिलेगी यह असंभव है । सारी उज्जैन जानती है कि बहू क्यों और कैसे नहीं रही । मैं आपकी पगड़ी उछाल रहा हूँ महाराज ।”⁹⁷

“..... और हाँ श्रीमान एक बात और पक्की समजिएगा कि यदि दान-दहेज का नाम लिया तो भरी सभा में पोलपट्टी खुलेगी । फिर किटी करवानी हो तो दहेज का नाम लेना ।”⁹⁸

इस प्रकार देखें तो वैकुण्ठनन्दन त्रिपाठी के पास वाक्चातुर्य था । वे कटाक्ष करने में माहिर थे । शब्दबाणों से सामनेवाले को बेधने की ताकत रखते थे । संक्षेप में कहे तो उसमें चाणक्य जैसी कुटनीति और चतुराई नज़र आती है ।

उत्तरकथा में रमण आचार्य के दो युवा पुत्र गरीब पिताजी को आर्थिक मदद करने के बजाय गैर-जिम्मेदार एवं निश्चित होकर एक पेड़ के नीचे हार्मोनियम बजाता और दूसरा आवारा गर्दी करता था । संक्षेप में कहे तो दोनों पुत्र निठल्ले थे।

उत्तरकथा के अवन्तीलाल और फून्दीलाल को माँ की दूसरी शादी होने के कारण आजीवन अविवाहित रहना पड़ा था। समाज ने उसे नात से बाहर कर दिया था। फून्दीलाल बहुत आलसी थे और अवन्तीलाल थोड़ा-बहुत कमा लेते थे। दोनों भाई अत्यधिक गरीबी, एकाकीपन और उपेक्षित जीवन के कारण भीतर से टूट गये थे।

‘नदी यशस्वी है’ उपन्यास में वामन गणेश आई ने पुरी भी आजीवन अविवाहित रहे । पहले वे स्टेशन मास्टर थे । छोटी-सी गलती के कारण उसको नौकरी से हाथ धोना पड़ा । पिताजी की सिफारिश से उन्हें ग्रंथालय में नौकरी मिल गई । ग्रंथालय में भी लालटेन हाथ से गिरने के कारण ग्रंथालय में आग लग जाती है । यह एक अकस्मात था, फिर भी अपने आप को कसुरवार समझकर आत्महत्या कर लेते हैं ।

तारबाबू :

‘नदी यशस्वी है’ उपन्यास के तारबाबू निवृत्त और अविवाहित व्यक्ति है । उसकी अपनी निजी दुनिया में शराब पीकर मस्त पड़े रहते हैं । वे पार्टियाँ, पिकनिक, शिकार, नौकायात्रा के शैकीन है । वे अपने विविध शौक के द्वारा अपने एकाकीपन को भरने का प्रयत्न करते हैं । हमेशा कुछ न कुछ करने का कारण कसबे के सबसे व्यस्त व्यक्ति माने जाते थे ।

गोविंदराम जानी :

उत्तरकथा में त्र्यम्बक की माँ कृष्णादेवी के मामा के पुत्र गोविंदराम जानी अविवाहित थे । वे नख-शिख प्रामाणिक व्यक्ति थे । उसने कभी किसी के दबाव या लालच में आकर काम नहीं किया । वे स्वावलम्बी इन्सान थे । वे अपना काम खुद करते थे, कभी किसी पर निर्भर रहना उसे अच्छा नहीं लगा ।

स्टेट कमिश्नर साहब :

उत्तरकथा में सबसे अधिक प्रभावी पात्र स्टेट कमिश्नर साहब का है जिन्हें लोग साहब के नाम से जानते हैं । बंद गले का कोट, चुड़ीदार पाजामा तथा हाथ में साधारण-सी छड़ी, प्रसन्न आँखें, माथे पर तिलक लगाये बिलकुल सात्विक लगते थे । उन्होंने अपनी सारी संपत्ति विद्यार्थियों को सहाय करने में तथा विद्यालय खोलने में खर्च कर दी थी ।

अन्य चरित्रों में ‘नदी यशस्वी है’ के लालसिंह ने भी शादी नहीं की है । ‘प्रथम फाल्गुन’ का महिम गोपा के नाजायज जन्म की खबर सुनकर समाज के भय से गोपा से मुंह मोड़ लेता है, किन्तु दूसरी शादी नहीं करता ।

राजघराने अथवा रजवाड़ों से जुड़े चरित्र :

‘यह पथ बन्धु था’ तथा ‘नदी यशस्वी है’ दोनों उपन्यासों में राजघराने और रजवाड़े पूर्णतः नष्ट नहीं हुए । इसमें रजवाड़े का दबदबा, चमक-दमक, ठाठबाट, तानाशाही, मिथ्यादंभ और दुर्गति इत्यादि का विस्तृत वर्णन मिलता है ।

बालासाहब :

‘यह पथ बन्धु था’ उपन्यास के मराठा सरदार है । उन्होंने वृद्धावस्था में पुत्री से कम उम्र की सुंदरी से तीसरी शादी की थी । वे शिवभक्त थे । पहली पत्नी की बेटी इन्दु विवाह के बाद विधवा बनकर घर लौटी थी, दूसरी पत्नी के बेटे वामनराव को अपनी सौतेली माँ से मनमुटाव था । वे अजमेर कॉलेज में पढ़ते थे । उसकी तीसरी पत्नी को वृद्ध बालासाहब पसंद नहीं थे । वह श्रीमंत सरकार को चाहती थी। यही कारण था कि पत्नी के अनैतिक संबंधों से तंग आकर बालासाहब झरोखों से छलांग लगाकर आत्महत्या कर लेते हैं ।

वामनराव :

वामनराव बालासाहब के पुत्र और इन्दुदीदी के सौतेले भाई है । वह स्वभाव से अभिमानी और उद्धत युवक हैं । वह किसी छोटी व्यक्ति के साथ सीधे मुँह बात नहीं करते । वे अजमेर कॉलेज में पढ़ते थे और स्वयं को लाटसाहब समझते थे । उसे गाँव पसंद नहीं था । वे अपनी दीदी से कहते थे कि -“यहाँ दीदी क्या रखा है? सिर्फ मूर्ख बसते हैं । देखती नहीं है कितने छोटे लोग रहते हैं, चारों ओर मेरा तो दम घुटता है । पता नहीं तुम लोग यहाँ कैसे इन लोगों से घुल-मिल लेते हो ? वहाँ तो बस! पूछो नहीं जाने कहाँ - कहाँ से राजकुमार पढ़ते हैं ।”⁹⁹

वीरसिंह :

‘नदी यशस्वी है’ उपन्यास में चरित्र-चित्रण के लिए परोक्ष शैली का प्रयोग किया है । उदयन का दोस्त भवानी उदयन को खंडित हवेली दिखाने के लिए ले जाता है, जहाँ दोनों दोस्तों को हवेली का चौकीदार मंडलोई परिवार तथा सामंतों की कथा सुनाते हैं ।

वीरसिंह मंडलोई परिवार के प्रथम सामंत थे । उन्होंने पाँच-पाँच शादियाँ की परंतु संतान सुख प्राप्त नहीं हो पाया । एक किवदंति के अनुसार वीरसिंह ने एक तेजस्वी ब्राह्मण को हवेली पर शास्त्रोक्त विधि के लिए बुलाया था जिनके स्पर्श मात्र से वीरसिंह की पत्नी को गर्भ रहा था । कालांतर वीरसिंह नरेन्द्रसिंह के पिता हुए

थे। वे कब तक जीवित रहे, उनका क्या हुआ आदि बातों का कोई उल्लेख नहीं मिलता ।

नरेन्द्र सिंह :

नरेन्द्र सिंह नख-शिख सामंती युवान थे । उनके वंशज आपात्काल में मुसलमान हो गये थे । उसे पढ़ने-लिखने में कोई रुचि नहीं थी । इस कारण कोई परीक्षा पास नहीं कर पाये थे । वे समय के पक्के थे । राज्य में जितने दरबार भरे जाते वे समय पर पहुँच जाते । शरीर पर सफेद कपड़ा और उस पर जोधपुरी कोट पहनते थे । उनकी नीली आँखों में कोमलता, चाल में प्रसन्नता तथा हास्य में गुलमहोरी आभा थी । सुंदर वेशभूषा तथा विशिष्ट व्यक्तित्व के कारण वे अन्य सामंतों से अलग दिखते थे ।

इसके पूरे खानदान में से किसीने गलत तरीके से रुपये इकट्ठे नहीं किए थे । वे उत्सव और त्यौहार में सबसे ज्यादा चंदा देनेवाले दूसरे नंबर के सरदार थे । उनके बाल काटने पोलिटिकल ऐजेंट का नाई आता था । वे इतने अमीर थे कि उनके कपड़े इंदौर धुलवाने जाते थे । वे अकेले व्यक्ति थे जो टाई और हेट पहनते थे । उनके घर अंग्रेजी अखबार आता था और खुद कसबे के पुस्तकालय के मंत्री थे । वे पढ़ने के शौकिन व्यक्ति थे । अंत में कहे तो नरेन्द्रसिंह एक विचारवान, निराभिमानी, तेजस्वी सामंत का प्रतिनिधित्व करते हैं ।

मंडलोई रामलाल सिंह :

चौकीदार श्यामराव से उदयन ने जाना था कि मंडलोई की हवेली शापित थी । उसमें रहनेवाले किसी सामंत के घर संतान पैदा नहीं होती थी बल्कि गोद लेनी पड़ती थी । गोद लिया बालक भी महाराज बनते ही इस शापित परंपरा में शामिल हो जाता था । उन्हें भी बाहर से संतान गोद लेनी पड़ती थी । इस हवेली में रहनेवाले सामंत प्रौढ़ावस्था तक पहुँचते ही मर जाते थे, परिणामस्वरूप सास-बहुओं को विधवा बनकर एक लम्बा जीवन हवेली में बिताना पड़ता था । रामलाल सिंह सत्ता पर आये दो साल हुए थे कि उनकी मौत हो गई । रामलाल सिंह ने किसी

बालक को गोद नहीं लिया था परिणामस्वरूप उनकी सारी जागीर 'कोर्ट ऑफ वॉईस' में चली गई और हवेली का फाटक हमेशा के लिए बंद कर दिया गया ।

मंडलोई यशवंतराव पतके :

रामलाल सिंह की हवेली के पास मंडलोई यशवंतराव पतके की हवेली बीसियों दालान, छज्जें और झंझरीदार गवाक्षोंवाली की साक्षी स्वरूप आज भी वैसी ही खड़ी थी । पतके परिवार में बहुत कम सरदार हुए जिसमें यशवंतराव पतके अंतिम सरदार थे । उसके जीवन में उस समय तुफान उठा जब बेटे के यज्ञोपवित के दिन नाचने आई अत्यधिक सुंदर वेश्या पर मोहित होकर शादी करनी चाही । इस बात को लेकर पति-पत्नी के बीच काफी विवाद हुआ । आखिर चैत्र पूर्णिमा के दिन काशीबाई की हत्या हो गई । हत्या की जिम्मेदारी यशवंतराव पर थोपी गई । वे समाज में बदनाम हो गये और उसे गाँव छोड़ना पड़ा । छोटा पुत्र माँ के बिना ज्यादा दिन जिन्दा न रह सका और मर गया । काशीबाई की हत्या के बाद वहीदा रात में नदी पार करके भाग गई । इस तरह एक सुखी और संपन्न परिवार बरबाद हो गया और सारी संपत्ति सरकार में चली गई ।

मरहटा सरदार शिंदेराव की रखैल :

राजघरानों के पुरुषों की ऐयासी जगप्रसिद्ध थी । उनके लिए किसी वेश्या के साथ संबंध रखना या रखैल पालना आम बात थी । उन पुरुषों में कई सज्जनों की वेश्या या रखैल थी जिनकी जिम्मेदारी वे अंत तक निभाते थे । इसके विपरीत कुछ चरित्र ऐसे भी थे जिनकी दृष्टि नारी सौन्दर्य तक सीमित थी । सौन्दर्य कम होते ही उसे छोड़ दिया था । मरहटा सरदार शिंदेराव की रखैल ऐसी ही उपेक्षित, पागल स्त्री है । शिंदेराव के वंशज के चले जाने के बाद सरदार की खंडित हवेली के सज्जे के नीचे पड़ी रहती । उस बुढ़िया ने शुरुआत में कोर्ट-कचहरी भी की परंतु कोर्ट ने भी उन्हें कोई अधिकार नहीं दिया । अंत में वह पागल हो गई । रास्ते से निकलनेवालों को गालियाँ देती और दिनभर बड़बड़ाती रहती कि 'रावसाहब को कहना उनकी रानी साहिबा ने उनको बुलाया है ।'

अंत में कहे तो नरेश जी ने रजवाड़ों में स्त्रियों की जो दशा थी और जिस तरह से उसका शोषण किया जाता था इसका जीवंत चित्रण प्रस्तुत किया है ।

राजघराने के अन्य निम्नवर्ग के चरित्र :

घुडसवारी शिक्षक मुनीरखाँ :

‘नदी यशस्वी है’ उपन्यास का मुनीरखाँ एक करुण चरित्र है । वह पेशेवर घुडसवारी शिक्षक था । सन् 1914 की जर्मनी की लड़ाई में वह घोड़ों की अदल में फ्रांस तक हो आया था । “नाटा-गदरायासा, अघेड़ उम्र का मुनीरखाँ के पट्टेदार लंबे बाल, छोटी-सी दाढ़ी हमेशा मेंहदी से रंगी रहती थी । तंग पायचे का पाजामा, कमीज और उसके ऊपर काफी पुरानी बासकट जिसकी एक जेब से उसीकी तरह बुढ़ा गये उसके भोपाली बहुए की घुंड़ीदार डोरियाँ झुलती रहती थी।”¹⁰⁰

उसके पिताजी मंदिर की सीढ़ियों पर बैठकर भीख मांगते थे और माताजी जमींदारों के यहाँ कामकाज करती थी । वह जब पाँच साल का था उस वक्त किसी मौलवी ने उसकी माँ को घर में बिठा दिया था । बालक मुनीरखाँ पहले भीख मांगते हुए गोरे लेफ्टेंटों और कर्नलों के अस्तबलों में नौकरी करने लगे । उसे घोड़े खरीदने-परखने विदेश भी जाना पड़ता था । वह पुरुषार्थी, उन्मुक्त तथा बन्धनहीन स्वभाव के व्यक्ति थे । मुनीरखाँ को किसी नौकरानी की इज्जत लुटने के कारण महाराज ने चौक में खुंटे से बांधकर फटकारा तथा नौकरी से निकाल दिया ।

श्यामराव :

यशवंतराव पतके का वफादार चौकीदार है, जो मालिक की गैरहाजरी में खंडित हवेली की चौकीदारी करता है । प्रथम जर्मन लड़ाई में श्यामराव को अपने आधे पाँव को कटवाना पड़ा था । अपाहिज होने के बाद मालिक ने तनख्वाह बंद कर दी फिर भी उसने हवेली नहीं छोड़ी । वह हवेली के अंदर एक झोंपड़े में पड़ा रहता था । अपने जीवन के अकेलेपन को दूर करने के लिए मराठी लोकगीत गाया करता था । उसकी विचित्र वेशभूषा का वर्णन करते हुए नरेश जी लिखते हैं - “गोरखाली हेट, कीड़े खाया हुआ बरामकोट, कंधे पर बंदूक, फौजी जूते प्रायः इसी

भूषा में लोगों ने उसे देखा था । गले में तिरछी बंदूक टंगी रहती थी । मूँछे सफेद थी । उसके सारे व्यक्तित्व में अनाथ पालतू कूत्ते की-सी दयनीयता नज़र आती थी।”

गुलाम हीरासिंह :

हीरासिंह नरेन्द्रसिंह के पिताजी वीरसिंह को दहेज में मिला था । वह नरेन्द्रसिंह की हवेली के जनाना परदे की चौकीदारी करता था । वह बैठे हुए लगातार चीलम पीता रहता जिसके कारण उसे गहरी खांसी हो गई है ।

अंत में कहें तो राजा-रजबाड़े से जुड़े तमाम चरित्र अंग्रेजों के जमाने में जिनक दबदबा था ऐसे जमींदारों, ठाकुरों, सरदारों, मंडलोई तथा सामंतों की शानों-शौकत, तानाशाही तथा उसके पतन के इतिहास को जीवंत किया है ।

स्वार्थी, संकुचित पारिवारिक भावनावाले चरित्र :

नरेश जी ने संयुक्त परिवार तथा टूटते हुए परिवार की मनोव्यथा, आपसी राग-द्वेष, स्वार्थ के साथ प्रेम, त्याग और क्षमा जैसे मूल्यों का निरूपण किया है । इन चरित्रों में उत्तरकथा के महादेव शुक्ल तथा उत्सवलाल जोशी के भाई उध्वदास को ले सकते हैं, जिन्होंने सारी पैतृक संपत्ति अकेले ऐंठ ली थी । ‘धूमकेतु एक श्रुति’ के लज्जाशंकर के दोनों भाई पिता की मृत्यु के बाद पिता की परंपरित राजपंडित की गद्दी हड़प लेते हैं और उसका हिस्सा भी नहीं देते ।

‘यह पथ बन्धु था’ तथा ‘धूमकेतु एक श्रुति’ उपन्यास के चरित्र बड़े स्वार्थी, संकुचित तथा निष्ठुर हृदय के हैं । ‘यह पथ बन्धु था’ में श्रीधर के भाई-भाभी, श्रीवल्लभ तथा श्रीमोहन तथा ‘धूमकेतु एक श्रुति’ में लज्जाशंकर का मझला बेटा सूर्यशंकर इस कोटि के चरित्र हैं ।

सूर्यशंकर :

लज्जाशंकर के मझले बेटे जिलाधीश के पद पर थे । उसे अपने बड़े भाई के प्रति आदर कम था । स्वयं अच्छे पद पर थे, संपत्तिवान थे, अकेले थे फिरभी पिताजी ने इच्छाशंकर की तीन-तीन शादियाँ और उसके बेटे के यज्ञोपवित में बहुत रुपये खर्च कर दिए हैं ऐसी दलील करके वे पिताजी की सारी संपत्ति अकेला हड़प

लेता है । अपने भाइयों को फूटी कोड़ी भी नहीं देता ।

‘यह पथ बन्धु था’ में श्रीनाथ ठाकुर के बड़े बेटे तथा श्रीधर के बड़े भाई श्रीमोहन रिश्तेदार हैं । लांच, रिश्वत, भ्रष्टाचार द्वारा अच्छी खासी संपत्ति इकठ्ठी की थी । श्रीमोहन बड़ा स्वार्थी है । वे संयुक्त जायदाद में से चोरी-छिपे पत्नी के लिए गहना और बीमा उतरवाता है । श्रीधर की नौकरी छूटने के बाद उसके परिवार को मदद करने के बजाय कुछ भी देने से इन्कार कर देता है । वृद्ध माता-पिता तथा श्रीधर के बीवी-बच्चों को दारुण गरीबी में छोड़कर अपने परिवार के साथ अलग हो जाता है । वे साफ शब्दों में अपने पिताजी से कह देता है कि -“अब वे श्रीधर के नालायक बच्चों के साथ अपने बच्चों को नहीं रख सकता ।”¹⁰¹

श्री मोहन जमींदारी, बगीचा खरीदता है और अच्छा मकान बनाता है । अपने परिवार के बदले ससुराल को महत्व देता है । क्योंकि झगडालु पत्नी के सामने उसकी कुछ नहीं चलती । स्वयं पिता व्यथित दिल से कहते हैं कि -“बड़े ने मेरे जीवन की सारी कमाई, प्रतिष्ठा पर पानी फेर दिया क्योंकि उसे अपने लिए प्रतिष्ठा, धन सभी तो अर्जित करना था । अपनी प्रगति में वह परिवारवालों को बाधा पाता है । इसलिए वह सबके प्रति निर्मम हो गया है ।”¹⁰²

“रिश्तेदार क्या हो गया नादिरशाह हो गया। बड़ा लाट बनता फिरता है? कुछ पता भी है कि तुम पर खर्चा हुआ है? चले हैं हिसाब माँगने? बाप से बराबरी करके लाज नहीं आयी। औरत ने सिखा-पढ़ा दिया तो बस लोगों को चूसता फिरता है।”¹⁰³

अंत में पिताजी से अपने हिस्से का मकान तो ले ही लेता है साथ-साथ छोटे भाई का हिस्सा हड़पकर पैतृक संपत्ति का आधा मकान किसी मारवाडी को बेच देता है। संक्षेप में कहे तो सूर्यशंकर कठोर और निर्दयी व्यक्ति है। वे परिवार की नज़रों से तो गिर ही जाता है साथ-साथ पाठक भी उसे नफरत की नज़रों से देखने लगते हैं।

श्रीवल्लभ :

श्रीनाथ ठाकुर के बेटे श्रीवल्लभ का उपन्यास में उल्लेख मात्र है । एक जगह

श्रीनाथ ठाकुर के मुंह से श्रीवल्लभ के चरित्र की थोड़ी झलक मिलती है ।

“ और वह श्रीवल्लभ अपनी सास की अंगुलियाँ पर नाचनेवाला व्यक्ति जहाँ सुख-समृद्धि, साधन दिखे उसी ओर बह कर चले जानेवाला पानी का रेला।”¹⁰⁴

श्रीवल्लभ अपनी ससुराल में ही रहता था इसलिए घर की जिम्मेदारी उसने कभी नहीं निभायी । वह भी अपने बड़े भाई की तरह स्वार्थी था । अपने पिताजी से संयुक्त परिवार में किए गए खर्च का हिसाब मांगता है । वह अपने पिताजी से बिना संकोच कहता है कि -“हम लोगों के हिस्से में इतने आदमियों पर खर्च करना कहाँ तक ठीक है ? बहुत सारा तो यों ही हाथों से निकल गया है । रहा-सहा ही मिल जाए तो गनीमत है ‘बापु’ आप और माँ का खर्च ही क्या है ? मंदिर से आपका खर्च चलता ही है ।”¹⁰⁵

नरेश जी ने अपने उपन्यासों में वर्णित चरित्रों के माध्यम से बदलते पारिवारिक मूल्य तथा बिखरते परिवार की ओर अंगुली निर्देश किया है ।

असद मनोवृत्तिवाले लोग :

मनुष्य के स्वभाव में सद् और असद् दोनों वृत्तियाँ विद्यमान रहती हैं। मनुष्य अपने संस्कार, शिक्षा एवं शील द्वारा सद्वृत्ति को बढ़ा सकता है, परंतु कभी-कभी शिक्षा एवं उच्च ओहदे भी काम नहीं आते। वे अपनी असदवृत्ति पर संयम नहीं रख पाते। मनुष्य के निर्माण में परिवार, मित्रों तथा वातावरण का प्रभावशाली योगदान होता है। नरेश जी के उपन्यासों में भौतिक सुख सुविधा संपन्न, उच्चकुल के शिक्षित व्यक्ति ही असदवृत्तिवाले हैं। शायद संपत्ति ही उसकी असदवृत्ति को उत्तेजित करती है।

अभावग्रस्त जीवन में अपने शौक पूरे करने के लिए गैरकानूनी कार्य करनेवाले चरित्र में उत्तरकथा खंड-११ के बिशू को ले सकते हैं । बिशू गरीब ब्राह्मण का पुत्र होते हुए भी सिगरेट, माँस, शराब जैसे शौक पाल रखे हैं । वह रूपयों के लालच में आकर अपनी बुआ के षडयंत्र में मदद करता है । बिशू दूर की भाभी दुर्गा पर बलात्कार करने की कोशिश करता है । आपसी रंजीश अपने फूफा की हत्या करने

के लिए उसे प्रेरित करती है । खून के गुनाह में बिशू को फांसी की सजा होती है । इस प्रकार उसका असंस्कारी, असद मनोवृत्तिवाला स्वभाव स्वयं की मौत का कारण बनता है ।

मनोहरलाल उर्फ कामदार साहब :

उत्तरकथा का दूसरा विलासी चरित्र कामदार साहब का है । वे संपन्न पाँच मंझिले मकान तथा बिसियों दुकान के मालिक थे । वे उद्धत नहीं थे फिर भी असंयमी और निरंकुश अवश्य थे । वे स्वभाव से मितभाषी, कार्यपटु तथा नीतिज्ञ मालूम पड़ते हैं ।

वे सामाजिक नियमानुसार संस्कारी परिवार की अनिच्छा सुंदरी गायत्री से शादी करते हैं चूंकि उसका मन वेश्या कमला में डूबा हुआ था । शादी की प्रथम रात्रि वे पत्नी के सामने कमला को कहते हैं कि -“गायत्री हमारी पत्नी है परंतु तुम भी पत्नी से कम नहीं ।”¹⁰⁶

मदिरापान तथा मुजरे के शौकीन कामदार साहब मानते थे कि -“पुरुष घर के बाहर क्या करते हैं इससे स्त्रियों को कोई संबंध नहीं होना चाहिए । गायत्री को जो पद और सामाजिकता प्राप्त है उससे उन्हें संतुष्ट होना चाहिए । पति का विलास पति का पुरुषार्थ यह पति की अपनी व्यक्तिगत वस्तु है ।”¹⁰⁷

कामदार साहब एक संस्कारी ब्राह्मण थे सो कभी-कभी सोचते हैं कि नारी देह से ऊपर कभी देख क्यों नहीं पाये । कमला के साथ के उसके संबंध से क्षोभ अनुभव करते हैं । उन्हें लगता है कि संस्कारी गायत्री के सामने वे कितने तुच्छ हैं -“कमला उनके कृपा-कटाक्ष के लिए उनके हाथों में बिछला जल बन सकती है परंतु गायत्री के निकट वह अवचेतन में अनुभव करते हैं कि इन सारे कवचों के भीतर वह कितने निरीह है, अकिंचन है ।”¹⁰⁸

अंत में उसकी विलासिता ही उसके मौत का कारण बनती है । वेश्या कमला के भाई कामदार साहब की संपत्ति हथियाने में निष्फल रहने पर उसकी हत्या कर देते हैं ।

मेढ़की महाराज :

‘नदी यशस्वी है’ में पकोड़ियों की दुकान वाले मेढ़की महाराज रसिक आदमी थे । वे दिनभर पकोड़ियाँ तलते हुए दुकान के सामने रहनेवाले कुम्हार की नयी दुल्हन को देखकर ‘प्यारी लैला मैं लैला पुकारा करुं’ जैसे गीत गाते रहते थे ।

सैयद :

सैयद अफघानिस्तान सीमाप्रांत के कबीलों का सरदार है । वह फरेबी, धोखेबाज और रंगीन तबियत का युवक है । चार-चार पत्नी होते हुए भी स्त्रियों की नंगी तसवीर पास में रखता है । शादी-शुदा होते हुए भी शादी करने के बहाने तेरह साल की रंजना को घर से भगाकर ले जाता है । रंजना के साथ जश्न की एक रात गुजारकर रंजना को पांचसौ रूपयों में अफगानियों के हाथों बेच देता है । अंत में रंजना बदले की भावना में सैयद की हत्या कर देती है ।

मिस्टर रेनाल्ड :

मेजर कुलकर्णी की मुलाकात बम्बई में एक चित्र प्रदर्शनी के दौरान रंजना से होती है । पहली नजर में ही वह रंजना की सुंदर देह पर मुग्ध हो जाता है । वह शराबी, शंकाशील, ईर्ष्यालु तथा कई विकृतियों से भरा व्यक्ति है । सहानुभूति दिखाकर रंजना के साथ शादी करता है, जब रंजना का पूर्व इतिहास सामने आते ही उसके साथ दुर्व्यवहार शुरू कर देता है । वह रंजना को डराता-धमकाता और पीटता है । रंजना के सामने ही दूसरी लड़कियों के साथ घुमता-फिरता है । कुलकर्णी स्त्री को शराब का एक पैग ही मानता है । वह रंजना को घर से निकालते हुए कहता है - “जाओ मुझे तुम्हारी कोई आवश्यकता न कभी है न कभ रहेगी । मुझे तुम्हारे शरीर की इच्छा थी और वह मुझे मिला । मैंने उसे शराब के एक पैग से कभी अधिक नहीं समझा । मुझे तुम्हारे रूप की कोई आवश्यकता नहीं ।”¹⁰⁹

बाल चरित्र :

नरेश जी की ‘धूमकेतु एक श्रुति’ तथा ‘नदी यशस्वी है’ दोनों उपन्यास बालमनोविज्ञान तथा किशोर मनोविज्ञान पर आधारित हैं । ‘डूबते मस्तूल’ तथा ‘यह

पथ बन्धु था' उपन्यासों में रंजना का पुत्र असित तथा श्रीधर के पुत्र देवव्रत का कोई विस्तृत परिचय नहीं मिलता । श्रीधर के गृहत्याग के बाद देवव्रत आवारा, जिद्दी तथा सिगरेट का आदी बन जाता है ।

‘धूमकेतु एक श्रुति’ उपन्यास में केवल देहाती बच्चों का उल्लेख है, जबकि ‘नदी यशस्वी है’ में ग्रामीण और शहरी बच्चों के बीच एक स्पष्ट भेदरेखा नज़र आती है । उदयन गाँव छोड़कर चाचा के वहाँ शहर पढ़ने जाता है । चाचा के साथ क्लब में गये उदयन की मुलाकात शहरी बच्चों से होती है । वे तमाम बच्चे न्यायाधीश, डॉक्टर, तहसीलदार, जमींदार तथा अंग्रेज अफसरों के बेटे हैं । उनकी रस-रुचि और शौक देहाती बच्चों से भिन्न है । वेणु, आलोक, सुमंत, सुनंदा आदि बच्चे कैरम तथा रींग खेलते हैं और बाल साहित्य पढ़ते हैं, जबकि उदयन के मित्र दत्तू और भवानी उदंड, आवारा, साहसी, स्कूल से भागनेवाले और चोरी-छिपे बीड़ी पीनेवाले लड़के हैं ।

भवानी :

अनाड़ी और लापरवाह भवानी हेडमास्टर का लड़का है, इस कारण स्कूल में गैरहाजर रहने पर भी अव्वल नंबर पर पास होता है । वह हमेशा जेबोंवाला ढीला गुजराती पाजामा, नीली-धारी की मैलखोरी कमीज़, जिसमें पित्तल के बटन, उड़े हुए रंग का एक तंग-सा कोट जिसकी बाँहें छोटी हो गयी थी, जेबों पर स्याही फैले दाग, निमोड़ी खादी की हरे सफेद रंग की गंगा-जमुना टोपी तथा फटे जूते पहने हुए नज़र आता है। वह गोरा तथा हँसमुख लड़का था। स्कूल से भागकर उदयन के साथ पतंग उड़ाना, नदी पार करके स्मशान में कफन लेने जाना तथा खंडित हवेलियों में भटकना उसे ज्यादा पसंद था ।

‘धूमकेतु एक श्रुति’ के सारे बाल चरित्र देहाती हैं । महु आने से पहले उदयन भी गाँव का देहाती बच्चा ही था । नंदन, गंपू, जुगल तथा किशोर उदयन के बालसखा हैं । ये सभी अनाथ बच्चों की तरह गाँवभर में घूमते रहते । घर से पैसे चुराना, बाजारु चीजें खरीदना तथा खाना, गाँव की औरतों की जातीय जीवन संबंधी

बातें चुपके से सुनना और पराक्रम करना उन बच्चों का काम था ।

गंपू :

गंपू अपनी मंडली का शरारती नेता था । उसकी माँ उसे कपड़े धोने के डंडे से पिटती थी । बच्चे उसे जबरदस्ती, हाथ-पैर की टोली करके स्कूल ले जाते थे । शिक्षक उसे रोज बेंत से पीटता था । स्कूल से बाहर निकलने के लिए गंपू ने कुछ नियम बनाये थे । वह बाहर अपने दोस्तों को बुलाने हेतु ताली मारे तो इसका अर्थ होता था गुरुजी के पास पानी पीने की छुट्टी लेनी है, सीटी मारने का अर्थ है, पेशाब की छुट्टी और चिल्लाये तो इसका अर्थ टट्टी की छुटी लेनी है ।

जुगल दुबला-पतला, निरीह लड़का था । नंदन, उदयन और गंपू से आयु में बड़ा था । नाजुक, स्वस्थ, चालाक किन्तु उसमें साहस का अभाव है ।

इस प्रकार नरेश जी ने बड़ी सूक्ष्मता के साथ बच्चों का चरित्र प्रस्तुत किया है । इससे लेखक की बालमनोवैज्ञानिक दृष्टि का पता चलता है ।

विविध नौकरियों से जुड़े चरित्र :

शिक्षक, अध्यापक :

नरेश जी ने जिस काल में उपन्यास लिखे हैं उस काल में शिक्षक, गुरु और अध्यापकों का समाज में ऊँचा स्थान था । उनके उपन्यासों में शिक्षण कार्य से जुड़े पात्रों की संख्या अधिक है । ये सभी शिक्षक आदर्श की मूर्ति तथा सिद्धांतवादी हैं । वे मात्र मूल्यनिष्ठ नहीं थे साथ में देशभक्त तथा राष्ट्रीय आंदोलन के प्रति समर्पित थे ।

‘नदी यशस्वी है’ के शिक्षक लालसिंह बच्चों को ट्यूशन के साथ-साथ क्रांतिकारियों की जीवनी, देश की स्थिति, महात्मा गांधी का आंदोलन, भगतसिंह की विचारधारा आदि बातों से अवगत कराते हैं ।

‘यह पथ बन्धु था’ का श्रीधर सिद्धांत के खातिर शिक्षक के पद पर से त्यागपत्र देता है । एक मूल्यनिष्ठ शिक्षक अपनी आधी से भी अधिक जिंदगी गृहत्याग के पश्चात् राष्ट्र के लिए अर्पित करता है । इस उपन्यास की ‘रत्ना’ भी एक शिक्षिका और क्रांतिकारीदल की सदस्या है । दिन में ‘रोजी सेक्सन’ नाम से

ईसाई स्कूल में पढ़ाने जाती है । सरस्वती उर्फ सरो के पिताजी भी अंग्रेजी के अध्यापक हैं । 'दो एकान्त' उपन्यास में वानीरा के पिता प्रथम चंद्रमुखर्जी बंगला भाषा के अध्यापक रह चुके हैं । 'प्रथम फाल्गुन' उपन्यास में महिम वाइस प्रिन्सीपल के पद पर हैं तो गोपा डेमोस्ट्रेटर है । 'उत्तरकथा खंड-11' उपन्यास में त्र्यम्बक का दूसरा बेटा पंचानन अध्यापक है । इस उपन्यास में दुर्गा तथा शिवशंकर के मामा आनंदशंकर दवे स्कूल में शिक्षक थे बाद में पदोन्नति से हेडमास्टर बन जाते हैं ।

उत्तरकथा उपन्यास में पंचानन तेजस्वी अध्यापक है। वे काफी अध्ययनशील एवं गंभीर किस्म के शिक्षक थे। धर्म, अध्यात्म, राजनीति, साहित्य आदि सभी विषयों को पसंद करते थे। उन्होंने तोल्सतोय, दोस्तोवस्की, चेखव, गोर्की, विक्टर, ह्यूगो से लेकर शेक्सपियर तक को पढ़ डाला है। इसके पास इतिहास का काफी अच्छा ज्ञान था। विविध देशों में हुई क्रांतियों के बारे में उसके पास तमाम जानकारी होती थी। वह कम्यूनिस्टों के साथ बैठकर घण्टों तक साहित्य तथा राजनीति की चर्चा करते थे।

'यह पथ बन्धु था' में शास्त्रीजी संस्कृत पाठशाला में निःशुल्क अध्यापन करवाते थे । चंदन का तिलक, सिर के पीछे बड़ी-सी चोटी, सुहावना गेहुँआ वर्णवाले शास्त्रीजी आकंठ ब्राह्मण थे । वे हमेशा पूर्णमासी तथा एकादशी को रूद्रपाठ करते थे। शास्त्रीजी संस्कृत में किताब लिखकर अपनी जीविका चलाते थे ।

बड़े गुरु :

'धूमकेतु एक श्रुति' उपन्यास में उदयन के मुँह से उसके बड़े गुरुजी तथा गुरुजी का जिस ढंग से वर्णन मिलता है यह पढ़कर देहाती शिक्षक का चित्र जीवंत होता है । बड़े गुरुजी प्रसिद्ध सितारवादक थे । उन्होंने सोलह तारवाला पैरों से चलानेवाला चरखा भी बनाया था । वे नख-शिख गांधी भक्त थे । वे हमेशा खद्वर की धोती, लंबा कुरता, ऊपर दुपट्टा, चंदन का तिलक, गौरवर्ण के गुरुजी हाथ में हमेशा पतली-सी बेंत लिए नज़र आते थे ।

इससे बिलकुल विरुद्ध उदयन के छोटे गुरुजी हैं । अपेक्षाकृत कम सुंदर और

बड़े दाँतोंवाले व्यक्ति है । उसके मुँह से हर वक्त तंबाकू की गंध आती रहती थी ।

ट्यूशन मास्टर :

ट्यूशन मास्टर दूबले-पतले, बड़ी-बड़ी मूछोंवाले और अत्यन्त चीमड़ किस्म के इन्सान थे । वे टाट का टुकड़ा बिछाये, लकड़ी के एक बक्से पर कागज-पत्र फैलाये, बरु की कलम से कुछ न कुछ लिखते रहते थे । उसकी पत्नी को घर से बाहर निकलने की छूट नहीं थी इस कारण बार-बार भीतर से नारी की आर्तनाद उठती थी । मास्टरजी का बच्चों के प्रति कठोर व्यवहार था । वे छात्रों को बेंत से पिटते और मुर्गा बनाते थे ।

वकील :

नरेश जी उपन्यासों में कुछ वकालत करनेवाले चरित्रों का भी उल्लेख है । 'यह पथ बंधु था' तथा 'उत्तरकथा खंड- I, II' में वकालत करनेवाले चरित्र मौजूद हैं । उस वक्त वकालत का व्यवसाय प्रतिष्ठा का क्षेत्र माना जाता था । नरेश जी के वकील ईमानदार, प्रामाणिक और सत्यनिष्ठ हैं । एकाद-दो को छोड़कर सभी चरित्र न्यायप्रिय हैं । 'यह पथ बन्धु था' उपन्यास के श्रीपुस्तके साहब दंभी और झूठे नेता और वकील थे । इस उपन्यास के चितल साहब भी वकील हैं । उत्तरकथा खंड- I तथा II में गोविंद तथा शिवशंकर के मामा का पुत्र रविशंकर भी वकील हैं । किसी केस के सिलसिले में रविशंकर की हत्या हो जाती है । धूर्जटी बड़े-बड़े वकीलों के दांत खट्टे करनेवाले माहिर वकील थे । गोविंद जोशी गांधी मूल्यों के आधार पर सत्य और ईमानदारी के साथ वकालत करते थे । इसके अलावा 'नदी यशस्वी है' में उदयन के चाचा देसाई साहब अंग्रेज सरकार के वकील थे । 'प्रथम फाल्गुन' में गोपा के पिताजी सौरिन्द्रनाथ निवृत्त जज थे ।

विविध नौकरियों से जुड़े चरित्र :

'नदी यशस्वी है' उपन्यास में सूर्यशंकर जिलाधीश और ईच्छाशंकर पटवारी थे । उत्तरकथा उपन्यास में गोविंदराम जानी पटवारी थे और मनोहरलाल उपाध्याय कामदार । गिरधर ठक्कर के पिताजी कांति ठक्कर वन विभाग में रेन्ज फोरेस्ट

ऑफिसर थे । नौकरी के दौरान उसकी रहस्यमय मौत हुई थी । इस उपन्यास के नागेश्वर का बेटा वासुदेव तथा वामनगणेश ग्रंथपाल, श्रीनाथ ठाकुर का बेटा श्रीवल्लभ घोडा डॉक्टर तथा दुर्गा की बेटी कांता का पति भी डॉक्टर था ।

‘नदी यशस्वी है’ उपन्यास में बाबू गुरुदासराम जज है तो इन्दिरा के पिता नायब तहसीलदार । ‘सुनंदा’ के पिता नर्मदा में स्थित बैट पर मैनेजर है । प्रस्तुत उपन्यास में अपने पेशे के कारण प्रसिद्ध तारबाबू को लोग तारबाबू कहकर पुकारते हैं। इस उपन्यास में नारायण पोस्टमास्टर को भी लोग उसके पेशे के नाम से संबोधित करते हैं । नारायण केवल चिट्ठियाँ ही नहीं बाँटता, किन्तु पढ़ भी देता है और उस पर थोड़ी बहुत राय भी दे देता है ।

उत्तरकथा में वैकुण्ठनंदन त्रिपाठी का लड़का तथा ‘यह पथ बन्धु था’ का पैमेनबाबू दोनों तारबाबू ही हैं तो नारायणबाबू रिटायर ओवरसीयर है । ‘प्रथम फाल्गुन’ में शमशुद्दीन सहाय अवकाश प्राप्त कर्नल है । इसके उपरांत ‘दो एकान्त’ का आनंद मिलिट्री में मेजर है तो ‘डूबते मस्तूल’ का रेनाल्ड बटालियन ऑफिसर तथा टोमस जास्टीन और कुलकर्णी मेजर पद पर आरुढ़ हैं ।

स्त्री चरित्र और नौकरी :

नरेश जी के उपन्यास बीसवीं सदी के पृष्ठभूमि में लिखे गये हैं। उस समय लड़की को पढ़ाना और नौकरी कराने का प्रश्न नहीं था, फिर भी नरेश जी के उपन्यास में कुछ स्त्रियाँ परिस्थितिवश नौकरी करती हैं। रत्ना क्रांतिकारी कार्य के साथ-साथ शिक्षिका की नौकरी करती है। ‘डूबते मस्तूल’ उपन्यास की रंजना एम.ए. तक पढ़ती है पश्चात् पति द्वारा त्यागे जाने पर आर्थिक अवलंबन के लिए नर्स बन जाती है। ‘उत्तरकथा’ उपन्यास की गोर की विधवा माँ अपनी बेटी को घर-घर का काम करके पढ़ाती तो है किन्तु दारुण गरीबी में अपनी बेटी को घर से बाहर निकालने राजी नहीं है। ‘प्रथम फाल्गुन’ उपन्यास की गोपा निवृत्त जज की पुत्री एम.ए. तक पढ़कर कॉलेज में डेमोस्ट्रेटर बन जाती है। संक्षेप में कहे तो उस समय युवतियाँ या स्त्रियों की संख्या बहुत कम थी जो नौकरी करके स्वतंत्र जीवन जीती हैं

प्रेस मालिक, प्रकाशक :

‘यह पथ बन्धु था’ उपन्यास के नायक श्रीधर गृहत्याग के बाद इंदौर आता है जहाँ उसका काफी शोषण होता है । शोषण करनेवालों में आम व्यक्ति नहीं बल्कि राजनेता और प्रेसमालिक थे । श्रीधर एक शिक्षक था और एक किताब भी लिख चुका था परिणामस्वरूप नौकरी के बदले प्रेस संबंधी कार्य करता है । वह महादेव गुप्त के प्रेस में सात रुपये में पूरे दिन प्रुफरीडींग का कार्य करता है । मालिक के हुक्म के कारण ‘हिन्दी हितकारिणी सभा’ की सेवा मुफ्त करनी पड़ती थी ।

श्रीधर ने व्यस्तता के बीच भी ‘चैतन्य वचनमृत’ नामक किताब का अनुवाद किया । असहयोग आंदोलन के संदर्भ में जेल जाने से पूर्व यह किताब प्रकाशन को दे जाता है परंतु जब वापस आकर माँगता है तो प्रकाशन साफ मुकर जाता है । एक और प्रकाशन महादेव बाबू पहले किताब का दो सौ रुपये में अनुवाद कर देने का कार्य सौंपते हैं और बाद में केवल चालीस रुपये देते हैं ।

श्रीधर के साथ दो और ऐसे व्यक्ति हैं जो प्रकाशक के शोषण का भोग बनते हैं । शिवनाथ त्रिपाठी ब्रजभाषा के पंडित थे । उसकी एक चर्चित पुस्तक थी ‘राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द उर्फ हत्यारे हिन्द’ उसे अंग्रेज सरकार प्रकाशित नहीं होने देते ।

सिद्धांत के पक्के संस्कृत आचार्य शास्त्रीजी के लिए किताब ही जीवनयापन का साधन थी । प्रकाशक आचार्य के पस किताब लिखवाते हैं फिर पानी के मोल खरीदते हैं ।

श्रीधर प्रेसमालिकों से तंग आकर ‘शंखनाद’ नामक राष्ट्रीय पत्रिका निकालने की योजना बनाते हैं । श्रीधर रामखेलावन के साथ मिलकर शंखनाद निकालते हैं । कालांतर श्रीधर के पास चार व्यक्ति का काम आ जाता है और रामखेलावन बड़े आराम से उसका शोषण करता है । यहाँ तक कि विरोधी पत्रिका के मालिक सकलदीप नारायण के भाई वंशदीप नारायण से डरकर श्रीधर सत्य उगलने वाले लेख लिखने पर भी पाबन्दी लगा देते हैं । वे प्रधानों के हाथों बिक जाते हैं ।

“मैं ठाकुर साहब को नाराजकर अपने प्रेस में ताला नहीं डलवाना चाहता। आप क्रांतिकारी है जानते हुए भी मैंने आपके हाथ भलमन साहता बर्ती है। यह आप सोच लीजिए कि शंखनाद किसी का विरोध नहीं करेगा।”¹¹⁰

रामखेलावन के गलत प्रचार के कारण पुलिस श्रीधर के पीछे पड़ जाती है। प्रेस को ताला लग जाता है और रामखेलावन को दो साल की जेल होती है।

एक ओर प्रेसमालिक तथा प्रकाशक वंशदीप नारायण है। वह ‘स्वतंत्र ज्योति’ नामक फालतु पत्रिका निकालता है। वह अपने भाई के झूठमूठ के जेल संस्मरण छपवाता है। अंत में कहे तो श्रीधर के द्वारा प्रेसमालिक तथा प्रकाशकों की वृत्तियों का पर्दाफाश किया गया है।

कर्मकांड, मंदिर, पूजा, यजमानी, खेतीबाड़ी आदि व्यवसाय से जुड़े चरित्र:

नरेश जी के उपन्यासों में नब्बे प्रतिशत चरित्र ब्राह्मण परिवार के हैं। सदियों से ब्राह्मण कर्मकांड, पूजा या यजमान वृत्ति से जुड़े हैं। जिन ब्राह्मणों को राजा की तरफ से भूमि दक्षिणा में दी गई थी, वे थोड़ी बहुत खेती भी कर लेते थे। धार्मिक स्थलों में उन्हें सबसे ज्यादा काम रहता था। नरेश जी के उपन्यासों में उज्जैन का उल्लेख है जहाँ ब्राह्मण रेलवे या बस स्टेशन के आसपास यजमान के लिए भटकते हैं। यजमानों को अपनी वंशावली दिखाकर कर्मकांड या कुछ न कुछ विधि करवाते और दक्षिणा ले लेते थे।

उत्तरकथा खंड-। तथा ।। से जुड़े कई चरित्र यजमानी कर्मकांड, मंदिरपूजा तथा खेतीबाड़ी से जीवनयापन चलाते हैं। दुर्गा के पति और ससुर दोनों कर्मकांडी ब्राह्मण होने के कारण यजमान की लाइन लगी रहती। ‘छाट’ और ‘देवास’ के राजा-महाराजा महादेव शुक्ल के यजमान थे। महादेव शुक्ल ऐश्वर्य संपन्न पंडे माने जाते थे। नारायण पंड्या यजमान वृत्ति और बलवंतराय जानी पूजा अर्चना कराके परिवार का गुजरा चलाते थे।

रमण आचार्य गरीब ब्राह्मण थे। उन्हें अपने नाना की तरफ से कुछ भूमि दान में मिली थी। उन्हें अपने कर्मकांडी व्यवसाय के प्रति गौरव था। वे अपनी पत्नी को

कहते हैं -“हमारे बच्चों में किस बात की कमी है हम पुरोहित हैं कोई उन गामोठ महाराज की भांति पोथी यात्रा दिखाकर ब्याह-शादी करवाते फिरते नहीं है । कर्मकांड करते हैं, किसान नहीं समझी ।”¹¹¹

रमण आचार्य के गौरव पर पत्नी कटाक्ष करती है । इस कटाक्ष में ब्राह्मणों की विवशता, लाचारी एवं मजबूरी प्रकट होती है -“देख ली तुम्हारे घर की पुरोहिती । नानाजी की माफी की जमीन न मिली होती तो इस कथा भागवत से मूछों पर लगाने को चावल तो क्या बाजरे के भी दर्शन न हुए होते ।”¹¹²

ब्राह्मण को कथा कीर्तन, भोग चढ़ावा द्वारा बहुत कुछ मिल जाता था । ‘यह पथ बन्धु था’ उपन्यास में श्रीधर के पिता श्रीनाथ ठाकुर हवेली में कीर्तन तथा आरती का कार्य करते थे ।

उत्तरकथा के गोवर्धन व्यास अपनी पत्नी और पुत्र से वितृष्ण होकर नाथद्वारा चले जाते हैं । अपने जीवनयापन के लिए वे हवेली में भितरियाजी का कार्य करते हैं। ‘धूमकेतु एक श्रुति’ में वल्लभाजी के पिता हवेली में मुखियाजी हैं । ठाकुरजी की मंगलाआरती, स्नान श्रृंगार, शयन, पूजापाठ, कीर्तन तथा कथा सुनाने का कार्य करते हैं । ईश्वर की सेवा करनेवाले मुखियाजी अपनी छोटी विधवा बेटी का जातीय शोषण करते हैं । गर्भ रहने के कारण वल्लभा आत्महत्या करती है । इस प्रकार लेखक ने पवित्रधाम में होनेवाले अपवित्र प्रवृत्ति की पोल खोलकर रखी है ।

जमीनदार :

‘धूमकेतु एक श्रुति’ के लज्जाशंकर खेती-बाड़ी से जुड़े हैं किन्तु यह जमीन उनकी अपनी नहीं है । वे भावनगर छोड़कर मालवा मजदूरी करने जाते हैं, जहाँ परिश्रम करके बहुत कुछ जमीन के मालिक बन जाते हैं । ‘यह पथ बन्धु था’ में श्रीधर का भाई श्री वल्लभ घोडा-डॉक्टर होते हुए भी जमीन खरीदता है । ‘उत्तरकथा’ के महादवे शुक्त के पुत्र त्र्यम्बक शुक्ल कर्मकांड का व्यवसाय करके समृद्ध बनने के बाद खुद की जमीन खरीदता है ।

व्यावसायिक पात्र :

नरेश जी के कुल मिलाकर सात उपन्यास हैं । इन उपन्यासों के दस प्रतिशत चरित्र ऐसे हैं जो छोटे-बड़े व्यवसाय से जुड़े हैं । 'उत्तरकथा' उपन्यास में मालानी परिवार के पास कपड़ों का बड़े पैमाने पर व्यवसाय था । इस उपन्यास के कामदार साहब तथा त्र्यम्बक दोनों दुकान की खरीदारी और बिक्री के व्यवसाय से जुड़े थे । 'धूमकेतु एक श्रुति' में उदयन का मित्र शेखर के पिताजी पुराने मकान की बिक्री करनेवाले व्यक्ति हैं । उत्तरकथा में जमनलाल को पान की दूकान, राजेन्द्र को सोना-चाँदी की दूकान, तथा 'धूमकेतु एक श्रुति' के मेढ़की महाराज को कचौड़ियों की दूकान और नारायण नाई को बाल काटने की दूकान है । लज्जाशंकर के भाई सूरत में काली मिर्च का व्यवसाय करते हैं । उत्तरकथा में त्र्यम्बक की बेटी के ससुर रमण पंड्या तम्बाकु के व्यवसाय से जुड़े थे, जबकि त्र्यम्बक के दामाद के पास पेट्रोलपंप और मोटरों के स्पेअर पार्ट्स का भी काम है ।

संक्षेप में कहें तो प्रस्तुत उपन्यासों में मिलमालिक तथा बड़े-बड़े उद्योगपतियों का जिक्र न होकर खेती-बाड़ी या जमीनदारी करनेवालों की संख्या अधिक है । जिस पृष्ठभूमि में उपन्यास लिखे गये हैं, उस पृष्ठभूमि में बड़ा व्यवसाय करना और निभाना कठिन था ।

निम्नवर्ग से जुड़े चरित्र :

नरेश जी ने अपने उपन्यासों में आर्थिक स्तर पर उच्चवर्ग, निम्नवर्ग तथा मध्य वर्ग तीनों का निरूपण किया है । उच्चवर्ग का अपेक्षाकृत कम, मध्यवर्ग का सबसे अधिक और निम्नवर्ग का उल्लेख मात्र है ।

निम्नजाति के चरित्रों में 'यह पथ बन्धु था' उपन्यास में हरखचंद फेरीवाला है। रघुनाथ, मातादीन तथा रामकली मजदूरी करते हैं । लछमन तथा शारदा दोनों वेश्या मालिनी के घर नौकर हैं । 'नदी यशस्वी है' में फातीमा महेतरानी तथा करीम, बसीर तथा लछमन घरघाटी हैं । लछमन में तो नौकर के सारे गुण मौजूद हैं । मालिक की बातें सुनना, उदयन में कामवृत्ति जगाने मजदूरनी के छितरे घाघरे में

झाँकना सिखना, चाचाजी तथा विधवा मंडलोई को साथ-साथ सोते हुए दिखाना तथा उदयन का चोरी-छिपे काम कर देना लछमन का काम था। 'नदी यशस्वी है' उपन्यास की कावेरी घर-घर जाकर काम करनेवाली स्वच्छन्द युवती है जो अपने सौन्दर्य के द्वारा सठे हुए साहुकारों तथा उसके बेटों को आकर्षित करके उसके साथ शारीरिक संबंध बांधती है। पतिहीन कावेरी की आँखों में आमंत्रण तथा निषेध के मिले-झुले रंग नज़र आते हैं।

'उत्तरकथा खंड-11' की रति और करमा दोनों आदिवासी स्त्री-पुरुष का रहन-सहन और अंधश्रद्धा का परिचय देते हैं। गिरधर ठक्कर अपने पिताजी की मृत्यु के रहस्यों को खोजने जंगल में जाते हैं जहाँ उनकी मुलाकात करमा और रति से होती है। करमा का बाह्य दिखावा बड़ा डरावना है। वे जंगल में रहकर मंत्र-तंत्र, जादू-टोना करता है। आदिवासी उसे ही गिरधर ठक्कर के पिता का हत्यारा मानते हैं। उसकी पत्नी रति को देखकर उन लोगों की दारुण गरीबी तथा पिछड़े हुए जीवन का पता चल जाता है।

नाममात्र के गौणातिगौण चरित्र :

नरेश जी के उपन्यास पात्रों का मेला है। कुछ पात्र थोड़े वक्त के लिए ही आये हैं। 'डूबते मस्तूल' में रंजना के ससुर उसका पति जगदीश जो धोखे से रंजना के पिता की सारी संपत्ति हड़पकर विदेश चले जाते हैं। जास्टीन तथा रंजना का पुत्र असित, टेनिस खिलाड़ी नंदलाल जिन्हें रंजना प्रारंभिक दिनों में चाहती थी।

'प्रथम फाल्गुन' उपन्यास में निवृत्त जज सौरिन्द्रनाथ की दूसरी पत्नी श्रीमती लेडीनाथ, उसका पुत्र शिशिर, विधवा पुत्री शोभा तथा 'यह पथ बन्धु था' में नारायण बाबू, पैमेनबाबू, उसकी पागल पत्नी, श्रीधर का बेटा देवव्रत, उसकी बेटी गुणवंती के सास-ससुर, पति, सुशीला के सास-ससुर, पति, सरस्वति के माता-पिता तथा रविशंकर, ईश्वरदीन, प्रिन्सिपल गाडगील, क्रांतिकारी सुधांशु, सचिन तथा रत्ना की मासीमाँ इत्यादि।

'धूमकेतु एक श्रुति' में उदयन की बुआ माँ, उदयन की दीदी, उसके पति,

सास-ससुर तथा वल्लभा के पिता मधुसुदन, नंदन की माँ, उसकी भाभी, भाई, उदयन की माँ वासंती, सेठ केसरीमल, दयाशंकर नारायण, पंडितजी, रिटायर्ड दरोगा गणपतराव, बुकसेलर कन्हैयालाल इत्यादि ।

‘नदी यशस्वी है’ उपन्यास में उदयन के बाल दोस्त, सुमंत, आलोक, इन्द्रमल जैन, सुनंदा, रामलाल मंडलोई की विधवा, फतुभाई मंडलोई, मनोहरभाई बाबू गुरुदासराम आदि ।

उत्तरकथा खंड-। तथा ।। उपन्यास में कृष्णादेवी के मामा बलवंतराम जानी, दुर्गा की बुआ का पुत्र, यशोदानन्दन, शिवनंदन, पुत्री वसुंधरा, दुर्गा की मामी, मामा, उसका पुत्र रविशंकर तथा पत्नी शकुंतला, पुत्री कल्याणी तथा गायत्री और कामदार साहब का बेटा वासुदेव, त्र्यम्बक की बुआ के ननद-ननदोई, पंडित मृत्युंजय भट्ट, विद्यादेवी तथा कुंति के सास-ससुर, उसके पति गोविंदराम मेहता, धुर्जटी के ससुर पक्ष में शारदा के परिवार के अन्तर्गत बड़ेदादा विष्णुशंकर, सूर्यादेवी, पुत्र यमुनाशंकर, पुत्री रेखा, चाचा करुणाशंकर, चाची सुशीला, पुत्र कृष्णशंकर, शारदा के माता-पिता, अन्नपूर्णा देवी, भानुशंकर तथा दुर्गा की पुत्री, मणि के पति कनु पंड्या, ससुर रमणभाई पंड्या, कांता के पति कृष्णशंकर, कपड़े के व्यापारी झालानी साहब, उसकी पत्नी कामिनी बहन तथा अन्य दुकानदारों में माणेकलाल, माधोप्रसाद, जमनालाल चोरसिया पहलवान लच्छु छोबे इत्यादि ।

उत्तरकथा में राजनीति के अमर चरित्रों का उल्लेख है । लेनिन, काल मार्क्स, स्टालिन, महात्मा गांधी, सरदार पटेल, जवाहरलाल नेहरू, लाल लाजपतराय, गोपाल कृष्ण गोखले, भगतसिंह, राज्यगुरु, सुखदेव आदि तथा स्थानिक नेता और कार्यकर्ता का उल्लेख हैं ।

उपर्युक्त तमाम चरित्र अन्य मुख्य चरित्र, प्रसंग या घटना में सहायक बनकर आये हैं । ये सभी ज्यादातर गौण कथा के पात्र रहे हैं । इसके उपरान्त उनका कोई विशेष योगदान नहीं है । नरेश जी के सभी उपन्यासों के चरित्र को उभारना कठिन है । कुछ चरित्र न भी होते तो कथा में कोई फर्क नहीं पड़ता ।

नरेश जी ने अपने चरित्र के माध्यम से मनुष्य की तमाम अच्छाई-बुराईयाँ तथा वृत्तियों को उजागर करने का प्रयास किया है । नरेश जी के गौणातिगौण चरित्र भी अपनी संपूर्ण वास्तविकता के साथ प्रकट हुआ है । कोई भी चरित्र अनावश्यक नहीं लगता । उनके चरित्र जीते-जागते मनुष्य लगते हैं । तत्कालीन पृष्ठभूमि में तैयार किए गए कुछ उपन्यास के चरित्र तो अत्यन्त आदर्शवादी तथा मूल्यनिष्ठ नज़र आते हैं । इसे पढ़ते समय लगता है कि हम किसी चरित्र को पढ़ रहे हो ।



: संदर्भ :

क्रम	उपन्यास, लेखक	पृ.क्रमांक
1.	डूबते मस्तूल, नरेश मेहता	198
2.	----- वही -----	198
3.	----- वही -----	20
4.	----- वही -----	236
5.	----- वही -----	236
6.	----- वही -----	220
7.	धूमकेतु एक श्रुति, नरेश मेहता	225
8.	----- वही -----	241
9.	----- वही -----	251
10.	----- वही -----	251
11.	----- वही -----	264
12.	----- वही -----	269
13.	----- वही -----	279
14.	----- वही -----	294
15.	----- वही -----	296
16.	दो एकान्त, नरेश मेहता	113
17.	----- वही -----	108
18.	----- वही -----	108
19.	----- वही -----	172
20.	नदी यशस्वी है, नरेश मेहता	183
21.	----- वही -----	183
22.	----- वही -----	183
23.	नदी यशस्वी है, नरेश मेहता	184
24.	प्रथम फाल्गुन, नरेश मेहता	15
25.	----- वही -----	20
26.	उत्तरकथा खंड - I, नरेश मेहता	57
27.	----- वही -----	317
28.	----- वही -----	317
29.	उत्तरकथा खंड - II, नरेश मेहता	407
30.	----- वही -----	241
31.	----- वही -----	241
32.	----- वही -----	269
33.	----- वही -----	485
34.	यह पथ बन्धु था, नरेश मेहता	366
35.	----- वही -----	367
36.	----- वही -----	451
37.	----- वही -----	452
38.	----- वही -----	452
39.	----- वही -----	470

क्रम	उपन्यास, लेखक	पृ.क्रमांक
40.	----- वही -----	488
41.	----- वही -----	328
42.	----- वही -----	343
43.	----- वही -----	351
44.	----- वही -----	338
45.	उत्तरकथा खंड - I, नरेश मेहता	69
46.	----- वही -----	111
47.	उत्तरकथा खंड - I, नरेश मेहता	115
48.	----- वही -----	113
49.	----- वही -----	115
50.	----- वही -----	227
51.	----- वही -----	249
52.	उत्तरकथा खंड - II, नरेश मेहता	79
53.	उत्तरकथा खंड - I, नरेश मेहता	346
54.	----- वही -----	346
55.	----- वही -----	347
56.	----- वही -----	370
57.	----- वही -----	495
58.	----- वही -----	60
59.	उत्तरकथा खंड - II, नरेश मेहता	114
60.	----- वही -----	295
61.	----- वही -----	299
62.	डूबते मस्तूल, नरेश मेहता	135
63.	----- वही -----	140
64.	धूमकेतु एक श्रुति, नरेश मेहता	280
65.	----- वही -----	275
66.	----- वही -----	357
67.	यह पथ बन्धु था, नरेश मेहता	154
68.	धूमकेतु एक श्रुति, नरेश मेहता	125
69.	उत्तरकथा खंड - II, नरेश मेहता	355
70.	----- वही -----	355
71.	नदी यशस्वी है, नरेश मेहता	168
72.	----- वही -----	168
73.	उत्तरकथा खंड - II, नरेश मेहता	346
74.	----- वही -----	347
75.	----- वही -----	406
76.	उत्तरकथा खंड - I, नरेश मेहता	59
77.	----- वही -----	131
78.	----- वही -----	487
79.	धूमकेतु एक श्रुति, नरेश मेहता	10

क्रम	उपन्यास, लेखक	पृ.क्रमांक
80.	उत्तरकथा खंड - I, नरेश मेहता	457
81.	----- वही -----	379
82.	यह पथ बन्धु था, नरेश मेहता	516
83.	----- वही -----	516
84.	नदी यशस्वी है, नरेश मेहता	102
85.	यह पथ बन्धु था, नरेश मेहता	364
86.	उत्तरकथा खंड - II, नरेश मेहता	322
87.	प्रथम फाल्गुन, नरेश मेहता	140
88.	----- वही -----	211
89.	उत्तरकथा खंड - II, नरेश मेहता	332
90.	यह पथ बन्धु था, नरेश मेहता	216
91.	----- वही -----	216
92.	----- वही -----	275
93.	----- वही -----	275
94.	----- वही -----	205
95.	उत्तरकथा खंड - II, नरेश मेहता	45
96.	धूमकेतु एक श्रुति, नरेश मेहता	256
97.	उत्तरकथा खंड - I, नरेश मेहता	36
98.	----- वही -----	36
99.	यह पथ बन्धु था, नरेश मेहता	124
100.	नदी यशस्वी है, नरेश मेहता	75
101.	यह पथ बन्धु था, नरेश मेहता	334
102.	----- वही -----	338
103.	----- वही -----	484
104.	----- वही -----	
105.	----- वही -----	
106.	उत्तरकथा खंड - I, नरेश मेहता	345
107.	----- वही -----	346
108.	----- वही -----	361
109.	डूबते मस्तूल, नरेश मेहता	230
110.	यह पथ बन्धु था, नरेश मेहता	544
111.	उत्तरकथा खंड - I, नरेश मेहता	31
112.	----- वही -----	32

उपसंहार

श्रेष्ठ उपन्यास वही होता है जिसमें अपने समय का पूरा युग मूर्त होता हो, साकार होता हो । कहने का तात्पर्य यह है कि उस उपन्यास में तत्कालीन परिस्थितियों की प्रामाणिक सामग्री होनी चाहिए । श्रेष्ठ उपन्यासकार वही होता है जो अपने युग की परिस्थिति को कभी नज़रअंदाज नहीं करता ।

नरेश जी के उपन्यासों में मालवा समाज में प्रचलित विवाह, यज्ञोपवित, मुण्डन, मृत्यु के समय की विधि आदि संस्कारों के साथ उस युग की पारिवारिक व्यवस्थाएँ, रीति-रिवाज, रुढ़ियाँ, परंपराएँ आदि का निरूपण सटिक रूप से किया है । बीसवीं शती के उत्तरार्ध की धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक, राजनैतिक आदि परिस्थितियाँ नरेश जी के उपन्यास में सुरक्षित हैं । उनके उपन्यास मालवीय मध्यमवर्गीय जीवन का प्रामाणिक इतिहास है । नरेश जी के उपन्यासों में सभी वर्गों के चरित्र होते हुए भी लेखक को विशेष सफलता मध्यमवर्गीय चरित्रों को निरूपित करने में मिली है ।

नरेश जी ने अपने उपन्यासों में प्राचीन और अर्वाचीन का अच्छा सामंजस्य स्थापित किया है । वे आधुनिकता के अति आग्रही भी नहीं हैं और पुरातन के प्रति दुराग्रही भी नहीं हैं । उनके उपन्यास सैंकड़ों मार्मिक प्रसंगों से भरे पड़े हैं, जिन्हें पढ़कर पाठक की आँखें भीग उठती हैं । नरेश जी के गद्य लेखन में काव्यात्मकता नज़र आती है ।

‘यह पथ बन्धु था’ उपन्यास में स्वतंत्रतापूर्व राजनैतिक, सामाजिक तथा साहित्यिक क्षेत्र में आये बदलाव को बड़े सुंदर ढंग से प्रस्तुत किया है ।

‘उत्तरकथा’ में उज्जैन, राजापुर के मुहल्ले, घर-परिवार, उनके रीति-रिवाज, संस्कार आदि का विषद एवं सूक्ष्म वर्णन किया है । इस उपन्यास में बीसवीं सदी के पहले दूसरे दशक में हो रहे राजनैतिक परिवर्तन तथा वैचारिक बदलाव को वर्णित किया है । उत्तरकथा खंड -I की भूमिका में नरेश जी लिखते हैं कि -“हमारी बीसवीं शती ने

वैयक्तिक और सामाजिक जीवन में आमूल परिवर्तन किया है । फलतः व्यक्ति का निजी और समाज का सामाजिक जीवन एक ऐसी दुरभि विषमता और शून्यता में खड़ा हो गया है कि जिसे न तो स्वीकारते बनता है और न उससे विमुखते ही । आधुनिकता के नाम पर स्वत्व के बिखराव की सीमा यह आ गयी है कि वह न केवल अजनबीपन ही अनुभव कर रहा है बल्कि एकाकीपन के आदिम भय की आधुनिक मानसिकता से ग्रस्त है । आज की राजनीति और राज्य व्यक्ति और समाज की अस्मिता स्वरूप और मूल्य सब का उपहरण करके संपूर्ण वर्चस्व को ही समाप्त कर देने पर तुले हैं । सारी मानवता एक ऐसे अंधे मुहाने पर पहुंच चुकी है कि इसके बाद या तो व्यक्ति की आत्महत्या हो या पूरे समाज का सर्वनाश हो । इसका तात्पर्य यह नहीं है कि ऐसा ही होगा, क्योंकि मनुष्य की ही नहीं सृष्टि की भी अपनी सत्ता, अस्मिता और संकल्प है ।¹

उत्तरकथा में भारतीय स्वतंत्र्य आंदोलन, भारत की स्वतंत्रता तथा भारत-पाकिस्तान का बटवारा आदि घटनाएँ वर्णित है । श्रेष्ठ और महान साहित्यकार भविष्यवेत्ता होता है इस रूप में नरेश जी ने अपने उपन्यासों में भविष्य के कुछ संकेत जरूर दिए हैं । इस उपन्यास में कोई अलौकिक या अवतारी पात्र नहीं है, परंतु यह कृति मालवा के लोगों को मालवा की संपूर्ण सामाजिकता से पाठकों को रुबरु करवाती है । उत्तरकथा खंड -I, II दोनों मालव राग की चरम निष्पत्ति है । प्रमोद त्रिवेदी नरेश जी की इस राग प्रियता के बारे में स्पष्टता करते हुए कहते हैं कि -“कोई प्रतिभाशाली गायक यों तो कोई भी राग गा सकता है पर जब वह अपना प्रिय राग गाता है तो वह उस राग को ही नहीं गाता स्वयं को भी गाता है । नरेश को राग मालवा सिद्ध हो गया है । न तो नरेश इस राग को गाते हुए उबते हैं, और न ही इस राग की सम्भावनाएँ उनके लिए समाप्त होती है ।”²

इस उपन्यास में भारतीय जीवन दृष्टि को लेकर जीनेवाली एक पूरी पीढ़ी त्र्यम्बक, दुर्गा, शिवशंकर आदि की मृत्यु दिखाकर भारतीय जीवन दृष्टि को नये रूप में स्थापित किया है । इस पीढ़ी के साथ ही नयी पीढ़ी का उदय होता है । गोविंद जोशी,

धूर्णटी, पंचानन इत्यादि परंपरित और आधुनिक मूल्यों के बीच संघर्ष करते नज़र आते हैं। उत्तरकथा सिर्फ हिन्दी ही नहीं समस्त भारतीय भाषाओं में शीर्षस्थ रचना है ।

‘उत्तरकथा खंड -I तथा II’ , ‘यह पथ बन्धु था’ तथा ‘धूमकेतु एक श्रुति’ उपन्यासों में परंपरित संयुक्त परिवार के विघटन की कथा तथा पारिवारिक विकृतियाँ, अमानवीयता और करुणा का यथार्थ चित्र मिलता है । ‘उत्तरकथा’ उपन्यास में करुणा के साथ शांत झरना बहता नज़र आता है । ‘यह पथ बन्धु था’ का प्रत्येक पृष्ठ आँसुओं से लिखा गया है । इस उपन्यास में परंपरागत मूल्यों एवं मान्यताओं पर आधारित जीवन में आये बदलाव की झँकी करवाई है । इस बदलाव के प्रभावस्वरूप मानवीय संबंधों में आये खोखलेपन को तीव्रता के साथ नरेश जी ने उभारा है । साथ-साथ सामाजिक जीवन की विकृतियाँ, भ्रष्टाचार, राजनीति में व्याप्त झूठ, फरेब, असत्य, गुंडागिरी आदि का पर्दाफाश किया है । यह उपन्यास उच्चतम मूल्यों का दस्तावेज है । ‘डूबते मस्तूल’ नारी देह से नारी मन तक पहुँचने की कथा है। ‘दो एकान्त’ टूटते हुए दाम्पत्य जीवन की दुखान्त अभिव्यक्ति है। ‘धूमकेतु एक श्रुति’ उपन्यास में बालक मन की उथल-पुथल को सूक्ष्म ढंग से वर्णित किया है। ‘नदी यशस्वी है’ उपन्यास में किशोर उदयन द्वारा रूढ़ संस्कारों तथा मूल्यों के सामने विद्रोह व्यक्त किया है। ‘प्रथम फाल्गुन’ गांधी युगीन मूल्यों के साथ-साथ एक निष्ठ प्रेम की मार्मिक कथा है।

नरेश मेहता के उपन्यास जीवन के प्रति आस्था प्रकट करते हैं । नरेश के उपन्यासों में यथार्थवाद का दर्शन, परिवेश के प्रति पूर्ण सजगता तथा तत्कालीन स्थितियों का सजीव चित्रण मिलता है । उनके उपन्यासों में परंपरा और आधुनिकता का द्वन्द्व नज़र आता है ।

निम्न तथा निम्न मध्यमवर्ग के चित्रण में प्रेमचंद को जैसी सफलता मिली है, वैसी ही सफलता नरेश मेहता को मध्यमवर्ग के चित्रण में मिली है । ‘हेगल’ ने नरेश जी के उपन्यास को मध्यमवर्ग का महाकाव्य कहा है । भारतीय समाज में मध्यमवर्ग के पात्रों की संख्या अधिक है । समस्याएँ तथा विषमताएँ इसी वर्ग में ज्यादा है । नरेश जी स्वयं मध्यमवर्गीय परिवार की कठिनाइयों को झेल कर आ रहे थे अतः उनके उपन्यासों में

मध्यमवर्ग का दैनिक जीवन-संघर्ष, आर्थिक विडम्बनाएँ, पुरानी तथा गलत धारणाएँ तथा उनके त्यौहार, विविध संस्कार इत्यादि का विशद वर्णन मिलता है ।

उपन्यास सम्राट प्रेमचंद जी ने 'मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ' कहकर उपन्यास में चरित्र की महत्ता स्थापित कर दी थी ।

प्रमोद त्रिवेदी लिखते हैं कि - "साहित्य की अन्य विधाओं में उपन्यास को ही गर्व प्राप्त है कि उसका कर्ता सर्वत्र है । सर्वदेशी है । उपन्यासकार अपने पात्रों के विषय में कह सकते हैं और पात्रों द्वारा कहला सकता है । पात्रों का स्वगत भाषण सुन सकता है । जरूरत पड़ने पर पात्रों के अंदर झाँक सकता है । कभी-कभी पात्रों की सृष्टि करने के पश्चात् वह पात्र को अपने भाग्य का निर्माण नहीं करने देता और उपन्यासकार स्वयं अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए उनके काम में टांगे अड़ाता है ।"³

नरेश मेहता के व्यक्तित्व में एक कवि और उपन्यासकार के गुणों का अच्छा समन्वय हुआ है । उनकी चरित्र सृष्टि अन्य उपन्यासकारों की चरित्र-सृष्टि से भिन्न है । नरेश जी के स्वभावगत सिद्धांतवादी, मूल्यनिष्ठता, ईमानदारी आदि गुणों का आरोपण अपने पात्रों में भी हुआ है ।

नरेश जी के चरित्र आज से पचास साल पूर्व के हैं । नैमिचंद जैन संपादित 'ऋतुचक्र' पत्रिका में दिए गए साक्षात्कार के समय स्वयं नरेश मेहता ने आज के आधुनिक युग के मनुष्य और पहले के मनुष्य में जो फर्क है उसे व्यथा के साथ प्रकट करते हुए कहा है - "आज बड़े बंगलों में आप किसी के यहाँ जाइए तो आपको बहुत बढ़िया पर्दे, पेंटिंग्स सब मिलेंगे और उसके बीच में वह जिस व्यक्ति का घर है उस व्यक्ति से आप बात करिए तो ऐसा खोखला आपको लगता है जैसे आप चीजों से मिलने आये थे । जबकि आज से ठीक पचास-साल पहले आप किसी से मिलने जाते थे तब आपको लगता था कि वह हमको चटाई पर तो बैठा रहा है लेकिन जो व्यक्ति बोल रहा है, यह शास्त्र बोल रहा है, ज्ञान बोल रहा है, तपस्या बोल रहा है ।"⁴

नरेश जी के उपन्यासों में हमें ऐसे ही चरित्र मिलते हैं जिनके पास भौतिकता कम है लेकिन उनका दिल और मन समृद्ध एवं पाक है । उनके चरित्रों की रचना न

समाजशास्त्रीय धरातल पर, न मनोवैज्ञानिक धरातल पर हुई है बल्कि संवेदना के आधार पर की गई है । उनके चरित्र हमारे बीच रहनेवाले जाने पहचाने लगते हैं । नरेश जी के पात्र आत्माभिमुख होकर भी समाजभिमुख है । वे अर्थ से पीड़ित होते हुए भी आदर्शवादी है । नरेश जी के कुछ चरित्र बंगाली साहित्यकार शरदबाबू के चरित्र से मिलते हैं । दुःखी और करुणा को अपने भीतर छुपानेवाले, गम को नियति का प्रसाद मानकर हाथ-पाँव पटकते, छटपटाते जिन्दगी जीये जा रहे हैं ।

नरेश जी ने बिना पक्षपात किए बड़े ही आत्मीय ढंग से अपने पात्रों का परिचय दिया है । प्रत्येक पात्र अपनी परिस्थितियों से जूझता, अनुराग-विराग दिखाता, लड़ता अपने निश्चित कर्म पथ पर बढ़ता जाता है ।

नरेश जी के संस्कारों में उदात्तता, अहिंसा, दया, प्रेम, मानवता, करुणा जैसे गुण बचपन से ही विद्यमान थे । उपनिषदों की यात्रा ने उन्हें सिखाया कि अभावों के बीच सतत संघर्ष में भी विश्व की मांगलिकता को शब्दबद्ध किया जा सकता है । नरेश जी के यही विचार उनके चरित्रों में भी दिखाई देते हैं । 'उत्तरकथा खंड -I तथा II' की दुर्गा, गोदावरी देवी, गायत्री देवी, सविता याज्ञिक, गिरधर ठक्कर की माँ, 'यह पथ बन्धु था' की सरस्वती, गुणवंती, श्रीधर की माँ, 'धूमकेतु एक श्रुति' के लज्जाशंकर, ईच्छाशंकर आदि चरित्र जीवन की आपाधापी से तपते हुए, अपनी मुश्किलियों को झेलते हुए नज़र आते हैं ।

नरेश जी के कुछ पात्र पलायनवादी भी हैं । शिवशंकर वितरागी होते हुए भी व्यावहारिक है । संसार में रहकर भी संन्यासी है । 'उत्तरकथा' के शिवशंकर, 'यह पथ बन्धु था' की इन्दुदीदी, 'प्रथम फाल्गुन' की गोपा की माँ, श्रीमती नाथ तथा 'दो एकान्त' के वानीरा के पिता प्रथमचन्द्र मुखर्जी अपनी तमाम सांसारिक जिम्मेदारियाँ पूर्ण करके धार्मिक स्थान पर अपना अंतिम जीवन ईश्वर भजन में बिताते हैं । वे तमाम चरित्र जीवन से ऊपर उठकर उर्ध्वगामी जीवन जीने का प्रयत्न करते हैं । संक्षेप में कहे तो ये सभी चरित्र परंपरित भारतीय आदर्श को चरितार्थ करते हैं ।

नरेश जी के चरित्र जीवन की विविधता और विराटता को प्रस्तुत करके संपूर्ण

भारत की झाँकी करवाते हैं । दूसरों को मदद करना और दुःखों में भागीदार बनना भारतीय संस्कृति का मूल मंत्र है । उत्तरकथा खंड -I तथा II में त्र्यम्बक और दुर्गा प्राकृतिक आपदा, बाहरी आक्रमण तथा दुःख-दर्द से घिरे अपने रिश्तेदारों को मदद करते हैं । एकाकी, निःसंतान, वृद्ध दंपति के मृत्यु के बाद उनका श्राद्ध करते हैं । माँ विहीन गोविंद की जिम्मेदारी उठाते हैं और उनकी सास की बीमारी के वक्त अस्पताल का खर्चा भी स्वयं भुगतते हैं ।

नरेश जी के श्रीधर, सरस्वती (यह पथ बन्धु था), शिवशंकर-दुर्गा (उत्तरकथा खंड I, II) आदि साधारण मानवता के अज्ञात तथा अनाम चरित्र हैं । उन मूक, समर्पित, सहनशील चरित्रों के द्वारा यह स्पष्ट किया है कि मनुष्य के स्वार्थ, संकीर्णता और एक-दूसरे को न समझने के कारण ही समस्याएँ उत्पन्न होती हैं ।

विपरीत परिस्थिति एवं भ्रष्ट समाज में मनुष्य अपने सिद्धांत तथा ईमानदारी को बनाये नहीं रख सकता । 'यह पथ बन्धु था' के श्रीधर, बिशन, रत्ना, इन्दुदीदी तथा 'उत्तरकथा' में शिवशंकर और दुर्गा सभी को मानव मूल्यों और आस्था की बड़ी कीमत चुकानी पड़ी है ।

'यह पथ बन्धु था' का नायक श्रीधर एक साधारण, ईमानदार, प्रामाणिक, सत्यप्रिय, आदर्शवादी शिक्षक है जो देश के लिए चुपचाप सबकुछ होम कर देता है । उसका योगदान इतिहास में दर्ज महापुरुषों से कम नहीं है, फिर भी वह इतिहास के पन्नों में अमर नहीं हो पाया ।

'यह पथ बन्धु था' में बिशन, रत्ना, सुधांशु, सचीन, जोहरी तथा 'डूबते मस्तूल' का अकलंक आदि राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत देशभक्त तथा क्रांतिवीरों के प्रतीक हैं । 'रत्ना' क्रांतिकारी स्त्री का प्रतीक है जो हँसते मुस्कराते फाँसी के तख्ते पर झुल जाती है । 'कुमारी कमल पुस्तक' विवश असहाय युवती का प्रतीक है जिन्हें पिता और समाज की मर्यादा की वेदी पर अपने निजी प्रेम की बलि देनी पड़ती है । 'मालिनी' अमीरों की रखैल बनकर विडम्बनापूर्ण जीवन जीने के लिए विवश हैं । इन्दुदीदी सामंतीय वैभवपूर्ण जीवन की मालकिन होते हुए भी जीवन रिक्तता से भरा है । सरस्वती और गुणवंती तो

यातना झेलने ही पृथ्वी पर आई हो ऐसा प्रतीत होता है । सरस्वती और गुणवंती संवेदना के वे आत्मिक रूप हैं जो मनुष्य की नृशंसताओं के बीच उपजते हैं ।

नरेश जी के नारी चरित्र धैर्य और समझदारी का परिचय देते हैं । नरेश जी ने भारतीय नारियों के विडम्बनापूर्ण जीवन तथा मौन व्यथा को वाचा दी है । इस नारियों में उदारता, क्षमा, श्रद्धा, आस्था, सहनशील जैसे गुण हैं । धर्म-ध्यान, व्रत-पूजा करनेवाली आस्तिक स्त्रियाँ हैं । उसका जीवन विपरित परिस्थितियों के कारण दोजख बना हुआ है । नरेश जी की नारियाँ पति की मारपीट और अपमान सहती हैं । घर में सास और जिठानी का हुक्म मानने के लिए विवश हैं । कभी-कभी मानसिक आघात के कारण विक्षिप्त जीवन जीती हैं तो दूसरी ओर दहेज के कारण या निःसंतान के कारण आपघात करती हैं । ये पढ़ी-लिखी होते हुए भी सामाजिक भय से नौकरी न करने के कारण आर्थिक अभाव झेलती हैं । विधवा या त्यक्ता होने पर धार्मिक ग्रंथों में अपना जीवन खोजती और कभी-कभी किशोरों द्वारा यौन इच्छाएँ पूर्ण करने का प्रयास करती हैं । ये नारियाँ कच्चे मकानों में गोबर लिपती, एक वस्त्र पहनकर गोम्रास देती, हवेली या मंदिरों में दर्शन के लिए जाती, घाट पर स्नान करती, विविध अनुष्ठान या ब्रह्मभोज खिलाती नज़र आती हैं ।

नरेश जी के उपन्यासों में स्वार्थी, झगडालु, चुगलीखोर, बहुओं की निंदा करनेवाली या बेटों के ससुरालवालों की कथा मिर्च-मसाले के साथ प्रस्तुत करनेवाली स्त्रियाँ नज़र आती हैं वहाँ मुहल्ले की बहुओं के लिए नयी-नयी नीतियाँ तैयार करनेवाली तथा जादू-टोना, मंत्र-तंत्र करनेवाली स्त्रियाँ भी मौजूद हैं ।

हाथों में गोखरू, पाँच में लच्छे, मणिकमाला, बाजूबंद, लोकेट और सोने का कड़ा, बंगलोरी किश्म-सी बनारसी, सारंगपुरी, जयपुरी, लाल चुनरी पहनकर खिलखिलाती किसी को भी मंत्रमुग्ध कर देने वाली स्त्रियों के बारे में नरेश जी कहते हैं –“स्त्री का अर्थ ही है भाषा । स्त्री एक ऐसी माधवी भाषा है जो उत्सव भी है । फूल भी है । पाखी भी है । एकान्त भी है । प्रसंग भी है । कोलाहल भी है । आलिंगन भी है । आपकी अंगुलियों के बीच से अभी गुज़रे रेशमी आँचल का ठंडा स्पर्श भी है ।”

“उन्मुक्त वातावरण में स्त्री अपनी संपूर्णता में प्रस्फूटित होती है । स्त्री आद्यान्त स्त्री है । आकंठ नारी है । वह अलभ्य फल है । देववृक्ष है । कल्पतरु है । स्त्री जन्मजात कलाकार है । वह जननी है । वह केवल देना ही जानती है । स्त्री श्रद्धा की वस्तु है ।”

नरेश जी ने भारतीय नारी के विडम्बनापूर्ण जीवन के समूचे युग को निरूपित किया है । ‘उत्तरकथा’ में दुर्गा एक नारी द्वारा ही शोषित हुई है । वह दमनकारी तथा शोषित नारी का प्रतिनिधित्व करती है । वह विश्वास, धैर्य, करुणा, सहनशीलता और सदाशयता आदि परंपरागत मूल्यों का कवच पहनकर क्रूर प्रहारों का सामना करती है । विकट परिस्थितियों में भी आस्था और विश्वास नहीं खोती । वह किसी भी परिस्थिति में विचलित नहीं होती । वह हमेशा स्थिति को सुदृढ़ एवं बेहतर बनाने का प्रयास करती है । दुर्गा के चरित्र से नरेश जी यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि -“चुल्हे-चौके की परिधि ही भारतीय नारी की चरम सार्थकता है ।”

नरेश जी ने दुर्गा जैसी परंपरित स्त्री को अपने जीवन की उत्तरावस्था में पारिवारिक जिम्मेदारियों के साथ स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय दिखाना नारी-चेतना का प्रतीक है । भारतीय नारियाँ परंपरित कार्य में इतनी जकड़ी हुई हैं कि दुर्गा विदेश वस्त्रों की होली के लिए सबको समझाने घर-घर जाती है तब उसे एक ही जवाब मिलता है - “थेपना रोटी ही है और पैदा बच्चे ही करने हैं, इन दो कामों में से तो छुट्टी है नहीं । इससे फुर्सत हो तो भले ही कर ले नारी जागरण ! जहाँ कई जागरण होते हैं पर यह कहो कि लड़कियाँ, बहुएँ गली में घूमे तो ऐसा न तो कभी हुआ है और न होगा ।”⁵

नरेश जी ने परंपरित भारतीय नारी के बिल्कुल विपरीत छोर पर आधुनिक एवं स्वच्छंद नारी चित्रण भी लिए हैं । ‘दो एकान्त’ की वानीरा, ‘प्रथम फाल्गुन’ की लीला साहनी तथा ‘डूबते मस्तूल’ की रंजना आधुनिक स्वच्छंद नारी का प्रतीक है जो अपने व्यक्तिगत जीवन को महत्व देती है । नरेश जी रंजना के द्वारा नारी विषयक प्राचीन मान्यताओं के प्रति नये ढंग से सोचने के लिए हमें मजबूर करते हैं ।

कुल मिलाकर नरेश जी के नारी चरित्रों को मुख्य तीन धारा में विभाजित कर

सकते हैं ।

प्रथम सहनशीला, त्यागी, क्षमाशील, संघर्षी, रुढ़ियाँ और परंपरा में बंधे हुए नारी चरित्र । उदाहरण के तौर पर 'उत्तरकथा' की दुर्गा, गायत्री, सविता याज्ञिक, 'यह पथ बन्धु था' की सरस्वती, गुणवंती, श्रीधर की माँ तथा कांता को ले सकते हैं ।

द्वितीय एकाकी, त्यक्ता, विधवा, पति उपेक्षित तथा वेश्याएँ । जिसके उदाहरण 'उत्तरकथा' की गोदावरी देवी, गायत्री देवी, 'यह पथ बन्धु था' की इन्दुदीदी, 'नदी यशस्वी है' की वल्लभा कावेरी, किरण दीदी, 'प्रथम फाल्गुन' में गोपा की माँ, श्रीमती नाथ, वेश्या के अंतर्गत 'यह पथ बन्धु था' की मालिनी, 'धूमकेतु एक श्रुति' की कालिन्दी, 'नदी यशस्वी है' की वहीदा, 'उत्तरकथा' की कमला आदि हैं ।

तृतीय चरित्र में आधुनिकता के प्रभाव स्वरूप अस्तित्व में आयी स्वतंत्र और स्वच्छंद स्त्रियाँ हैं । 'डूबते मस्तूल' की रंजना, 'दो एकान्त' की वानीरा, 'प्रथम फाल्गुन' की लीला साहनी आदि ऐसे नारी चरित्रों के दृष्टांत हैं ।

अतः नरेश जी के नारी चरित्र बुद्ध की करुणा तथा ईशु का प्रेम संदेश दे जाते हैं । नरेश जी ने नारी के स्वभावगत कैकेयी और मंथरा रूप के साथ-साथ सीता, उर्मिला तथा यशोधरा रूप का भी निरूपण किया है । नरेश जी ने अपने कई नारी-चरित्रों द्वारा सामाजिक यथार्थ को निर्भयता से उधेड़कर रख दिया है । निःसंतान वसुंधरा की आत्महत्या, गुणवंती की अपाहीज विवशता, दुर्गा का असह्य त्रास सहन करना भारतीय नारी के प्रति हमारी मानसिकता को प्रकट करता है । नरेश जी ने इन चरित्रों के माध्यम से समग्र भारत वर्ष की नारियों को सम्माननीय स्थान पर प्रतिष्ठित करने की कोशिश की है । इन नारी चरित्रों द्वारा नरेश जी यही सिद्ध करते हैं कि नारी के प्रति समाज का रवैया कैसा भी क्यों न हो, किन्तु पुरुष के मनुष्य बने रहने में जाने-अनजाने में स्त्री का बहुत बड़ा हाथ होता है । फिर भी भारतीय समाज में स्त्रियों की स्थिति वैसी की वैसी ही है । 'उत्तरकथा' की दुर्गा के शब्दों में - "स्त्री का सारा जीवन कुल-कुटुम्ब, संबंध और रिश्तों की एक शर्त से दूसरी शर्त की अनखुली गांठोंवाली अग्नियात्रा है । स्त्री को कभी खुला आकाश, खुला क्षितिज और खुला जीवन दिया ही

नहीं जाता । भले ही अलंकार और साड़ियाँ कितनी ही दे दी जाए ।”⁶

नरेश जी के चरित्र आत्मोत्सर्गी है । अहं को समाप्त कर दूसरों के लिए समग्रतः अर्पित होने की प्रक्रिया ही आत्मोत्सर्ग है । त्याग से मानव जीवन में क्षमता और स्वस्थता की वृद्धि होती है । जो आनंद दान में है वह भोग में नहीं । त्याग में एक विशेष आनंद का भाव होता है । ‘यह पथ बन्धु था’ की इन्दुदीदी, सरस्वती, ‘उत्तरकथा’ की दुर्गा, गायत्री, उत्सवलाल जोशी, शिवशंकर आदि ऐसे चरित्र हैं । ‘उत्तरकथा’ का नायक शिवशंकर दुःख और दायित्व वहन करनेवाला अकलंक पुरुष है । शिवशंकर एक चरित्र न होकर भारतीय मनीषा की चारित्रिक स्थिति का नाम है । त्र्यम्बक और दुर्गा भारतीय दंपति के शिव-पार्वती है । श्रीधर तथा सरस्वती साधारण मानवता के अज्ञात चरित्र है । इन चरित्रों का संदेश है कि स्वाहा होना ही देवत्व है ।

नरेश जी के चरित्र हृदयस्पर्शी और सजीव है । उनके तमाम चरित्र मान्यताओं को बरकरार रखने के लिए टूट जाते हैं परंतु झुकते नहीं है । ‘यह पथ बन्धु था’ के श्रीधर के पिता कीर्तनियाजी, उनकी माँ, उनकी पुत्री गुणवंती, पैमेन बाबू, बालासाहब आदि का जीवन एक मुकाम पर व्यर्थ और पंगु बन जाता है । कई चरित्र अधिक टूटने पर जी नहीं पाये । ‘यह पथ बन्धु था’ की सरस्वती, श्रीधर के माता-पिता, इन्दु के पिता बालासाहब, ‘उत्तरकथा’ की दुर्गा, ‘धूमकेतु एक श्रुति’ के लज्जाशंकर आदि संघर्ष करते हुए मृत्यु की गोद में सो जाते हैं ।

नरेश जी के चरित्र देवता नहीं मानव है । मानवीय दुर्बलताएँ एवं कमजोरियों के शिकार हैं । नरेश ने कई पात्रों के माध्यम से उस दुर्बलता का सहज निर्वाह करवाया है । नरेश का अभिप्राय था कि धर्म और अध्यात्मिक के द्वारा मनुष्य संसार के राग-विराग को तटस्थ भाव से देख सकने में सक्षम बनता है । मनुष्य अपनी सांसारिक भावनाएँ, अतृप्त इच्छाएँ, अधूरे सपने आदि से मुक्त नहीं हो सकता । ‘नदी यशस्वी है’ की बाल विधवा वल्लभा तथा कावेरी, त्यक्ता किरणदीदी, बालासाहब की युवान पुत्री इन्दुदीदी (यह पथ बन्धु था), ‘उत्तरकथा’ के शिवशंकर तथा गायत्री एक-दूसरे के प्रति रागात्मक भाव अनुभव करते हैं, परंतु आध्यात्मिक जीवन उन्हें संयमित रहने पर मजबूर करता है ।

वे स्त्री-पुरुष की मर्यादा कभी नहीं तोड़ते, किन्तु दोनों एक-दूसरे के स्पर्श के लिए व्याकुल रहते हैं। आध्यात्मिक यात्रा पर गये शिवशंकर को बदरी-केदार की पगदंडी पर गायत्री का स्मरण होता है, तो दूसरी तरफ धार्मिक अनुष्ठान में बैठी गायत्री भी शिवशंकर को पुकारती है। 'नदी यशस्वी है' की किरण दीदी धार्मिक किताबें पढ़कर यौन इच्छाओं का दमन करती है। पिता के हवस का शिकार बनी वल्लभा की यौन इच्छाएँ इतनी उद्विग्न हो चुकी हैं कि वह बालक उदयन के साथ चित्र-विचित्र चेष्टाएँ करती है। कावेरी युवान और विधवा है। एक बार पति-सुख भोग चुकी है। निम्नवर्ग की होने के कारण उसे सामाजिक बंधनों की परवाह नहीं है। वह अपने मालिक के भतीजे किशोर उदयन के साथ शारीरिक संबंध स्थापित करती है। 'डूबते मस्तूल' की रंजना तीन-चार शादी के दुःखद अंत के बाद नये-नये पति और प्रेमी बनाकर अनेक पुरुषों को भोगती है। 'दो एकान्त' की वानीरा व्यस्त डॉक्टर से विमुख होकर क्लाइड और आनंद जैसे पुरुषों के साथ विवाहेतर संबंध रखती है। 'नदी यशस्वी है' में उदयन के चाचाजी देसाईसाहब विधवा मंडलोई के साथ शारीरिक संबंध रखते हैं। लेखक उन तमाम चरित्रों के माध्यम से मनुष्य में विद्यमान अच्छी-बुरी वृत्तियों की ओर इशारा करते हैं।

नरेश जी अधिकाधिक चरित्र मध्यमवर्ग के साधारण व्यक्ति हैं। इस वर्ग की विशेषता यह है कि पुराने जीवन मूल्यों से अधिक चिपका रहता है। वह चाहे न चाहे अपनी सामाजिक मर्यादा सुरक्षित रखने के लिए सड़ी-गली सामाजिक और धार्मिक मान्यताओं को लेकर जीते हैं। 'उत्तरकथा' में गोदावरी देवी द्वारा ब्रह्मभोज का आयोजन करना, रमण आचार्य तथा गोदावरी देवी की पुत्री दुर्गा की गरीबी और दहेज के कारण दुहाजुवर से शादी करना, वेश्या कालिन्दी अपने अधम जीवन के प्रायश्चित्त स्वरूप मंदिर में पैसा देना आदि समस्याओं से घिरे हुए हैं। विधवा गायत्री तथा इन्दुदीदी, प्रथम फाल्गुन की गोपा की माँ, उत्तरकथा के संन्यासी शिवशंकर आदि अपना अंतिम जीवन धार्मिक स्थलों में प्रभुभजन में बिताते हैं। 'नदी यशस्वी है' की वल्लभा, किरणदीदी अपनी यौवन सहज इच्छाओं का दमन करके जबरन धार्मिक जीवन जीने का प्रयत्न

करती है ।

नरेश जी के चरित्र हाड-मांस से बने मानव है । उनके चरित्र जितने सच्चे, ईमानदार, प्रामाणिक, आध्यात्मिक और सद्वृत्तिवाले हैं उतने ही लालची, धोखेबाज, फरेबी, शराब-सुंदरी के आशिक और वेश्या के शौकीन हैं । 'उत्तरकथा' के विश्वनाथ उर्फ बिशु, मनोहर उपाध्याय उर्फ कामदार साहब, डूबते मस्तूल का सैयद, कुलकर्णी, रेनाल्ड आदि दूसरों की भावनाओं का अनादर करनेवाले स्वाधी, संकुचित, विकृत, असामाजिक प्रवृत्तिवाले, उच्छृंखल, आवारा और अस्थिर मालूम पड़ते हैं ।

नरेश जी ने कई उपन्यासों में सामूहिक रूप में चरित्रों का उल्लेख किया है। 'उत्तरकथा' में निरक्षर, कर्मकांडी ब्राह्मण, दकियानुसी तथा विलासी ठाकुरों, यायावर गूजर बंजारे तथा वनवासी भील जैसे विशेष जातियों के चरित्र हैं। अन्य उपन्यासों में पानवाले, फूलवाले, अलग-अलग व्यवसाय से जुड़े कई चरित्र हैं। इन चरित्रों की कोई व्यक्तिगत विशेषताएँ न दिखाकर पूरे वर्ग का चरित्र उभारा है।

उनके ब्राह्मण चरित्र छोटी-सी मसनद पर गाँव, तकिया तथा चौकी पर ढेरों जंत्री, पंचाग-पुराण, उपनिषद तथा शास्त्र संबंधित हस्तलिखित पोथियाँ लेकर, गोल-लाल पगड़ी, झुलता अंगरखा और सारंगपुरी जरी का दुपट्टा पहने हुए मस्तक पर त्रिपुण्ड लगाकर अपने अपने यजमानों के साथ चर्चा करते हुए नज़र आते हैं । हवन कुंड में अग्नि प्रकटावे हुए वेदपाठी ब्राह्मण, स्वाहा-स्वाहा का मंत्रोच्चार करते हुए कभी मंदिर में रुद्रपाठ करते हुए कभी बस स्टेशन या रेलवे स्टेशन पर अपने-अपने यजमानों को ढूँढ़ते हुए दिखाई देते हैं ।

नरेश जी के कुछ चरित्र रेशमी वस्त्र धारण करके, मुँह में इलायची या पान दबाकर कोठे पर मुजरे के ठमके पर वाह-वाह करते हैं । तम्बाकु और सिगरेट पीते हैं।

नरेश जी के कतिपय चरित्र साहित्य रसिक तथा संगीत प्रेमी हैं । 'यह पथ बन्धु था' में श्रीधर और इन्दुदीदी साथ बैठकर ढेर सारी किताबें पढ़ते हैं और चर्चा करते हैं । 'डूबते मस्तूल' में रंजना बड़े-बड़े विद्वानों को पढ़ती रहती है । वानीरा सितार बजाती है तो वान निकोलस सुंदर पियानो बजाता है । नारायण बाबू संगीत प्रेमी व्यक्ति है तो

मेजर आनंद इतिहास का तजज्ञ है । डॉ. विवेक पढ़ने के साथ-साथ अच्छी शिल्पकृति बनाने का शौकीन इन्सान है ।

नरेश जी के उपन्यासों में शोषित तथा शोषण के विरुद्ध आवाज उठानेवाले जागृत पात्र भी हैं । ऐसे पात्र अन्याय तथा असत्य के सामने झुकते नहीं हैं । 'यह पथ बन्धु था' के बिशन, रत्ना, सुधांशु, शचीन तथा 'नदी यशस्वी है' के मास्टर लालसिंह, नारायण सिंह, 'धूमकेतु एक श्रुति' के सूर्यशंकर आदि गलत परंपरा के सामने आवाज उठाते हैं । उत्तरकथा के त्र्यम्बक शुक्ल गलत पारिवारिक परंपरा को त्यागकर अपनी ही माँ कृष्णादेवी के सामने आवाज़ उठाते हैं । इस उपन्यास में गिरधर ठक्कर अंग्रेजों के शासन और दमन तथा मिल-मालिकों के सामने धरणा करके मजदूरों के न्याय के लिए लड़ते हैं ।

इस प्रकार जहाँ विरोध की बात है, वहाँ स्वीकार करनेवाले पात्र भी मौजूद हैं । 'यह पथ बन्धु था' का श्रीधर एक ऐसा ही चरित्र है जो राजनीति का भोग बनता है । दंभी नेता, फरेबी पत्रकार और प्रकाशक द्वारा शोषित श्रीधर में आवाज उठाने की हिम्मत नहीं है । वह आदर्श के नाम पर सबकुछ चुपचाप सहता रहता है । श्रीधर की तरह उसकी पत्नी सरस्वती भी जिठानी का हुक्म चुपचाप सुन लेती है । 'उत्तरकथा' की दुर्गा भी आवाज उठाने के बदले सास के असह्य त्रास को सह लेती है । 'डूबते मस्तूल' का मेजर जास्टीन, वान निकोलस, 'दो एकान्त' का विवेक, 'नदी यशस्वी है' का उदयन, 'प्रथम फाल्गुन' के नाथ बाबू, 'उत्तरकथा' के गोविंद जोशी, गोवर्धन व्यास आदि चरित्र बिना विरोध किए चुपचाप सहनेवालों में से हैं ।

लेखक परंपरित चरित्रों को अधिक महत्त्व देते हैं । किन्तु कुछ चरित्र आधुनिक होते हुए भी आधुनिक नहीं लगते । 'उत्तरकथा' की दुर्गा तथा शिवशंकर, 'यह पथ बन्धु था' की सरस्वती की मौत किसी पात्र की मौत नहीं है बल्कि परंपरित मूल्यों को लेकर संघर्ष करनेवाली एक पूरी की पूरी पीढ़ी की मौत है जो अपने मूल्यों के साथ समाप्त हो जाती है । 'उत्तरकथा खंड - II' में फिर एक आधुनिक पीढ़ी का जन्म होता है जिसमें धूर्णटी, शारदा, पंचानन, चन्द्रशेखर, गोविंद जोशी इत्यादि हैं जिनकी अपनी कुछ भिन्न

मान्यताएँ हैं ।

आधुनिक विचारधारावाले चरित्रों में 'दो एकान्त' के विवेक, वानीरा, मेजर आनंद, क्लाइड, 'डूबते मस्तूल' की रंजना, मेजर जास्टीन, वान निकोलस, 'प्रथम फाल्गुन' के महिम, गोपा, श्रीमती लीला साहनी, 'नदी यशस्वी है' के देसाई साहब, 'धूमकेतु एक श्रुति' के सूर्यशंकर आदि को ले सकते हैं ।

उनके चरित्र विशेष वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं । नरेश जी के निम्न चरित्र अपनी व्यक्तिगत पहचान के कारण भीड़ में भी अलग नज़र आते हैं । 'दो एकान्त' की वानीरा, 'डूबते मस्तूल' की रंजना, 'यह पथ बन्धु था' का श्रीधर और सरस्वती, गुणवंती, मालिनी, 'उत्तरकथा' का त्र्यम्बक, दुर्गा, शिवशंकर, गोविंद जोशी, 'प्रथम फाल्गुन' की गोपा, 'धूमकेतु एक श्रुति' का बाल उदयन, 'नदी यशस्वी है' का किशोर उदयन इत्यादि निम्न चरित्र के दृष्टांत हैं ।

नरेश जी मनोविज्ञान के अच्छे जानकार लगते हैं । उन्होंने कुछ पात्रों के चरित्र निर्माण में इस बात का स्पष्ट संकेत दिया है । 'डूबते मस्तूल', 'दो एकान्त', 'धूमकेतु एक श्रुति' तथा 'नदी यशस्वी है' उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक धरातल पात्रों का निर्माण किया गया है । इन उपन्यासों के चरित्र कुंठित और विविध ग्रंथियों के शिकार हैं । 'धूमकेतु एक श्रुति' की वल्लभा का बालक उदयन के मुँह में अपना स्तन देना, उसे सटकर सोना, 'नदी यशस्वी है' में किशोर उदयन का अपनी बाल सखी सुनंदा के ओठों को चुमना तथा 'उत्तरकथा' में शिवशंकर और गायत्री का क्षणिक स्पर्श मात्र से रोमांचित होना, उदयन द्वारा मन ही मन वल्लभा को निर्वस्त्र देखने की कल्पना करना आदि प्रसंगों के द्वारा लेखक ने सिद्ध किया है कि मनुष्य चाहे कितनी ही कोशिश कर ले, परंतु अपनी सहज वृत्तियों से छुटकारा नहीं पा सकता ।

नरेश जी के उपन्यासों में परपीड़न तथा स्वपीड़न वृत्तिवाले चरित्र भी हैं । परपीड़नवृत्ति में 'उत्तरकथा' की बिशू की माँ गंगादेवी, धूर्णटी की पत्नी शारदा, त्र्यम्बक की माँ कृष्णादेवी, श्रीमोहन की पत्नी गायत्री, 'डूबते मस्तूल' की रंजना, कुलकर्णी, 'धूमकेतु एक श्रुति' के सूर्यशंकर तथा बालक उदयन को ले सकते हैं ।

स्वपीड़न वृत्तिवाले चरित्रों में 'यह पथ बन्धु था' के श्रीधर, सरस्वती, गुणवंती, श्रीधर के माता-पिता, 'उत्तरकथा' की दुर्गा, गायत्री, गोदावरी देवी, 'डूबते मस्तूल' का वान निकोलस, 'धूमकेतु एक श्रुति' की वल्लभा, किरणदीदी, उदयन की माँ, उदयन के पिता इच्छाशंकर, 'प्रथम फाल्गुन' के महिम गोपा आदि हैं।

'धूमकेतु एक श्रुति' के इच्छाशंकर, 'नदी यशस्वी है' का उदयन, 'दो एकान्त' का विवेक आदि हीनता ग्रंथि के शिकार हैं। 'दो एकान्त' की वानीरा आनंद के बच्चे की माँ बनने के बाद अपराधभाव का अनुभव करती है। वानीरा अपने गर्भस्थ शिशु के साथ तो सरस्वती अपाहिज बेटी की स्थिति से व्यथित होकर ईश्वर से मौत मांगती है। 'डूबते मस्तूल' की रंजना उपन्यास के अंत में टूटकर आत्महत्या कर लेती है।

'नदी यशस्वी है' का उदयन पापग्रंथि का शिकार है। लक्ष्मण जब उदयन को सीढ़ी पर चढ़ी मजदूरनी का छितरे घाघरे में झाँकने को कहता है उस वक्त नासमझ उदयन नारी क्या है की केवल जिज्ञासावृत्ति को शांत करने हेतु मजदूरनी के घाघरे में झाँकता है, किन्तु बाद में कुछ गलत करने के भय से गायत्री मंत्र बोलकर प्रायश्चित्त करता है। अपने चाचा को विधवा मंडलोई के साथ सोये हुए देखकर उदयन की स्थिति बड़ी विचित्र हो जाती है। भले ही भगवतीचरण वर्मा, 'चित्रलेखा' उपन्यास में कहते हैं कि 'पाप कुछ भी नहीं है वह केवल मनुष्य के दृष्टिकोण की विषमता का दूसरा नाम है।' फिर भी 'डूबते मस्तूल' की रंजना और उदयन दोनों पाप शब्द से परेशान नज़र आते हैं।

अंत में नरेश जी के चरित्रों के बारे में कह सकते हैं कि उनके चरित्रों का एक विशाल वर्ग अपने विविध मानसिकता लिए हमारे सामने प्रस्तुत होते हैं। ये चरित्र क्षमाशील, करुणाशील, सिद्धांतवादी, प्रामाणिक, ईमानदार, आदर्शप्रिय, सत्यवादी, संघर्षशील, सहृदय, सामाजिकता के लिए मर मिटनेवाले तथा विद्रोह करनेवाले, आध्यात्मिक तथा नास्तिक, शांत, स्थिर, आवारा और उच्छृंखल, कामी-विलासी, भोगी, जीवन को चाहनेवाले और जीवन से भागनेवाले, कर्मवीर, गांधीवादी, राजनीतिज्ञ, कथनी-करनी में अंतर रखनेवाले ढोंगी, दंभी, शोषण करनेवाले, स्वार्थी, दयावान,

संकुचित, विकृत अमानवीय, अमीर-गरीब, बालक, युवा और प्रौढ़, शिक्षक, आचार्य, अध्यापक, वकील, पटवारी, पोस्टमास्टर, स्टेशन मास्टर, जिलाधीश, प्रेस मालिक, प्रकाशक, कर्मकांडी, जमींदार, ब्राह्मण, ठाकुर, सरदार इत्यादि हैं ।

अतः नरेश जी ने अपने चरित्र के माध्यम से युगजीवन की जटिलताएँ, व्यक्ति का अन्तर्बाह्य द्वन्द्व, मानवतावादी चेतना, मानव जीवन की विडम्बनाएँ, नगरीय तथा ग्राम्य जीवन में व्याप्त पारिवारिक द्वेष, स्वार्थ, घुटन, कुंठा, टूटन, रूढ़ियाँ, आक्रोश, नारी जीवन की स्थितियाँ आदि को उजागर किया है ।

नरेश जी पर कुछ आरोप लगाये जाते हैं जो निम्नानुसार हैं -

1. नरेश जी ब्राह्मणों के पक्षधर हैं अर्थात् अपने उपन्यासों में ब्राह्मण चरित्रों को ही महत्त्व दिया गया है ।
2. उनके उपन्यासों में आवश्यकता से अधिक पात्र हैं ।
3. नरेश जी ने गौण पात्रों को भी प्रमुख चरित्र की तरह विस्तृत रूप में वर्णित किया है।
4. उनके उपन्यासों में जितना बाह्य संस्कृति का सटिक चित्रण मिलता है उतनी सटिकता के साथ चरित्रों के हृदय की परतें नहीं खुलती । नरेश जी के उपन्यास उस ऊँचाई तक नहीं पहुँच पाते जिस ऊँचाई तक वे पहुँच सकते थे ।

डॉ. प्रेमलता गांधी ने नरेश जी के उपन्यासों पर आरोप लगाते हुए लिखा है - “मध्यमवर्गीय पात्र के भीतरी मन के स्वीकार-अस्वीकार, दुविधा, विरोध प्रकट, दुस्साहस, सुरक्षित रहने की अप्रकट ईच्छा, स्वाभिमान, समर्पण, गतिस्थिरता, छोड़ने-उखड़ने का अभिनय और पकड़ने तथा जमे रहने की छटपटाहट को जिस गहराई से चित्रित होना चाहिए था उस पर गहराई से वह नरेश मेहता के उपन्यासों में चित्रित नहीं है ।”⁷

नरेश पर जब यह आरोप लगाया गया कि ‘उनके चरित्र अधिक करुण हैं’, तब नरेश जी ने इस बात को स्पष्ट करते हुए कहा कि - “करुणा मेरे साहित्य का वादी स्वर है, शायद इसीलिए मेरे सारे कथापात्र समस्त संघर्ष और जूझने के बाद भी

क्रांतिकारी नहीं होते । वे विद्रोह के स्थान पर समर्पण करने लगते हैं । वे वाचाल होने के स्थान पर मौन हो जाते हैं ।”⁸

नरेश जी के कुछ चरित्र क्रांतिकारी अवश्य है, किन्तु उनकी क्रांति संपूर्ण क्रांति नहीं है । वे क्रांति करने का प्रयत्न करते हैं । इस आरोप का खण्डन करते हुए नरेश जी कहते हैं -“इसका अर्थ यह नहीं कि मेरे पात्र क्रांतिदर्शी है क्योंकि क्रांतिदर्शिता व्यक्ति से संपूर्ण संकल्प की मांग करती है । यह बहुत बड़ी माँग है । अतः मेरे पात्र क्रांतिदर्शिता की चेष्टा करते हैं । वे अविश्वसनीय नहीं लगते । हाडमांस के साधारणजन केवल चेष्टा ही कर सकते हैं । साधारणजनों की वह सामान्य क्रांतिदर्शिता की चेष्टा मुझे उदात्त, कलात्मक लगती है । इसे संज्ञा के अभाव में वैष्णवता ही कह रहा हूँ ।”⁹

अंत में डॉ. शंकर वसंत मुद्गल नरेश मेहता के चरित्रों की सराहना करते हुए कहते हैं -“नरेश के चरित्र जाने-पहचाने लगते हैं । प्रस्तुत उपन्यासकार की पात्र सृष्टि निश्चय ही उपलब्धि कही जाएगी । परिपक्व, जीवनदृष्टि, व्यापक जीवनानुभव, संवेदनशील हृदय और कलात्मक शक्ति सबने मिलकर साधारण व्यक्ति को संपूर्ण मानवीय संवेदना प्राप्त कर उन्हें सजीव और विश्वसनीय बना दिया है ।”¹⁰

॥ अस्तु ॥

: संदर्भ :

क्रम	उपन्यास, उपन्यासकार	पृ.संख्या
1.	उत्तरकथा खंड - I नरेश मेहता	8
2.	नरेश मेहता एक एकान्त शिखर, प्रमोद त्रिवेदी	65
3.	हिन्दी उपन्यासों का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन, डॉ. गिरधरप्रसाद शर्मा	54
4.	ऋतुचक्र (मार्च-जून-1985) सं. नैमिचंद्र जैन	31/32
5.	उत्तरकथा खंड - II, नरेश मेहता	237
6.	----- वही -----	192
7.	नरेश मेहता के उपन्यासों का सांस्कृतिक अनुशीलन, डॉ. प्रेमलता गांधी	371
8.	जलसा घज़र (कहानी संग्रह) की भूमिका, स्वत्व की खोज, नरेश मेहता	6
9.	----- वही -----	7
10.	महाकाव्यात्मक उपन्यास की शिल्पविधि, डॉ. शंकर वसंत मुद्गल	115

नरेश मेहता का समग्र रचना संसार

❖ स्वतंत्र काव्य संग्रह

(1) बन पाखी सुनो - 1956 (2) मेरा समर्पित एकांत - 1963 (3) बोलने दो चीड़ को - 1969 (4) उत्सव - 1979 (5) अरण्या - 1985 (6) आखिर समुद्र से तात्पर्य - 1988 (7) पिछले दिनों नंगे पैर - 1989 (8) देखना एक दिन - 1990 (9) चैत्या - 1993 (10) तुम मेरा मौन हो - 1993

❖ खण्ड काव्य

(1) संशय की एक रात - 1962 (2) महाप्रस्थान - 1975 (3) प्रवाद पर्व - 1977 (4) शबरी - 1977 (5) गांधीगाथा - 1982 (6) प्रार्थना पुरुष - 1985

❖ उपन्यास

(1) डूबते मस्तूल - 1954 (2) यह पथ बन्धु था - 1962 (3) धूमकेतु एक श्रुति - 1962 (4) दो एकान्त - 1964 (5) नदी यशस्वी है - 1967 (6) प्रथम फाल्गुन - 1968 (7) उत्तरकथा खंड-I, खंड-II, खंड-III 1982, खंड-IV 1984

❖ कहानी संग्रह

(1) तथापि - 1962 (2) एक समर्पित महिला - 1967 (3) जलसाघर - 1987

❖ नाटक

(1) सुबह के घण्टे - 1955 (2) खंडित यात्राएँ - 1962

❖ एकांकी

(1) सनोवर के फूल - 1962

❖ रेडियो नाटक

(1) पिछली रात की बरफ - 1962

❖ **विचार**

- (1) काव्य का वैष्णव व्यक्तित्व - 1972

❖ **स्मरण आलेख**

- (1) मुक्तिबोध एक अवधूत कविता - 1988
(2) शब्दपुरुष अज्ञेय - 1989

❖ **यात्रावृत्तांत**

- (1) साधु न चले जमात - 1991

❖ **जीवनी**

- (1) हम अनिकेतन (लेखन के पचास वर्ष) 1995

❖ **संपादकीय लेख**

- (1) प्रति सप्ताह (दैनिक चौथा संसार) 1995

❖ **संपादन**

- (1) वाग्देवी
(2) तथागत (सम्मिलित संपादन) विद्यार्थी जीवन के सात कवियों के साथ

नरेश मेहता सम्मान एवं पुरस्कार

❖ मध्य प्रदेश शासन सम्मान सन् 1973

- (1) मध्य प्रदेश सारस्वत सम्मान - 1973
- (2) मध्य प्रदेश शासन शिखर सम्मान
- (3) उत्तर प्रदेश शासन सम्मान
- (4) हिन्दी साहित्य सम्मेलन का मंगलाप्रसाद पारितोषिक - 1985
- (5) केन्द्रीय साहित्य अकादमी पुरस्कार - 1988-89
- (6) उत्तर प्रदेश शासन का सर्वोच्च भारत भारती सम्मान - 1990
- (7) मध्य प्रदेश नाटक लोककला अकादमी द्वारा अलंकृत
- (8) मध्य प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा भवभूति अलंकरण
- (9) भारतीय ज्ञानपीठ का सर्वोच्च साहित्य पुरस्कार - 1992

ग्रंथानुक्रमणिका

आधारभूत ग्रंथ				
क्रम	ग्रंथ	लेखक	प्रकाशक	प्रकाशन वर्ष
१	बन पाखी सुनो	नरेश मेहता	लोक भारती प्रकाशन, १५-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाबाद-१	१९५६
२	मेरा समर्पित एकांत	- -	- -	१९६३
३	बोलने दो चिड को	- -	- -	१९६३
४	उत्सवा	- -	- -	१९७९
५	अरण्या	- -	- -	१९८५
६	आखिर समुद्र से तात्पर्य	- -	- -	१९८८
७	पिछले दिनों नंगे पैर	- -	- -	१९८८
८	देखना एक दिन	- -	- -	१९९०
९	चैत्या	- -	भारतीय ज्ञानपीठ, १८, इन्स्टीट्यूशन, एरिया लोदी रोड, नई दिल्ली	१९९३
१०	तुम मेरा मौन हो	- -	लोक भारती प्रकाशन, १५-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाबाद-१	१९९३
प्रबंध काव्य				
११	संशय की एक रात	नरेश मेहता	पुस्तकायन, ५९, स्वामी विवेकानंद मार्ग, इलाहाबाद-३	१९६७
१२	महाप्रस्थान	- -	लोक भारती प्रकाशन, १५-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाबाद-१	१९७५
१३	प्रवादपर्व	- -	- -	१९७७
१४	शबरी	- -	- -	१९७७
१५	गांधीगाथा	- -	- -	१९८२
१६	प्रार्थन प्ररुष	- -	नेशनल पब्लिशिंग हाउस-२३, दरियागज, नई दिल्ली-११०००२	१९८५

उपन्यास				
क्रम	ग्रंथ	लेखक	प्रकाशक	प्रकाशन वर्ष
१७	डूबते मस्तूल	नरेश मेहता	लोक भारती प्रकाशन, १५-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाबाद-१	१९५४
१८	यह पथ बन्धु था	- -	- -	१९६२
१९	धूमकेतु एक श्रुति	- -	- -	१९६२
२०	दो एकान्त	- -	- -	१९६४
२१	नदी यशस्वी है	- -	नेशनल पब्लिशिंग हाउस-२/३४, दरियागज, अंसारी रोड, नई दिल्ली- ११०००२	१९६७
२२	प्रथम फाल्गुन	- -	लोक भारती प्रकाशन, १५-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाबाद-१	१९६८
२३	उत्तरकथाखंड-१	- -	- -	१९८२
	उत्तरकथाखंड-२	- -	- -	१९८४
कहानी संग्रह				
२४	तथापि	नरेश मेहता	हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर, हीराबाग, बम्बई	१९६१
२५	एक समर्पित महिला	- -	भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, अलीपुर पार्क प्रेस, कलकत्ता	१९६७
२६	जलसाघर	- -	लोक भारती प्रकाशन, १५-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाबाद-१	१९८७
नाटक				
२७	सुबह के घण्टें	नरेश मेहता	लोक भारती प्रकाशन, १५-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाबाद-१	१९५५
२८	खंडित यात्राएँ	- -	- -	१९६२
२९	सनोवर के फूल	- -	- -	१९६२
रेडियो नाटक				
३०	पिछली रात की बरफ	नरेश मेहता	लोक भारती प्रकाशन,	१९६२

विचार				
क्रम	ग्रंथ	लेखक	प्रकाशक	प्रकाशन वर्ष
३१	काव्य का वैष्णव व्यक्तित्व	नरेश मेहता	लोक भारती प्रकाशन,	१९६२
३२	काव्यात्मकता का दिक्काल	- -	- -	१९८५
स्मरण-आलेख				
३३	मुक्तिबोध : एक अवधूत कविता	नरेश मेहता	लोक भारती प्रकाशन,	१९८८
३४	शब्द पुरुष अज्ञेय	- -	- -	१९८९
यात्रा वृत्तांत				
३५	साधु न चले जमात	नरेश मेहता	राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. ली., २१३८, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-११०००२	१९५५
आत्मकथा				
३६	हम अनिकेतन (मेरे लेखन के पचास वर्ष)	नरेश मेहता	लोक भारती प्रकाशन,	१९९५
प्रधान सम्पादकीय आलेख				
३७	प्रति सप्ताह चौथा दैनिक गाथा संसार (१९९२ से १९९५ तक के संपादकीय लेख)	नरेश मेहता	साहित्य संगम नया, १०० लुकरगंज, इलाहाबाद	१९९५
सम्पादन तथा सम्मिलित प्रकाशन				
३८	वाग्देवी	नरेश मेहता	लोक भारती प्रकाशन,	- -
३९	तथागत (विद्यार्थी जीवन के सात कवियों के साथ संयुक्त प्रयास)	- -	- -	१९४४
अनुवाद				
४०	आधी रात की दस्तक	के.आर.मल्कानी अनुवाद : नरेश मेहता	लोक भारती प्रकाशन,	१९७७
सहायक ग्रंथ				
१	नये कवि एक अध्ययन भाग : ३	डॉ.संतोषकुमार तिवारी	भारतीय ग्रंथ निकेतन, २७/३, कुचाचलान, दरियागंज, नई दिल्ली	१९५६
२	नरेश मेहता की कविता की उर्ध्वयात्रा	रामकमल राय	लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद	१९८२

क्रम	ग्रंथ / उपन्यास	लेखक	प्रकाशक	प्रकाशन वर्ष
३	नई कविता में नरेश मेहता : एक अनुशीलन	डॉ.अनीता कुमारी	लोकवाणी संस्थान, डी.५८५/१२, गली नं.२ निकट बजीराबाद रोड, अशोक नगर, शाहदरा, दिल्ली- ११००९३	१९९७
४	नई कविता और नरेश मेहता	डॉ.विमला सिंह	शिल्पी प्रकाशन, ११७, सी/७ मीरापुर, इलाहाबाद	१९९४
५	आधुनिकता से आगे श्री नरेश मेहता	मीरा श्रीवास्तव	लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद	१९८९
६	नयी कविता कथ्य और विमर्श	डॉ.अरुणकुमार	चित्रलेखा प्रकाशन, १७० अलोपीबाग, इलाहाबाद-२११००६	- -
७	नयी कविता की नाट्य- मुखी भूमिका	डॉ.हकुमचन्द्र राजपाठक	वाणी प्रकाशन, ६/एक कमलानगर, दिल्ली	१९७६
८	नयी कविता का वैचारिक आधार	सुधीश पंचौरी	- -	- -
९	नरेश मेहता का काव्य विमर्श और मूल्यांकन	प्रभाकर शर्मा	- -	- -
१०	नरेश मेहता की वैष्णव काव्ययात्रा	डॉ.शर्मा	- -	- -
११	हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि	डॉ.द्वारिकाप्रसाद सक्सेना	विनोद पुस्तक भंडार, आग्रा	अष्टम संस्करण
१२	नरेश मेहता का काव्य संवेदना और शिल्प	डॉ.अभयचन्द्र पटेल	- -	- -
सहायक ग्रंथ उपन्यास के संदर्भ में				
१३	नरेश मेहता के उपन्यासों का सांस्कृतिक अनुशीलन	डॉ. प्रेमलता गांधी	भारतीय ग्रंथ निकेतन, २७/३, कुचाचलान, दरियागंज, नई दिल्ली	१९९६
१४	नरेश मेहता का गद्य साहित्य	कैलाशचन्द्र शर्मा	बाल गंगा प्रकाशन, बी/१७७, निजानंदनगर, क्वीन्स रोड, जयपुर	१९९८

क्रम	ग्रंथ / उपन्यास	लेखक	प्रकाशक	प्रकाशन वर्ष
१५	नरेश मेहता : एक एकान्त शिखर	प्रमोद त्रिवेदी	लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद	१९९३
१६	नरेश मेहता दृश्य और दृष्टि	प्रमोद त्रिवेदी	हिन्दी बुक सेन्टर, ८/५, बी, असफअली रोड, नई दिल्ली	१९९४
१७	नरेश मेहता संघर्ष, सृजन और सिद्धांत	रामकृपाल तिवारी	- -	- -
१८	भाषाओं से परे एक गद्य नरेश मेहता	श्री विरेन्द्र शर्मा	- -	- -
१९	हिन्दी उपन्यासों में प्रतीकात्मक शिल्प विधान	डॉ.सुशील शर्मा	सिद्धराज पब्लिशिंग, १७४०३ शिवाजी पार्क, शाहदरा, दिल्ली	१९८२
२०	समकालीन हिन्दी उपन्यास साहित्य	डॉ. विवेकी राय	राजीव प्रकाशन, १९८-१०, अलौपी बाग कोलोनी, इलाहाबाद	१९८७
२१	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में वैचारिकता	डॉ.आशा मेहता	भारतीय ग्रंथ निकेतन, २७/३, कुचाचलान, दरियागंज, नई दिल्ली	१९८८
२२	हिन्दी के महाकाव्यात्मक उपन्यास	डॉ.पुष्पा कोछड़	नवीकेता प्रकाशन, ७११९११०, विजयनगर डबल स्टोरी, दिल्ली	१९८७
२३	महाकाव्यात्मक उपन्यासों की शिल्पविधि	डॉ.शंकर वसंत मुद्गल	चंद्रलोक प्रकाशन, १२८/१०६, जी ब्लोक, किदवड़ नगर, कानपुर	१९९४
२४	हिन्दी उपन्यास महाकाव्य के स्वर	डॉ.शांतिस्वरूप गुप्त	अशोक प्रकाशन, नई दिल्ली	- -
२५	आधुनिक हिन्दी उपन्यास	सं. डॉ. नरेन्द्र मोहन	दि मेक्स मिलन कं. ऑफ इन्डिया लि., दिल्ली	१९९५
२६	आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में नाट्य तत्त्व	डॉ.धर्मध्वज त्रिपाठी	साहित्य रत्नालय, ३७-५०, गिलिस बाजार, कानपुर-२०८००१	१९९६
२७	हिन्दी उपन्यास का सर्वेक्षण	डॉ.महेन्द्र चतुर्वेदी	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली	१९६२

क्रम	ग्रंथ / उपन्यास	लेखक	प्रकाशक	प्रकाशन वर्ष
२८	आधुनिक हिन्दी उपन्यास : उद्भव और विकास	डॉ.बेचेन	सन्मान प्रकाशन, १६ यु. बी., सन्मार्ग रोड, दिल्ली-७	१९७१
२९	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य में जीवन दर्शन	डॉ.सुमित्रा त्यागी	साहित्य प्रकाशन, नालीवाडा, दिल्ली	१९७८
३०	पच्चीस उपन्यास नाटकीयता के निकष पर	ओमप्रकाश शर्मा	पांडुलिपि प्रकाशन, इ-११/५, कष्णनगर, दिल्ली-११००५१	१९८७
३१	हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद	डॉ.त्रिभोवनसिंह	हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, प्रकाश प्रेस, सी-२११३०, पीशाच भवन, वाराणसी-१	- -
३२	हिन्दी उपन्यास की उत्तरशती की उपलब्धियाँ	डॉ.विवेकी राय	राजीव प्रकाशन, १८९१०४, अलौपी बाग कोलोनी, इलाहाबाद	- -
३३	हिन्दी उपन्यास	डॉ.सुरेश सिन्हा	लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद	- -
३४	हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास	डॉ.प्रतापराय टंडन	कल्पकार प्रकाशन, पूर बादशाहनगर, लखनऊ	- -
३५	आधुनिक हिन्दी उपन्यास	डॉ.जगमोहन चोपडा	विक्रांत प्रेस, ३२, वजीरपुर इन्ड. कोम्प्लेक्स, दिल्ली	१९८२
३६	जैनेन्द्र के उपन्यासों में नारी पात्र	डॉ.सावित्री मठयाल	मंगल प्रकाशन, गोविंद राजियो का रास्ता, जयपुर	- -
३७	हिन्दी उपन्यास प्रेमचंदोत्तर काल	डॉ.रामशोभित प्रसादसिंह	वृषभचरन जैन एव संतति, नई दिल्ली	१९८१
३८	हिन्दी उपन्यासों के असामान्य चरित्र	डॉ.सुजाता	मंगल प्रकाशन, गोविंद राजियो का रास्ता, जयपुर	१९९१
३९	हिन्दी उपन्यास का उद्भव और विकास	उमेश शास्त्री	देवनागरी प्रकाशन, चौडा रास्ता, जयपुर	१९८७
४०	हिन्दी उपन्यास दिशा और दृष्टि	मनमोहन सायगल	- -	- -

क्रम	ग्रंथ / उपन्यास	लेखक	प्रकाशक	प्रकाशन वर्ष
४१	हिन्दी उपन्यास के पथचिन्ह	डॉ.चंद्रकान्त बांदीवाडेकर	- -	- -
४२	हिन्दी उपन्यास मूल्यांकन और मूल्यांकन	डॉ.इन्द्रनाथ मदान	- -	- -
४३	हिन्दी उपन्यास सृजन और सिद्धांत	नरेन्द्र कोहली	वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली-११०००२	१९८९
४४	समकालीन हिन्दी उपन्यास	डॉ.विवेकी राय	राजीव प्रकाशन, १८९१०/१, अलौपी बाग कोलोनी, इलाहाबाद	१९८७
४५	अधूरे साक्षात्कार	नैमीचंद्र जैन	- -	- -
४६	आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में वस्तु विन्यास	डॉ.सरोजिनी त्रिपाठी	- -	- -
४७	साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास	डॉ.पारुकांत देसाई	सूर्य प्रकाशन, नई सडक, दिल्ली	- -
४८	हिन्दी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा	रामदरश मिश्र	राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली	१९८२
४९	रीसर्च मेथोडोलोजी	- -	रीसर्च प्रकाशन, सोश्यल सायन्स, नई दिल्ली	- -
५०	व्यक्ति चेतना और स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास	डॉ.दुबे	- -	- -
५१	हिन्दी उपन्यासों का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन	डॉ.गिरधरप्रसाद शर्मा	इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, ७१, कष्णनगर, दिल्ली	१९७८
५२	हिन्दी उपन्यास में नारी	डॉ.रस्तोगी	- -	- -
५३	आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में वस्तु विन्यास	डॉ.सरोजिनी त्रिपाठी	- -	- -
५४	हिन्दी उपन्यास प्रयोग स्वरूप के चरज	डॉ.वोरा	- -	- -
५५	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास का शिल्प विकास	डॉ.राधेश्याम शर्मा कौशीक	- -	- -
५६	आधुनिक हिन्दी उपन्यास की भूमिका	डॉ.मोहन	- -	- -

क्रम	ग्रंथ / उपन्यास	लेखक	प्रकाशक	प्रकाशन वर्ष
५७	हिन्दी उपन्यास द्वन्द्व एवं संघर्ष	डॉ.मोहनलाल रत्नाकर	- -	- -
५८	नरेश मेहता का साहित्य एक अनुशिलन	डॉ.विद्या सिंहा	ग्रंथायन, सर्वोदय नगर, सासनी नेह, अलीगढ़-२०२००१	- -
५९	प्रेमचंद परवर्ती उपन्यास साहित्य में पारिवारिक जीवन	डॉ.आशा बांगड़ी	- -	- -
६०	हिन्दी उपन्यास में पारिवारिक संदर्भ	उषा मंत्री	- -	- -
६१	हिन्दी उपन्यास में प्रेम और जीवन	डॉ.शांती भारद्वाज	- -	- -
६२	हिन्दी उपन्यास में महाकाव्यात्मक चेतना	डॉ.सुश्मा गुप्ता	- -	- -
६३	हिन्दी उपन्यास शिल्प और प्रयोग	डॉ.त्रिभोवन सिंह	अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर	१९७८
६४	स्वातंत्र्योत्तर उपन्यास में मानवमूल्य और उपलब्धियाँ	डॉ.भगीरथ बडोले	स्मृति प्रकाशन, १२४, सह्रार बान, इलाहाबाद	१९७८
६५	बाल मनोविज्ञान, सौराष्ट्र युनि. प्रथम वर्ष बी.ए. पाठ्याक्रम में	सं.डॉ.अनंत वसाणी प्रो.डॉ.इश्वरलाल डी.	सी.जमनादास एण्ड कु., सी-१८, माधवपुरा मार्केट, पुलिस कमिश्नर की कचहरी के पास, शाहीबाग रोड, अहमदाबाद	- -
कोष-पत्र पत्रिकाएँ				
१	हिन्दी उपन्यासकार कोष	सं.संतोष गोयल	अकादमिक फाउन्डेशन, २४/ए, सिविल लाईन्स, दिल्ली	
पत्रिकाएँ				
१	ऋतुचक्र (अंक मार्च-जून १९८५)	सं.नैमिचन्द्र जैन		
२	भाषा:भारतीय भाषाओं एवं साहित्य की पत्रिका (अंक १९९४-९५)	सं.अंबाशंकर नागर	हिन्दी साहित्य परिषद, अहमदाबाद	